[ श्री रासविहारी जी ]

# भागवत दर्शन

## भागवती स्तुतियाँ (२)

खण्ड ६२

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्वता ।
प्रणीतं प्रभुदत्तेन श्रीभागवतदर्शनम् ॥

लेखक
श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी

प्रकाशक
संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर
(झूसी) प्रयाग

द्वितीय संस्करण १००० | नवम्बर १९७२ कार्तिक सं०–२०२९ | मूल्य : २. रु०

मुद्रक—वंशीधर शर्मा, भागवत प्रेस, ८५२ मुट्ठीगंज प्रयाग ।

# विषय-सूची

# श्री भागवत-चरित सटीक

टीकाकार

'भागवत चरित व्यास' पं० रामानुज पाण्डेय,
बी० ए० विशारद

'भागवत चरित' विशेषकर ब्रजभाषा की छप्पय छन्दों में लिखा गया है। जो लोग ब्रजभाषा को कम समझते हैं, उन लोगों को छप्पय समझने में कठिनाई होती है। उनके लिये लोगों की माँग हुई कि छप्पयों की सरल हिन्दी में भाषा-टीका की जाय। संवत् २०२२ विक्रमी में इसका पूर्वार्द्ध प्रकाशित हुआ। उसकी दो हजार प्रतियाँ छपायीं। छपते ही वे सब-की-सब निकल गईं। अब उत्तरार्द्ध की माँग होने लगी। जो लोग पूर्वार्द्ध ले गये थे, वे चाहते थे पूरी पुस्तक मिले किन्तु अनेक कठिनाइयों के कारण छपने में विलम्ब हुआ साथ ही लोगों की यह भी माँग थी, कि कुछ मोटे अक्षरों में छापा जाय। प्रभु कृपा से अब के रामायण की भाँति बड़े आकार में मोटे अक्षरों में (२० पा०) अर्थ सहित प्रकाशित की गई हैं। प्रत्येक खंड में ८५० से अधिक पृष्ठ हैं मजबूत एवं सुन्दर कपड़े की जिल्द, चार-चार तिरंगे चित्र और लगभग ३५० एकरंगे चित्र हैं। मूल्य लागत मात्र से भी कम ४२) रु० रखा गया है। एक खंड का मूल्य २१) रु०। डाक खर्च अलग। आज ही पत्र लिखकर अपनी प्रति मँगा लें।

—व्यवस्थापक

हमारी नयी पुस्तक–

# भागवत चरित-संगीत सुधा

*स्वरकार*

वंशीधर शर्मा, 'भागवत चरित व्यास'

भारतवर्ष के अनेकों स्थान से लोग पूज्यपाद श्री ब्रह्मचारीजी महाराज के दर्शनों के लिये आते रहते हैं। दर्शन के साथ इच्छा होती है, कि श्री महाराज जी के मुखारविन्द से अमृतमयी कथा का श्रवण करें। आश्रम पर नित्य नियम से कथा, कीर्तन और पाठ होते रहते हैं। जो भी एक बार भागवत चरित को सुन लेता है, उसकी इच्छा होती है इसे बार-बार सुनें, किन्तु सुनें कैसे जब तक ताल स्वर बाजा तबला पर गाने वाले न हों रस नहीं आता। जिन लोगों ने धुनि नहीं सुनी उनके लिये यह नवीन राग है। अतः बहुत दिनों से लोगों के समाचार आते रहे कि भागवत चरित को शास्त्रीय संगीत में लिपिबद्ध कराके छपवा दीजिये। उसी आधार पर यह 'भागवत चरित-संगीत सुधा' तैयार की गई है। आशा है भागवत चरित पाठक इस पुस्तक से लाभ उठावेंगे। मूल्य १) रुपया।

—व्यवस्थापक

# प्रेतपीड़ा विनाशिनी भागवती कथा

[ १७ ]

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेत्,
जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ
परावरेशे त्वयि जायते मतिः ॥ ❀
(श्री भा० १०स्क० ५१ अ० ५४ श्लोक)

छप्पय

*सोचि कह्यो गोकरन—जाउ तुम हीं सोचुङ्गो ।*
*होवे जातें मुक्ति अपर कछु काज करुङ्गो ॥*
*सूझ्यो नहीं उपाय सूर्य गति रोकी तपतें ।*
*पूछ्यो साधन मुक्ति सूर्य तब बोले उनतें ॥*
*सात दिवस सप्ताह यदि, प्रेत भागवत सुनैगो ।*
*तो निश्चय या योनि तजि, भवसागर तैं तरैगो ॥*

जीव अपने कर्मों के कारण ऊँची-नीची योनियों में भटकता

---

❀ राजा मुचुकुन्द भगवान् की स्तुति करते हुए कह रहे हैं—"अच्युत ! नाना योनियों में घूमते-घूमते जब पुरुष के जन्म-मरण रूप संसार का अंत निकट आता है तब उसे किसी सत्पुरुष का समागम होता है । सत्पुरुष के प्राप्त होते ही आप भगवान् में उसका मन लग जाता है, क्योंकि सत्पुरुषों की आप ही एकमात्र गति हैं तथा कार्य कारण के नियन्ता हैं ।"

रहता है। भगवत् कृपा से उसे कभी दयालु परोपकारी संत मिल जाते हैं और वह उनकी शरण में चला जाता है, तो उसके सब बन्धन कट जाते हैं। जीव बिना समझे बूझे भवसागर में बहता जा रहा है, प्रवाह की तरंगों में चपेट खाता व्याकुल बना रहता है। भगवत् कृपापात्र संत कभी उसे बहता देखते हैं और दया-दृष्टि से देख लेते हैं, तो उसे युक्ति से बाहर निकाल लेते हैं डूबने से बचा लेते हैं। ऐसे संतों का साक्षात्कार भी हरि कृपा से ही होता है। भगवत् कृपा की यही सबसे मोटी पहिचान है, कि हमें कोई संत मिल जायँ और उनकी कृपा से हमारी भागवती कथाओं में रुचि होने लगे। जहाँ भागवत में—भगवान के भक्तों में–तथा भगवान् की कथाओं में रुचि हुई नहीं कि फिर जीव के उद्धार में कोई सन्देह नहीं रह जाता।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! गोकर्ण के आश्वासन देने पर प्रेत तो चला गया, किन्तु गोकर्ण रात्रि भर उसकी मुक्ति का उपाय सोचते रहे। उनकी बुद्धि में यह बात बैठती ही नहीं थी, वे सोचते थे गया श्राद्ध से तो प्रायः सभी प्रेतत्व छूट जाते हैं, इसके कितने पाप हैं जो गया श्राद्ध से भी न छूटे। अब इसके निमित्त क्या कराऊँ, किस उपाय से इसका उद्धार हो।

इस प्रकार उन्हें सोचते-सोचते प्रातःकाल हो गया। प्रातः-काल वे नित्य कर्मों से निवृत्त हुए। तब तक सम्पूर्ण गाँव में हल्ला मच गया, "महात्मा गोकर्ण तीर्थयात्रा करके लौट आये।" इस समाचार से सम्पूर्ण ग्राम में उत्साह छा गया, सभी छोटे-बड़े नर-नारी उनके दर्शनों को आने लगे। आने वाले लोग तीर्थयात्रा का वृत्तान्त पूछते, कोई धुन्धुकारी के सम्बन्ध की भाँति-भाँति की बातें बताते। कोई कहता—"वह कहीं मर गया। कोई कहता पर-देश गया है। कोई कहता—"उसे धन लोभ से किसी ने मार डाला है।"

यह सुनकर गोकर्णजी ने कहा—"न तो वह परदेश गया है, न वह अपनी मौत मरा है। उसे पाँच वेश्याओं ने भयङ्कर यातनायें देकर मार डाला है, उसकी अकाल मृत्यु हुई है। इसी कारण वह मरकर प्रेत हुआ है।"

लोगों ने आश्चर्य से पूछा—"आपको इसका कैसे पता चला ?"

गोकर्ण ने कहा—"रात्रि में वह मेरे पास आया था। वह भूख-प्यास के कारण अत्यन्त दुखी था। उसे अपने कुकर्मों पर हार्दिक पश्चात्ताप था उसने अत्यन्त दीनता के साथ अपने उद्धार की प्रार्थना की है।"

सब लोगों ने कहा—"अभागे की दुर्गति हुई उन स्त्रियों का चाल-चलन अच्छा नहीं था। भैया! किसी प्रकार उसका उद्धार करो। आपके अतिरिक्त अब उसका और है भी कौन ?"

गोकर्ण ने कहा—"अपने आस पास के जितने विद्वान पंडित हैं, सबको एकत्रित करके सम्मति करें। जो सबकी सम्मति होगी, वही करेंगे।"

यह सुनकर सभी लोग आस-पास के ग्रामों में दौड़ गये। गोकर्ण और धुन्धुकारी की बातें सुनकर गोकर्ण की प्रीतिवश जितने भी विद्वान्, योगनिष्ठ ज्ञानी ध्यानी तथा ब्रह्मवादी पंडित थे, सभी एकत्रित हुए। सभी शास्त्रों का प्रमाण देकर प्रेत की मुक्ति के विविध उपाय बताने लगे। किंतु सब गाड़ी यहीं आकर अटक जाती थी, कि गयाजी तथा प्रयाग, पुष्कर, काशी, नैमिषारण्य तथा अन्य बड़े-बड़े तीर्थों में श्राद्ध करने पर भी जब इसकी मुक्ति नहीं हुई तब और किया भी क्या जाय।"

बहुत सोच समझकर सबने सम्मति दी—"एक कार्य किया जाय। समस्त जगत् के कर्मों के साक्षी सूर्यनारायण ही हैं, ये सम्पूर्ण जगत् के पति तथा तेज की राशि हैं, ज्ञान के भंडार हैं,

ये ही पावनों से भी पावन हैं ये प्रत्यक्ष देव हैं। ये साक्षात् नारायण हैं विष्णु हैं, द्विजातिगण इसीलिये तीनों काल में इनकी उपासना करते हैं, इन्हीं से पूछा जाय।"

गोकर्ण ने पूछा—"सूर्यनारायण से बातें कौन कर सकता है, उनके कौन पूछे ?"

सबने कहा—"आप ही पूछिये। आपके अतिरिक्त और किसमें शक्ति है, आपने इतने दिनों तक वेद-माता गायत्री की आराधना की है, कितने पुरश्चरण किये हैं, आप सब कर सकते हैं। आपके बिना सूर्य से पूछने की सामर्थ्य किसमें है ?"

यह सुनकर गोकर्ण ने भगवान् का ध्यान किया गायत्री मन्त्र का जप किया और अपने तपोबल से सूर्यनारायण की गति को रोककर कहा—"हे सम्पूर्ण जगत के साक्षी ! हे प्रकाश के पुञ्ज ! हे प्रत्यक्ष देव ! आपके पादपद्मों में प्रणाम है, आप प्रेत बने मेरे भाई धुन्धुकारी की मुक्ति का कोई उपाय बता दें।"

गोकर्ण जी ने जब यह कहा, तो सूर्यनारायण के बिम्ब से स्पष्ट शब्दों में यह वाणी सुनायी दी—"श्रीमद्भागवत कथा श्रवण से ही मुक्ति हो सकती है, अतः तुम उसे श्रीमद्भागवत का सप्ताह सुना दो। तुम्हारे सप्ताह पारायण से श्रवण के निश्चय ही इसका उद्धार हो जायगा।"

सूर्यदेव की यह वाणी सभी को सुनायी दी सबने कहा—"बहुत ही सुन्दर उपाय है, सरल तथा सुगम भी है, सर्वोपयोगी है, सामयिक है। एक के साथ सभी का भला होगा। इस सार्वजनिक उपाय को तो अवश्य ही करना चाहिये।"

सर्वसम्मति से भागवत सप्ताह करने का निश्चय हुआ। पंडितों ने निश्चय किया इस समय आषाढ़ का बड़ा सुन्दर महीना है, शुक्लपक्ष भी है। कल नवमी तिथि है, कल से सप्ताह आरम्भ हो। आज से ही सब लोग कथा के प्रबन्ध में जुट

जाओ। सभी अपना-अपना कार्य बाँट लो। कथा ऐसी अपूर्व हो, कि एक धुन्धुकारी का ही नहीं सभी पापियों का उद्धार हो जाय।"

सबको बड़ा कूतूहल तथा उत्साह था इसलिये सभी सप्ताह की सामग्री जुटाने में जुट गये। पहिले चर्चा इस विषय पर चली कि भागवत सप्ताह कहाँ पर हो किसी ने कहा नदी तट पर हो किसी ने कहा पुण्य तीर्थ पर हो किसी ने कहा ग्राम के बीच में हो। इस पर गोकर्ण जी ने कहा—"तीर्थ पर होना तो सर्वोत्तम ही है किसी भी कामना से या भक्ति-मुक्ति की कामना से हो सप्ताह करने वाले को पुण्य तीर्थों में गंगादि पावन सरिताओं के तट पर ही सप्ताह यज्ञ करना चाहिये, किन्तु अब न तो उतना समय है न इतने कम समय में सभी लोग वहाँ जा सकेंगे, अतः अब तो यहीं करना उत्तम है। फिर हम लोगों का प्रधान लक्ष्य तो धुन्धुकारी का उद्धार करना है, उसकी अकाल मृत्यु यहीं हुई है इसलिये इसी घर में सप्ताह करना उचित है।"

यह बात सभी को अच्छी लगी, सभी ने इसका समर्थन किया। ग्राम की स्त्रियाँ गौ का गोबर और पीली मिट्टी ले आयीं कुछ लोग फावड़ा लेकर जुट गये ऊँची-नीची भूमि को सम किया घर को कलई से पोता बाहर भीतर सभी स्थान को गोबर से लीपा गया। झाड़ बुहारकर लीप-पोतकर घर को स्वच्छ बना दिया। लीपने-पोतने से वहाँ ब्राह्मी श्री दिखायी देने लगी। आत्मदेव जी का घर बहुत लम्बा-चौड़ा था उसमें विस्तृत आँगन था सहस्रों नर-नारी वहाँ सुख से बैठ सकते थे, वह पूरा आँगन लीप दिया। उसी में सुन्दर मण्डप सजाया गया। नीचे चूर्ण से सेल खड़ी और गेरू आदि से भूमि में चौके पूरे गये। सम्पूर्ण स्थान झंडी पताका से सजाया गया बड़ी सुन्दर व्यास पीठ बनायी गयी। चारों कोनों पर केले के फलयुक्त पेड़ लगा

दिये। वेदी के पास एक ऊँचा स्थान बनाकर सात लोकों की कल्पना की गयी, उसमें सात सुन्दर आसन बिछाकर विरक्त ब्राह्मणों के बैठाने का प्रबन्ध किया गया।

गोकर्णजी ने उस दिन उपवास किया। क्षौर कराकर पंचगव्य से शरीर शुद्धि की। आस-पास के ग्रामों में सर्वत्र विद्युत् की भाँति यह समाचार फैल गया सभी कहने लगे—"गोकर्ण कितने भारी महात्मा हैं, देखो उन्होंने अपने तप के प्रभाव से सूर्य की भी गति रोक ली है सूर्यदेव ने स्पष्ट शब्दों में कहा—"श्रीमद्भागवत सप्ताह के श्रवण से सभी पाप कट सकते हैं ऐसा अवसर बार-बार नहीं आवेगा। चलो हम लोग भी चलकर गोकर्ण जी के मुख से कथा श्रवण करें।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! एक ही दिन में एक गाँव से दूसरे गाँव में, दूसरे से तीसरे में हल्ला मच गया, सभी गावों से टोली बनाकर नर-नारी आने लगे। अनेकों लँगड़े, लूले, अन्धे बूढ़े पठित, मूर्ख, पापी तथा रोगी लोग कथा सुनने को तथा अपने पापों को मिटाने की भावना से आने लगे। देखते-देखते एक विशाल जन समूह वहाँ आ गया।"

दूसरे दिन गोकर्ण जी नित्य कर्म से निबटकर सजे सजाये कथा मंडप में आये। उनके आते ही सब लोगों ने उच्च स्वर से जय जयकार किया सबने गोकर्ण जी को प्रणाम किया, सबका यथोचित सत्कार करके वे व्यास गद्दी पर विराजमान हुए। सबने चन्दन, माला, तुलसी तथा फल-फूल दक्षिणा आदि से उनका पूजन किया। वे ज्यों ही कथा कहने को उद्यत हुए त्यों ही वह प्रेत भी वहाँ आ गया। प्रेत का शरीर तो वायु का था, वह कैसे बैठ सकता था। किसी सुरक्षित स्थान में ही बैठ सकता था। वह इधर-उधर अपने बैठने का स्थान खोजने लगा, सम्मुख

ही उसे सात गाँठ वाला एक बाँस दिखाई दिया, उसी में वह घुस कर बैठ गया। कथा प्रारम्भ हो गयी।"
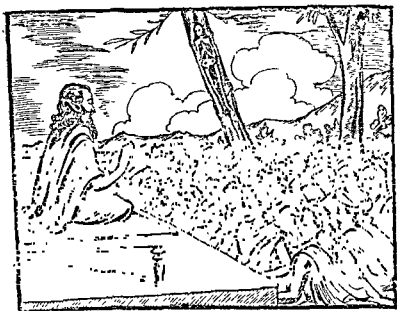
प्रथम स्कन्ध से उन्होंने कथा आरम्भ की। बड़े धीर गम्भीर स्वर में वे कथा कहते रहे। मध्यान्ह में दो घड़ी विश्राम करके पुनः कथा आरम्भ कर दी। इस प्रकार सायंकाल तक कथा कहते रहे।"

जब प्रथम दिन की कथा समाप्त हुई, तो सबके देखते कथा स्थल में ही एक बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। उस विचित्र घटना से सभी की श्रद्धा और बढ़ गयी। प्रेत जिस बाँस में बैठा था, उसकी एक गाँठ तड़-तड़कर के फट गयी। सबने पूछा—"यह क्या हुआ, यह क्या हुआ।"

तब गोकर्ण जी ने कहा—"कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह प्रेत सात आवरणों से आबद्ध है। आज इसका एक आवरण

कटा। उसी प्रकार सात दिनों में इसके सातों आवरण कट जायँगे।"

यह सुनकर सभी को सन्तोष हुआ। दूसरे दिन भी ऐसा ही हुआ। इसी प्रकार तीसरे, चौथे, पाँचवे, छटे तथा सातवें दिन बाँस की सातों गाँठें फट गयीं। सात दिन में बारहों स्कन्ध की पूरी कथा उसने ध्यानपूर्वक सुनी। सातवें दिन जब कथा समाप्त हुई, तो उसकी प्रेतयोनि सदा के लिये छूट गयी। गोकर्णजो अभी व्यासासन पर ही विराज मान थे, जिस ब्राह्मण को मुख्य श्रोता बनाया था, वह भी बैठा था तथा दूसरे सभी श्रोता कथा सुनकर अपने-अपने आसनों पर स्थित थे उसी समय वह प्रेत कथा के प्रभाव से अपनी प्रेतयोनि छोड़कर देवता बनकर हाथ जोड़कर गोकर्णजी के सम्मुख खड़ा हो गया।"

उस समय की उसकी शोभा दर्शनीय थी। उसका मस्तक मनहर मुकुट से सुशोभित था। मस्तक पर केशर कस्तूरी का चन्दन लगा था। प्रत्येक अंग में दिव्य आभूषण विराजमान थे। कण्ठ तुलसी की दिव्य सुगन्ध वाली मालाओं से सुशोभित था। मेघ के समान श्याम वर्ण का उसका शरीर था। सुवर्ण-सा झलमलाता हुआ पीताम्बर वह ओढ़े था। कानों के दिव्य कुण्डल झलमल झलमल करके उसके मुखमण्डल की शोभा बढ़ा रहे थे। उसके दिव्य रूप की आभा दशों दिशाओं को आलोकित कर रही थी। आते ही उसने गोकर्ण को प्रणाम किया और बड़े ही कृतज्ञता पूर्ण स्वर में गद्‌गद कंठ से उसने कहना आरम्भ किया—"भैया! तुमने इस दीन के ऊपर बड़ी कृपा की इस अनाथ को सनाथ बना दिया। इस पापी का उद्धार कर दिया। इस पापयोनि से मुझे सदा के लिये छुड़ा दिया। वायु रूप वाली इस योनि में मुझे अनेकों असह्य यातनायें सहनी पड़ रही थीं। उन सबका आपने आज अन्त करा दिया। अधम से मुझे

देवताओं के सदृश दिव्य बना दिया। देखो, कितने आश्चर्य की बात है। मेरे इतने भारी पाप सात दिनों में बात की बात में कट गये। यह प्रेत पीड़ा विनासिनी भागवती कथा धन्य है धन्य है। इसकी सदा जय हो जय हो विजय हो। जो सभी पापों से छुड़ाकर श्रीकृष्ण धाम को प्राप्त कराता है वह भागवत सप्ताह धन्य है।

बड़े लोग कहा करते हैं, कि प्राणी जब गंगाजी की ओर बढ़ता है। तो सभी पाप काँपने लगते हैं, कि गंगा हम सब का नाश कर देगी। किन्तु यह भागवती कथा गंगा तो घर बैठे ही समस्त पापों को नष्ट कर देती है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! प्रेतत्व से छूटा वह दिव्य पुरुप बड़ी देर तक श्रीमद्भागवती कथा सप्ताह की महिमा गाता, रहा। उसी समय वैकुण्ठ वासी पार्पदों से युक्त एक दिव्य विमान वहाँ उतरा। उसके दिव्य तेज से दशों दिशायें अलोकित हो रही थीं।"

विष्णु पार्पदों ने उस दिव्य पुरुप से कहा—"आकर इस विमान में बैठ जाओ।"

उनकी आज्ञा पाकर देवता बना वह धुन्धुकारी उसमें बैठ गया। जब उसे लेकर विमान चलने लगा, तो गोकर्ण ने उनसे कुछ कथा के सम्बन्ध में प्रश्न किये।

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! आपने कहा--प्रेतत्व से छूटे धुन्धुकारी ने अपने दिव्य रूप से बहुत देर तक श्रीमद्-भागवत कथा सप्ताह की प्रशंसा की, उसके सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा। हम सुनना चाहते हैं, उसने क्या-क्या कहा? क्योंकि वस्तु की महिमा सुनकर ही किसी के प्रति उत्सुकता होती है, उसका अनुभव होने पर श्रद्धा होती है, महिमा सुनकर ही लोग उसकी ओर आकर्षित होते हैं। नगर में बहुत से लोग आते हैं, आकर

चले जाते हैं, कोई जानता ही नहीं वे कब आये कब चले गये। किन्तु जिनका बहुत दिनों पहिले से विज्ञापन होता है, उनके सम्बन्ध की बातें प्रसारित की जाती हैं, महिमा बतायी जाती है, उनके स्वागत सत्कार का प्रबन्ध किया जाता है, तो लोगों के मन में उसके प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होती है, देखें तो वे कैसे पुरुष हैं। जिनका इतना ढोल पीटा जा रहा है, जिनके स्वागत का इतना प्रबन्ध किया जा रहा है। इस उत्सुकता के कारण ही उनके आने पर लाखों नर-नारी एकत्रित होते हैं, उनका स्वागत सत्कार किया जाता है। कहने का सारांश यह है, कि महिमा सुनकर उस विषय की जानकारी होती है, फिर उस विषय में प्रीति पैदा होती है, धुन्धुकारी ने तो कथा की महिमा का प्रत्यक्ष अनुभव किया था। अनुभवी की बात का अत्यधिक प्रभाव होता है।"

यह सुनकर सूतजी बोले—"महाराज! मैं दिव्य रूप धारी धुन्धुकारी के मुख से कही गयी भागवती कथा सप्ताह महिमा का वर्णन करूँगा और गोकर्ण जी ने जो उन भगवत् पार्षदों से प्रश्न किये हैं, उनका भी वर्णन करूँगा। आप सब इस परम पावन पुण्यप्रद प्रसंग को प्रेम पूर्वक श्रवण करें।"

छप्पय

*सूरज-साधन सुगम सरल सबके मन भायो।*
*तुरत सचनि सप्ताह भागवत साज सजायो॥*
*गाँम गाँम तैं अन्ध, वृद्ध पापी बहु आये।*
*छीन करन अघ सकल नारि नर हरषित धाये॥*
*व्यासासन गोकरन मुनि, भये विराजित प्रेम तैं।*
*सात गाँठि के बाँस में, प्रेत सुनै सब नेम तैं॥*

# भागवती कथा महिमा और भावानुसार फल

## ( १८ )

नैतन्मनस्तव कथासु विकुण्ठनाथ
सम्प्रीयते दुरितदुष्टमसाधु तीव्रम् ।
कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तम्
तस्मिन् कथं तव गतिं विमृशामि दीनः ॥*
(श्री भा० ७ स्क० ६ अ० ३६ श्लोक)

छप्पय

*फूटी पहिली गाँठ अन्तमहँ सातहु फूटी ।*
*प्रेत योनि सप्ताह भागवत सुनि के छूटी ॥*
*धुन्धुकारि धरि दिव्य रूप सम्मुख जब आयौ ।*
*श्रोता सबरे चकित भये स्वर मधुर सुनायौ ॥*
*धन्य धन्य सप्ताह धनि, धन्य भागवत अघ हरनि ।*
*करयो कृतारथ क्रूर अति, धन्य धन्य गोकरन मुनि ॥*

---

* भगवान् की स्तुति करते हुए प्रह्लादजी कह रहे हैं—"हे वैकुंठ-नाथ ! मेरा जो यह मन है उसकी प्रीति आपकी कमनीय कथाओं में नहीं है । यह राग द्वेषादि दोषों से दूषित अति असाधु, कामातुर, हर्ष शोक भय तथा विविध तापों और पुत्रैषादि एषणाओं से सदा व्याकुल बना रहता है । इस ऐसे कलुषित चित्त से मैं अति दीन-हीन किस प्रकार आपके स्वरूप का चिन्तन कर सकता हूँ स्वरूप चिन्तन तो भागवती कथाओं के श्रवण से ही हो सकता है ।"

कथा सुनने में सबकी स्वाभाविक रुचि होती है। सर्वसाधारण लोग जहाँ दश पाँच एकत्रित होकर बैठेंगे परस्पर में लोक कथायें कहेंगे। गाँवों में शीतकाल में आग जलाकर उसके चारों ओर जब लोग बाग बैठते हैं, तो उनमें लोक कथा ही छिड़ जाती है। अमुक ऐसा है, अमुक ने ऐसा किया। उनमें जैसी प्रकृति के लोग होते हैं, वैसी ही कथायें कहते हैं। कामी लोग कामिनियों की कथाओं को बड़े विस्तार के साथ अत्यन्त सरस भाषा में वर्णन करते हैं। कुछ लोगों की लड़ाइयों की बात बताते हैं, कुछ लोग अपनी प्रशंसा के पुल बाँधते हैं, कुछ शोक तथा भय वाली कहानियाँ सुनाते हैं। उनसे कुछ समय तक मनोरंजन भले ही होता हो, समय भले ही कट जाता हो, अन्तःकरण पर उनका बुरा प्रभाव पड़ता है। वे ही काम, क्रोध तथा भय जनित विचार मस्तिष्क में घूमते रहते हैं। रात्रि में वैसे ही स्वप्न आते हैं, हृदय की कोमल वृत्तियों पर उनका प्रभाव पड़ता है और वे उन्हीं विचारों में रँग जाती हैं, वैसी ही बन जाती हैं। इसके विपरीत जो ऐसी काम क्रोध जनित संसारी कथायें नहीं सुनते हैं, भगवान् की सुमधुर, परम पावन भागवती कथाओं, को सुनते, उनके चारु चरितों का नियम से पाठ करते हैं, उन्हीं के सम्बन्ध के उत्सव समारोह करते हैं, तो उनका मन भगवत् भक्ति के रंग में रँग जाता है, भगवान की लीलायें उनके अन्तःकरण में समा जाती हैं मरते समय उन लीलाओं का प्रत्यक्ष साक्षात्कार होता है, इससे वे उन्हीं लोकों में चले जाते हैं जहाँ ऐसी दिव्य लीलायें निरन्तर होती रहती हैं, जो भगवान का दिव्य धाम है जिसे वैकुण्ठ, विष्णु लोक, गोलोक, साकेत लोक तथा अपनी भावना तथा इष्ट के सम्बन्ध से भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। कथा सुनने में जिसका भाव जितना ही तीव्र लगन का होगा, उनको उसका फल भी उतनी ही तीव्रता के साथ तत्काल या देर में

मिलेगा, किन्तु कर्म कोई भी निष्फल नहीं जाता। भागवती कथाओं का श्रवण तो कभी निष्फल जाता ही नहीं जान में अनजान में कैसे भी सुनो, उसका सुफल होगा, होगा, अवश्य होगा। सुन्दर होगा, सुखकर आनन्दकर तथा आह्लादकर होगा।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! दिव्य रूप धारी धुन्धुकारी ने प्रेतयोनि से मुक्त होकर जो भागवत सप्ताह की महिमा कही, उसे मैं वर्णन करता हूँ। उसने कहा—"श्रीभागवती कथा पापों के लिये प्रज्वलित अग्नि के समान है। जैसे जब अग्नि प्रज्वलित होती है तो उसके सामने सूखा, गीला, छोटा, बड़ा तथा हरा-भरा कैसा भी काष्ठ आता है, उसे भस्मसात् कर देती है। वैसे ही श्रीमद्भागवत की नियम से सुनी कथा शुष्क, आर्द्र, छोटे, बड़े, मन से, वचन से तथा कर्म से किये गये पापों को भस्म कर देती है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! सूखे, गीले पाप कैसे होते हैं ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! सूखे पाप तो वे हैं जो अनजान में हो जाते हैं। जैसे मार्ग चल रहे हैं चींटी मर गयी। झाड़ू दे रहे हैं, उसमें जीवों का संहार हो गया। अग्नि जला रहे हैं, काष्ठ के भीतर बैठा, कोई जीव-जन्तु घुन जल गया। साग भाजी, फल-मूल बना रहे हैं, उनके भीतर का कोई जीव-जन्तु मर गया, या मूल में चला गया। ये सब अनजाने किये पाप पञ्च यज्ञों द्वारा नष्ट हो जाते हैं, जो पञ्च यज्ञ नहीं करते उनके शरीर में ये सूखे पाप बने रहते हैं। आर्द्र अर्थात् गीले पाप वे कहाते हैं जो जान बूझकर किये जाते हैं, जैसे चोरी, जारी, हत्या, विश्वासघात, असत्य भाषण, आदि-आदि। इनका कितना भी प्रायश्चित्त करो, किन्तु बीज बना ही रहता है, प्रायश्चित्तों से पापों का समूल नाश नहीं होता, किन्तु प्रेमपूर्वक किये गये

भगवन्नाम कीर्तन से, श्रद्धापूर्वक श्रवण की गयी भागवती कथाओं से ये सभी पाप समूल नष्ट हो जाते हैं।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! यह मनुष्य शरीर, इसलिये थोड़े ही दिया गया है, पेट भर खाते रहो, दिन भर खाने-पीने विषय भोगों की चिन्ता करते रहो और रात्रि में तान दुपट्टा सो जाओ। मुनियो! मानव शरीर अति दुर्लभ है, वह भी सर्वत्र नहीं इस वर्णाश्रमधर्मी भारतवर्ष में। भारतवर्ष में भी यदि उत्तम कुल में जन्म हो जाय, तो फिर क्या पूछना है। ऐसा सुयोग पाकर भी जो भागवती कथाओं के श्रवण से वञ्चित रह जाते हैं, वे अभागे हैं, जो ऐसा सुयोग पाकर भी भगवन्नाम कीर्तन नहीं करते, उनके दुर्भाग्य के लिये क्या कहा जाय। इस युक्ति को देवतागण की सभा में बारम्बार दुहराते हैं और वे स्वयं भारत में जन्म लेकर कथा सुनने को ललचाते हैं।

मुनिवर! आप स्वयं सोचें—"क्या यह अमूल्य मानव जन्म केवल पेट भरने के लिये है क्या? संसारी लोग दिन भर क्या करते हैं। किस प्रकार अधिक रुपया आवे यही सोचते रहते हैं। छल से, कपट से, छोटे लोगों को दुःख देकर, उन्हें कष्ट पहुँचा कर उनका रक्त शोषण करके, प्रपंच रचकर, असत्य बोलकर, शासकों की आँख बचाकर, उन्हें घूँस देकर, अनुचित प्रलोभन देकर, पाप करके जैसे बने तैसे धन पैदा करते हैं। किस लिये? पेट भरे, हमारा शरीर पुष्ट हो, हमारे परिवार वालों को कष्ट न हो, हमारा संसारी सुख नष्ट न हो, धर्म भले ही भ्रष्ट हो। उनसे कोई कहे—"भाई थोड़ी कथा भी सुना करो। भगवान् का नाम लिया करो, तो वे लाल पीली आँखें करके कहेंगे—"अजी, तुम्हें कथा की टी पड़ी है। आपके आगे नाथ न पीछे पगहा। ग्वां नहीं, बच्चे नहीं, काम नहीं, धन्धा नहीं बैठे ठाले रोटी मिल जाती है, तुम्हें कथा की ही सूझती है। हमें मरने का तो अव-

काश नहीं। कथा सुनें कि अपना काम करें कथा के लिये हमें समय कहाँ ?"

ऐसा लगता है, मानों ब्राह्मण का ठेका इन्होंने ही ले लिया है। यदि कथा सुनने लगें तो बाल-बच्चे भूखों ही मर जायँगे, जो कथा सुनते हैं उनके बच्चे उपवास करते हैं। या ये मर जायँगे तो इनके साथ ही इनके बाल-बच्चे या स्त्री आदि परिवार वाले भी मर जायँगे। क्योंकि इनके बिना इनका पेट ही न भरेगा। अब कहते हैं मरने का भी समय नहीं। किन्तु जब मृत्यु आवेगी तो इनसे पूछकर थोड़ी ही आवेगी, ये चाहें लाख मना करते रह जायँ, वह तो समय पर ले ही जायगी। उसके सम्मुख एक भी विकल्प न चलेगा। रही पेट भरने की बात सो, इसके लिये कोई मना थोड़े ही करता है। चौंसठ घड़ी का दिन-रात होता है। बत्तीस घड़ी संसारी काम करो बत्तीस घड़ी कथा सुनने कीर्तन करने में लगाओ। न बत्तीस लगा सको सोलह घड़ी लगाओ। सोलह भी न लगा सको आठ ही घड़ी लगाओ। चार ही लगा दो, न चार सही दो ही घड़ी लगाओ, एक घड़ी आधी घड़ी आधी में से भी आधी, कुछ तो समय दो। मान लो तुमने बहुत से पौष्टिक माल खा लिये तोंद बढ़ गयी, शरीर पुष्ट हो गया, तो इससे क्या हुआ। मरते समय वह इतना मोटा शरीर यहीं तो रह जायगा। श्मशान ले जाने वालों को कष्ट और होगा। कंधे दुखने लगेंगे। तुम्हें क्या लाभ होगा। शरीर साथ तो जायगा नहीं, सुन्दरता यहीं धरी रह जायगी, साथ जायगा पाप और पुण्य। कथा सुन लोगे तो यह शरीर सार्थक हो जायगा।"

शौनकजी! आप ही सोचें, जाने दो पुण्य मिलने की बात। दुःख तो सभी को होता है, दुःख में चित्त चंचल सभी का हो जाता है, चाहे कितना भी धनी, मानी, विद्वान् और बड़ा व्यक्ति

हो। उस दुःख में जब सीताजी के पति द्वारा त्याग की बात सुनते हैं, तो कितनी शांति मिलती है। सोचते हैं जब जगज्जननी को देह धारण करने पर ऐसे-ऐसे कष्ट सहने पड़े। इतनी भारी विपदाओं का सामना करना पड़ा, तो हम लोग तो किस खेत के बथुए हैं। जब चित्त मे प्रेम की एक हिलोर उठती है उस समय राधाकृष्ण की सरस लीलाओं को सुनने से हृदय कितना द्रवीभूत होता है, प्रेम की कैसी छटा मानस पट पर छिटक जाती है, भगवान् की लीलाओं की लकीर अन्तःकरण में खिँच जाती है, वे ही लकीरें मरते समय साकार हो उठती हैं तो सूक्ष्म शरीर उसी लोक में चला जाता है जहाँ ये लीलायें होती रहती हैं। यही इह लोक और परलोक को साधने की चातुरी है। इसी में शरीर की सार्थकता है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! इस शरीर का उपयोग केवल कथा ही सुनना है?"

सूतजी बोले—"महाराज! आप ही सोचें इस शरीर का और बनेगा ही क्या? इस शरीर का आप विचार करें यह है क्या? यह एक चलती-फिरती कोठरी है, हड्डियों का ढाँचा बनाकर नसों से बाँधकर, मांस और रक्त के गारे से थोपकर, ऊपर से त्वचा मढ़ दी है। उसके भीतर विष्ठा और मूत्र भरा हुआ है। इसका परिणाम क्या है जरा, शोक, रोग जनित दुःख। मैं पूछता हूँ, संसारी भोगों को ही सब कुछ समझने वाला कोई भी प्राणी आपने कभी सुखी देखा है? नित्य नई-नई चिन्तायें लगी रहती हैं, यह शरीर रोगों का तो कोषागार है ऊपर से नीचे तक रोग ही रोग भरे रहते हैं। कभी तृप्त नहीं होता। आज भर पेट खा लिया, सायंकाल को फिर खाली। रात्रि में खाकर सोये, प्रातः फिर भूख। सैकड़ों मन अन्न, जल, घी, दूध इसमें ठूँसते हैं, किन्तु मरते समय तक हा भूख! हा भूख! की ही रट लगी रहती है।

परिणाम में ऐसा है जैसे बालू की भीति, न जाने कब खिसक पड़े। एक साँस से दूसरी साँस का भी ठिकाना नहीं।

पशुओं के मरने पर उनकी खालों से जूता, पुरवट और भाँति-भाँति के सामान बनते हैं, उनके सींग, खुर, हड्डियाँ सभी काम में आती हैं, किन्तु सबसे अपने को श्रेष्ठ समझने वाले इस मानव प्राणी का शरीर मरने पर कुछ भी काम में नहीं आता। आठ पहर से अधिक रखा रहे तो दुर्गन्ध आने लगती है। अग्नि में जला दो मुट्ठी भर भस्म हो जाती है, भूमि में गाड़ दो तो कीड़े पड़ जाते हैं, जङ्गल में फेंक दो चील्ह, कौए, कुत्ते तथा गीदड़ आदि खाकर विष्ठा बना देते हैं। मूत्र स्थान से इसकी उत्पत्ति है, विष्ठा के समीप रहकर बढ़ता है, विष्ठा का पात्र बनकर पैदा होता है और अन्त में भस्म, कीड़ा या विष्ठा ही बन जाता है, ऐसे क्षणभंगुर अस्थिर नाशवान् शरीर से यदि परम पावन, सदा स्थिर रहने वाली, कभी भी न मिटने वाली, भगवत् कथायें सुनी जायँ, तो इससे बढ़कर इसका और उपयोग होगा ही क्या ?"

शौनकजी से पूछा—सूतजी ! आपने तो इस शरीर की बड़ी वीभत्सता वर्णन की। यह इतना अस्थिर क्यों है ?

सूतजी बोले—"महाराज ! जैसा जिसका निमित्त कारण होता है, वैसा ही उसका परिणाम होता है। मिट्टी से बर्तन बनावेंगे, उसमें मिट्टी ही मिट्टी रहेगी। खांड़ के खिलौने बनावेंगे, उसमें खांड़ ही खांड़ होगी, पत्थर की मूर्ति में पत्थर ही पत्थर होगा, सोने के बने आभूषण में सोने के अतिरिक्त और क्या होगा ? इसी प्रकार अस्थिर वस्तु से बने शरीर का परिणाम भी अस्थिर ही होगा।"

शौनकजी ने पूछा—"अस्थिर वस्तु से यह शरीर कैसे बना है ?"

सूतजी बोले—"अस्थिर वस्तु से तो महाराज ! बना ही है, इस

शरीर की रस, रक्त, मांस, अस्थि, मेदा तथा शुक्र आदि सभी धातुएँ जो हम दाल, भात, रोटी आदि खाते हैं उन्हीं से तो बढ़ती हैं बनती हैं। आप भात को प्रातः बनाकर रख दीजिये, सायंकाल तक अखाद्य बन जायगा, दूसरे दिन दुर्गन्ध आने लगेगी, तीसरे दिन कीड़े पड़ जायँगे। उसी अन्न के रस से तो यह परिपुष्ट होता है, फिर इसमें सड़ाँद न आवे कीड़े न पड़ें तो क्या हो? इसीलिये भगवन्! वह प्रेतयोनि से छूटा देवता बना धुन्धुकारी कह रहा है—"इस लोक मे शरीर की सार्थकता भागवत् सप्ताह श्रवण में ही है, इससे सरलता से श्रीहरि सन्निकट आ जाते हैं। जिसे अपने पापों का प्रायश्चित्त करना हो, दोपों को मिटाना हो, उनके लिये सप्ताह सुनना ही सरल साधन है। जो लोग भागवती कथा से वंचित रहते हैं वे जल में बुद्बुदों के समान, पतंगों के समान केवल मरने के ही लिये उत्पन्न होते हैं।"

प्रेत कह रहा है—"तुम अन्य उदाहरण ढूँढ़ने कहाँ जाओगे—मेरा ही उदाहरण ले लो। मैं सूखे बाँस की पोर में बैठा था, कथा सुनने से बाँस की सूखी गाँठें जब फूट गयीं तो क्या हृदय की गाँठें न खुल जायँगी? इस अनित्य शरीर में नित्य का, अनात्म में जो आत्मपने का अध्यास हो गया, वह नष्ट न हो जायगा? भागवती कथा सुनने से हृदय की ग्रन्थि खुल जाती है, सर्व संशय मिट जाते हैं, तथा सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं। कथा श्रवण से संसारी वासना रूपी कीचड़ जो मन में जम गयी है, वह छूट जाती है। इसलिये संसार से मुक्ति चाहने वालों को इस कथा रूपी तीर्थ में श्रद्धा भक्ति के साथ स्नान करना चाहिये।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! प्रेत ने जब भागवती कथा की ऐसी महिमा गायी, तभी विष्णु पार्षद उस दिव्य रूपधारी धुन्धुकारी को विमान पर चढ़ाकर ले जाने लगे। उस समय

गोकर्ण ने उन हरिदासों से कहा—"महानुभावो! तनिक ठहर जाओ। मेरे एक प्रश्न का उत्तर और देते जाओ।"

यह सुनकर विमान आकाश में ही स्थिर हो गया। विष्णु पार्षदों ने कहा—"कहिये, गोकर्णजी! आप क्या पूछना चाहते हैं?"

गोकर्ण ने कहा—"महाराज! पूछना यह है, कि आप लोग एक ही विमान क्यों लाये?"

पार्षदों ने कहा—"धुन्धुकारी प्रेत ने कथा सुनी, कथा सुनने से उसे वैकुण्ठ को प्राप्ति हो गयी, उसी के लिये हम एक विमान ले आये।"

गोकर्ण ने कहा—"हाँ, यही तो मेरी शंका है। कथा केवल धुन्धुकारी ने ही सुनी हो, सो बात तो नहीं यहाँ सहस्रों श्रोता थे, और सभी एक से एक बढ़कर कुलीन सत्पात्र तथा शुद्ध चित्त वाले थे। कथा सुनने का फल सभी को समान होना चाहिये सभी के लिये विमान आने चाहिये। सो, ऐसा तो हुआ नहीं। अकेले धुन्धुकारी के साथ पक्षपात क्यों किया गया, दूसरों को इस फल से वञ्चित क्यों रखा गया? भगवान् के यहाँ भी पक्षपात होता है क्या? कर्म सब एक-सा करें और फल बँटते समय एक को फल मिल जाय, शेष सब मुख ही ताकते रह जायँ, इस अन्याय का कारण क्या है?"

यह सुनकर भगवान् के पार्षद हँसे और बोले—"गोकर्ण जी! आप ने अपने श्रोताओं को सन्तुष्ट करने के निमित्त अत्यन्त ही बुद्धिमानी के साथ प्रश्न किया, हम आपके प्रश्न का उत्तर देते हैं। यह प्रश्न करके आपने हमें सम्मान प्रदान किया।"

देखिये, गोकर्णजी भाव के भेद से क्रिया में भेद हो जाता है। एक लड़की विवाह करके सोलह शृङ्गार करके घर जाती है,

वह अपने पिता का भी आलिंगन करती है, भाई का भी आलिंगन करती है, घर जाकर उसकी सौति का एक लड़का है उसका भी आलिंगन करती है। पति का भी आलिंगन करती है। काम तो एक-सा ही है, किन्तु उन सब का भाव पृथक्-पृथक् होने से उसके फल में अन्तर हो जाता है। कथा तो सबने समान रूप से सुनी, सुनने में समानता होने पर भी गुनने में मनन करने में अन्तर था। इस प्रेत को तो लगन थी—इसे तो अपने किये कुकर्मों का हृदय से पश्चात्ताप था, इसलिये यह स्थिर चित्त से सुनता रहा और दृढ़ता के साथ मनन भी करता रहा। सात दिनों तक यह स्थिर बैठा रहा, वायु का भी आहार नहीं किया, जो सुनता उसका निरन्तर मनन निदिध्यासन करता रहता। दूसरों ने सुना तो सही, किन्तु उनमें उतनी दृढ़ता नहीं थी, न हृदय में ऐसी लगन, और न अपने कुकर्मों के लिये उतना पश्चात्ताप। भगवान् तो हृदय के किये हुए पश्चात्ताप से अत्यन्त निकट आ जाते हैं।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! पश्चात्ताप से भगवान् निकट क्यों हो जाते हैं ? पश्चात्ताप में ऐसी कौन-सी विशेषता है ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! अपने किये कुकर्मों पर पीछे से दुःख हो, करने के पश्चात् ताप हो,पछितावा हो, उसे पश्चात्ताप कहते हैं। भगवान् का हृदय अत्यन्त ही कोमल है, कोई अपने बुरे काम पर अश्रु बहाता है, तो उसकी जो उष्ण साँसें निकलतीं हैं उनसे भगवान् का हृदय द्रवित हो जाता है, वे उस पश्चात्ताप करने वाले के समीप आकर उसे निर्भय कर देते हैं, उसे अभय प्रदान कर देते हैं। विभीषण ने जब आर्त होकर भगवान् की शरण गही और अपने कर्मों के प्रति खेद प्रकट किया, तो भगवान् ने तुरन्त उन्हें अपना लिया। भगवान् की प्रियता जैसी

हृदय से किये हुए पश्चात्ताप से प्राप्त की जा सकती है वैसी दूसरे किसी और कार्य से नहीं। इस विषय में एक बड़ा ही सुन्दर दृष्टान्त है।

कोई बड़े अच्छे सन्त थे। वे नियम के बड़े पक्के थे। प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में उठकर वे अपनी उपासना किया करते। अमुक समय तीर्थ स्नान करके अपनी उपासना में बैठ जाना। तनिक भी देर होती तो उन्हें बड़ा दुःख होता। एक बार वे कहीं यात्रा में गये। श्रमित होने से सोते ही रह गये। ब्रह्ममुहूर्त में उठ न सके। सूर्योदय हो गया। सूर्योदय तक सोते रहना बड़ा भारी दोष है। शास्त्रों में इस पाप के प्रायश्चित भी बताये हैं। सूर्योदय तक सोते रहने का उन्हें अत्यधिक दुःख हुआ। उस दिन वे दिन भर उदास रहे। भोजन भी नहीं किया, यही सोचते रहे, हाय! मैं प्रभु से अधिक निद्रा को प्यार करता हूँ, तभी तो निद्रा के वशीभूत होकर सोता रहा, प्रभु को भूल गया, यदि प्रभु से प्रेम होता तो मैं समय पर क्यों नहीं जागता। किसी का बच्चा बीमार पड़ जाता है, तो वह रात्रि भर जागता रहता है, मेरा प्रेम भगवान् में उतना भी नहीं है। इस प्रकार उन्हें अपने इस कर्म पर हार्दिक पश्चात्ताप रहा।

कुछ दिनों के पश्चात् पुनः एक प्रसङ्ग ऐसा ही आया। वे नियत समय पर जगे नहीं। उनके नित्य कर्म का समय हो रहा था, किन्तु वे प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न थे। उसी समय एक बहुत ही सुन्दर पुरुष ने आकर उन्हें जगाया और कहा—"महात्माजी! उठो तुम्हारी पूजा का समय हो गया।"

"महात्माजी हड़बड़ा कर उठ पड़े। देखा नित्य के उठने के समय से कुछ ही देरी हुई है। यदि ये सज्जन मुझे न जगाते तो मैं अभी सोता ही रहता। इन्होंने मेरा बड़ा उपकार किया। उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और उससे बोले—"महानुभाव! आपने बड़ी

कृपा की जो मुझे समय से जगा दिया, नहीं तो आज मैं इतना श्रमित था, कि आप न जगाते तो मैं सूर्योदय तक सोता ही रहता। आपको बहुत-बहुत धन्यवाद। क्या मैं आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूँ?"

उस व्यक्ति ने कहा—"जी, मेरा नाम कामदेव है। लोग मुझे मन्मथ भी कहते हैं।"

सन्त बड़े आश्चर्य में पड़ गये, वे बोले—"आप काम हैं! आप तो लोगों को भगवान् से विमुख करके विषयों में फँसाते हैं, आप ने मुझे प्रभु प्रार्थना के लिये कैसे उठा दिया, यह काम तो आपने अपने स्वभाव के प्रतिकूल किया?"

हँसते हुए मन्मथ ने कहा—"सन्तजी! यह काम मैंने अपनी प्रकृति के अनुकूल ही किया। मेरा स्वभाव है, लोगों को भगवान से दूर हटाना। वैसे तो आप भजन करते ही हैं। माला कर में फिरती रहती है, मनुआ इधर-उधर भटकता रहता है, भजन करने का आपका स्वभाव पड़ गया है, मन से बिना मन से इतना नित्य नियम पूरा कर लेते हैं। भगवान भी सोचते हैं जैसा यह करता है, वैसा इसे फल दे देंगे। उस दिन आप सूर्योदय तक सोते रहे, इससे आपको अत्यन्त हार्दिक पश्चात्ताप रहा। दिन भर आप पश्चात्ताप करते रहे। इससे भगवान् आपके बहुत निकट आ गये, भगवान् जितने हृदय के पश्चात्ताप से द्रवित होते हैं उतने किसी कर्म से भी द्रवित नहीं होते। मैंने सोचा—"आज भी आप सोते रहे और उस दिन की ही भाँति आपको हार्दिक पश्चात्ताप हुआ तब तो आप भगवान् के और भी अधिक प्यारे हो जायँगे, उनके अधिकाधिक सन्निकट पहुँच जायँगे। आप भगवान का उतना सान्निध्य न प्राप्त कर सकें, इसीलिये मैंने आपको समय से जगा दिया, कि जैसी नित्य गाड़ी चलती है वैसी ही चलती रहे उसमें प्रबल प्रगति न हो।"

सूतजी कह रहे हैं—"सो महाराज ! इस कहानी का सार इतना ही है, कि हृदय के किये पश्चात्ताप से, भगवान् अधिकाधिक निकट आ जाते हैं धुन्धुकारी प्रेत ने हार्दिक पश्चात्ताप करते हुए श्रद्धाभक्ति और प्रबल लगन के साथ सप्ताह सुना। इससे सबसे अधिक फल उसे ही मिला। इतने श्रोताओं में से उसके ही लिये विमान आया।"

विष्णु पार्षद गोकर्ण से कह रहे हैं—"सो, गोकर्णजी प्रेत अपनी सच्ची लगन से, हार्दिक पश्चात्ताप से, गोकर्ण पर सच्चे विश्वास से, दृढ़ भक्ति से, तर गया और श्रोताओं ने असावधानी से ऊपर के मन से किसी ने संकोच वश किसी ने कुतूहल वश, किसी ने सम्मान के लिये किसी ने लोभ वश कथा सुनी उन्हें उतना फल नहीं मिला। जैसे कोई छात्र सूत्रों को पढ़ तो ले किन्तु उन्हें मनोयोग से घोखे नहीं बारम्बार उनकी आवृत्ति न करे तो उसे याद न होंगे कुछ देर में भूल जायगा। इसी प्रकार शास्त्र का श्रवण किया किन्तु उसे निदिध्यासन द्वारा दृढ़ नहीं किया वह तो कुछ समय में नष्ट हो जाता है। कथा वार्ता में बैठो और सुनो भी, किन्तु मन दूसरी ओर प्रमाद पूर्वक सुनते हो, तो वह सुनना व्यर्थ है। केवल कान नहीं सुन सकते—जब तक उनके साथ मन का संयोग न हो। आँखें रूप को देखती हैं, किन्तु मन के द्वारा। इसी प्रकार केवल कानों में सुनकर धारण करने की शक्ति नहीं। आपका मन कहीं अन्यत्र हो आपका नाम लेकर चिल्लाते रहें आप नहीं सुनेंगे। इसलिये कथा में प्रमाद एक बड़ा दोष है। तुमने किसी से मन्त्र लिया। किन्तु तुम्हें उसके फल में ही सन्देह हो, कि जाने इसका फल मिलेगा या नहीं या यह मन्त्र शुद्ध है या नहीं। तो वह मन्त्र निष्फल हो जाता है। इसी प्रकार व्यग्रचित्त से किया हुआ जप व्यर्थ बन जाता है। जिस देश में भगवान के

भक्त नहीं वह देश नष्ट हो जाता है। किसी कुपात्र ब्राह्मण से श्राद्ध कराओ तो वह व्यर्थ है उसका कुछ भी फल नहीं होता। जो वेद को नहीं जानता अश्रोत्रिय है। अपने नित्य नैमित्तिक कर्मों से वंचित है ऐसे कुपात्र को दिया दान व्यर्थ हो जाता है। तुमने दान तो इस भावना से दिया इसके द्वारा वेद पढ़े धर्माचरण करे और उस कुपात्र ने उससे सुरापान किया व्यभिचार किया, तो उस दान का फल विपरीत ही होगा। अनाचार-व्यभिचार-पापाचार-के कारण कुल की मर्यादा नष्ट हो जाती है। वर्ण संकर कुल को दूषित कर देते हैं और उनके पितर नरक में जाते हैं। सो, हे गोकर्णजी! केवल आलस्य में पड़े-पड़े झपकियाँ लेते-लेते कथा सुनते रहे, बीच-बीच में काम काज को उठते भी गये। कुछ सुनी कुछ नहीं सुनी कुछ देर निद्रा में निमग्न रहे। तो ऐसे सुनने का कुछ भी फल नहीं होता।"

गोकर्ण ने पूछा—"आप लोग भगवान विष्णु के परमप्रिय पार्षद हैं, आप से यह पूछना चाहता हूँ, कि कथा किस प्रकार सुननी चाहिये। श्रोता को किस प्रकार किन नियमों का पालन करना चाहिये। किस प्रकार कथा सुनने से कथा का पूरा फल प्राप्त हो सकेगा। कृपा करके मेरे इन प्रश्नों का उत्तर दें।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! गोकर्ण के पूछने पर विष्णु पार्षद जिस प्रकार श्रोताओं के भेद बताकर कथा श्रवण करने की विधि बतावेंगे उसे मैं आप से आगे कहूँगा। आप सब श्रोताओं में श्रेष्ठ हैं, सबके आदर्श हैं, आपको इस प्रसंग को बहुत ही दृढ़ता और एकाग्रता के साथ श्रवण करना चाहिये।"

—०—

### छप्पय

अति अद्भुत आचरज अलौकिक सबनि दिखायो ।
सुन्दर दिव्य विमान विष्णु दासनि सँग आयो ।।
बोले मुनि गोकरन सुन्यो सप्ताह सबनि सँग ।
सबकूँ नहीं विमान न सबके भये दिव्य अँग ।।
बोले हँसि हरिदास तब, भाव भेद तै फल लह्यो ।
प्रेत कथा सुनि प्रेम तैं, तनु तजि सुरवर बनि गयो ।।

# गोकर्णजी द्वारा पुनः सप्ताह का निश्चय

## [ १६ ]

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ ।
जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि ॥*
(श्रीभा० ३ स्क० ७ अ० ४१ श्लोक)

### छप्पय

*गुरु वचननि विश्वास दीन अपने कूँ जानें ।*
*तन मन वच-अघ जीति श्याम कूँ सरबसु मानें ॥*
*पावै सो फल सकल ताहि प्रभु दर्शन देवें ।*
*तुमहिँ श्याम लै जायँ स्वयं अपनो करि लेवें ॥*
*कहि गमने वैकुण्ठ ते, भये मुदित सब सीख सुनि ।*
*करयो सविधि गोकरन ने, श्रावन महँ सप्ताह पुनि ॥*

यह मृत्यु रूपी सिंहनी सब समय सबका सर्वत्र पीछा कर रही है। प्राणी इसी के भय से भयभीत हुआ इधर-उधर भटकता फिरता है। ऐसा न हो तनिक-सी असावधानी हो जाय और हमें मृत्यु खा जाय। मरने का भय सभी को लगा हुआ है

---

* विदुरजी मैत्रेय मुनि से कह रहे हैं—"हे अनघ ! जितने वेद हैं जितने यज्ञ हैं जितने तप तथा दान हैं वे सब मिलकर भी जीवों को मृत्यु के भय से अभय कर देने वाले फल की एक अंश में भी बराबरी नहीं कर सकते। अर्थात् जीवों को मृत्यु के भय से अभयकर देना यही सबसे बड़ा पुण्य कार्य है।"

मारना कोई नहीं चाहता। तनिक-सी बीमारी हुई तुरन्त हम वैद्य के पास भागे जाते हैं, देखिये हमें क्या हो गया। मृत्यु तो न हो जायगी। इसका कोई उपाय बताइये। कोई ओषधि दीजिये। जिससे यह रोग छूट जाय, मृत्यु भय दूर हो जाय। किन्तु मृत्यु भय इन संसारी उपायों से नहीं छूटता। वह मृत्यु रूपी सिंहनी तो तभी निवृत्त होगी जब तुम सर्वात्मभाव से भगवान् की शरण में आ जाओगे। सन्तजनों के कहे शास्त्र सम्मत साधन का श्रद्धाभक्ति के सहित पालन करोगे और अपने आपको उन्हीं की कृपा पर छोड़ दोगे, तभी मृत्यु तुम्हारा पीछा छोड़ सकती है। तभी तुम स्वस्थ हो सकते हो। तभी निर्भय होकर पैर पसार कर सो सकते हो। मृत्यु से बचने का भागवत कथा श्रवण और भगवत् स्मरण तथा चिन्तन के अतिरिक्त अन्य कोई साधन ही नहीं है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! गोकर्ण के पूछने पर विष्णु पार्षदों ने जब भाव-भेद की व्याख्या की तो गोकर्ण ने कहा—"हे हरिदासो! श्रोता की भावना से फल में भेद हो सकता है। तब तो सभी को भिन्न-भिन्न फल मिलेगा।"

विष्णु पार्षदों ने कहा—"बात तो ऐसी ही है। एक पंक्ति में बैठकर सहस्रों भोजन कर रहे हैं। खाने के पदार्थ वे ही सबके लिये हैं। परसने वाले भी एक ही हैं। किन्तु जो बहुत भूखा होगा उसे भोजन में बहुत आनन्द आवेगा। जिसे भूख न होगी, उसे उससे कम आनन्द आवेगा। जिसे कभी-कभी लड्डू मिलते हैं वह पेट भरने पर भी और खा जायगा। जिन्हें नित्य मिलते हैं वह दो चार ही खाकर तृप्त हो जायँगे। जिसे पित्त सम्बन्धी रोग होगा स्वाद बिगड़ गया होगा उन्हें मीठे लड्डू भी विष जैसे लगेंगे। वस्तु एक परोसने वाले एक रुचि के अनुसार स्वाद में भेद हो जाता है। यदि परोसने वाला मुँह

देखकर अपने स्वार्थ वश भेदभाव से परोसता है। तो भी भिन्नता हो जाती है। इसलिये श्रोता के भाव के साथ वक्ता का भी भाव देखा जाता है। जो भागवत के वक्ता केवल कण लोभ से ही जिसे-तिसे कथा सुनाते फिरते हैं। उनकी भी कथा का उतना प्रभाव नहीं होता। उन्हें कथा से पैसा मिल जाता है लोगों का कुछ समय के लिये मनोरञ्जन हो जाता है। अन्य संसारी कार्यों की अपेक्षा तो यह भी श्रेष्ठ है। इतने समय तक दूसरों की निंदा स्तुति से बच जाते हैं। भगवत् गुणानुवाद कानों में पड़ने से कान पवित्र होते हैं। अनिच्छापूर्वक सुनने से भी हृदय पर कुछ न कुछ प्रभाव तो पड़ता ही है।"

गोकर्णजी ने पूछा—"श्रोता के मुख्य नियम बताइये। जिनके पालन से उसे पूर्ण फल मिल जाय?"

विष्णु पार्षदों ने कहा—"देखिये, कथा सुनने के नियम बहुत हैं, किन्तु मुख्य चार नियमों का यदि पालन कर ले तो उसे कथा श्रवण का पूर्ण फल मिल सकता है। पहिला तो गुरु के वचनों पर पूर्ण रूप से विश्वास होना। ये जो मार्ग बताते हैं उसी से मेरा उद्धार होगा। दूसरे अपने में दीन भाव करना। भक्ति मार्ग में दीनता ही भूषण है अहंकार ही पतन का कारण है। मैं ऐसा हूँ, वैसा हूँ, यह कर डालूँगा। कौन मेरी बराबरी कर सकता है।" ये मूर्खता के अज्ञान से मोहित अहंकारी जीवों के भाव हैं। भगवत्भक्त सन्त महात्माओं की सेवा करना। सभी का अपने को सेवक समझना। सभी में भगवान् का भाव करके प्राणिमात्र को उनका ही रूप समझकर नमन करना। ऐसे दीन नम्र भगवत्भक्त को कथा का पूर्ण फल मिलता है। तीसरा नियम है मन और क्रियाजनित दोषों से यथाशक्ति बचते रहते रहना और कथा में स्थिर मति रहना। यदि श्रोता इन चार नियमों का पालन करे तब उसे कथा का पूर्ण फल मिलेगा।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! इन चारों की तनिक व्याख्या करके समझाइये।"

सूतजी बोले—"महाराज ! आप तो सब जानते ही हैं। पहिला तो है गुरु वचनों पर विश्वास। देखिये, जो कार्य सविधि किया जाता है, उसका तो फल जैसा होना चाहिये वैसा होता है और जो विधि की ओर ध्यान न देकर मनमानी करते हैं उन्हें जैसा चाहिये वैसा फल नहीं मिलता। कभी-कभी तो उसका विपरीत फल हो जाता है। एस विषय में एक दृष्टान्त सुनिये।"

एक आदमी की एक गौ थी, वह नित्य पाँच सेर दूध देती थी। एक दिन उसका पेट फूल गया। वह चिकित्सक के पास गया और बोला—"मेरी गौ नित्य पाँच सेर दूध देती थी, आज न जाने क्यों उसका पेट फूल गया है, कोई ऐसी ओषधि दीजिये जिससे पेट भी अच्छा हो जाय, और दूध देने लगे। वैद्य ने कहा—"एक आधा सेर घी, सेर भर गुड़, अजवायन, सोंठ, तनिक सज्जी डालकर पका लो। गौ को तनिक कुनकुना पिला दो।" उसने कहा—"अच्छी बात है।"

घर जाकर उसने सोचा—"मेरी गौ पाँच सेर दूध देती थी, उसमें से दश छटाँक मक्खन निकलता था। आधा सेर घी तो इसके पेट में ही है इसलिये घृत डालने की तो आवश्यकता नहीं और ओषधियाँ उसने गरम करके पिला दीं पेट अच्छा नहीं हुआ। वह पुनः वैद्य के पास गया। जाकर सब बताया।"

उसकी बात सुनकर वैद्य बहुत हँसा। उसने कहा—"तुमने विधि ही बिगाड़ दी। अपनी बुद्धि लगाकर ओषधि का गुण ही खो दिया। ओषधि तो तभी प्रभाव पहुँचाती है,जब उसका विधि-पूर्वक सेवन किया जाय, वैद्य के वचनों पर विश्वास करके उसकी बतायी विधि के साथ दी जाय। ओषधि चाहे एक ही हो, किन्तु यदि वह नियमानुसार न दी जायगी तो उसका प्रभाव न होगा,

चाहे उसे अश्विनी कुमार ही क्यों न दें। इस विषय में एक प्राचीन दृष्टान्त है।

अश्विनीकुमार देवताओं के वैद्य हैं वे बड़े गुणग्राही हैं, वैद्य विद्या को शास्त्रों में निन्दनीय माना है इसलिये उन्हे देवताओं की पंक्तियों से पृथक् कर दिया था, देवता उन्हें अपने साथ बिठाकर नहीं खिलाते-पिलाते थे, किन्तु इन्होंने अपनी चिकित्सा के प्रभाव से पुनः पंक्ति प्राप्त कर ली वृद्ध च्यवन ऋषि की चिकित्सा इन्होंने इसी प्रतिज्ञा के साथ की थी, कि आप हमें देवताओं की पंक्ति में बिठाकर यज्ञों में सोमरस पिवा दें और हम आपको वृद्ध से युवक बना दें। ऋषि ने इस बात को स्वीकार कर लिया जब वे वृद्ध से युवक बन गये तो अपने श्वसुर महाराज शर्याति के यज्ञ में बहुत लड़ाई झगड़े के पश्चात् इन्हें देवताओं की पंक्ति में बिठाकर सोमरस पिला ही दिया।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! शास्त्रों में वैद्य विद्या की तथा वैद्यों की इतनी निन्दा क्यों की है। वैद्य विद्या तो बड़ा उपकार करती है। वैद्य लोग दुखियों को सुखी बनाते हैं, रोते हुओं को हँसाते हैं मृतकों को जिलाते हैं। वृद्धों को युवक बनाते हैं, निस्सन्तानों को सन्तान देते हैं। इतने उपकारी वैद्यों की उनकी जीवन दान देने वाली विद्या की इतनी निन्दा क्यों की गयी है।"

सूतजी बोले—"महाराज! न वैद्यों की निन्दा है न वैद्यविद्या की निन्दा है। शास्त्रकारों ने तो धर्म, अर्थ, काम यहाँ तक कि मोक्ष का मूल कारण आरोग्य को ही बताया है। जो आरोग्य मोक्ष लाभ तक कराने में समर्थ है, उसकी निन्दा कौन बुद्धिमान करेगा। इस विद्या की उपयोगिता में तो कोई सन्देह ही नहीं। किन्तु जो इसी के द्वारा आजीविका करते हैं उन आयुर्वेद जीवी लोगों की निन्दा है, क्योंकि उनकी आजीविका की भावना विशुद्ध

नहीं है। जैसे मूर्ति पूजा तो भगवान् को प्राप्त कराती है, प्रभु प्राप्ति का परम साधन है, किन्तु जो मूर्तियों को व्यापार बनाकर उसी से आजीविका चलाते हैं, उस देवल की बड़ी भारी निन्दा हैं। मूर्ति पूजा आवश्यक है, किन्तु उसे व्यापार बनाकर पेट पालन निन्द्य है। जैसे और भी दृष्टान्त लें। मनुष्यों का मरना निश्चित है, उनका मृतक कर्म होना अनिवार्य है, उस कर्म को ब्राह्मण ही करायेगा भी, किन्तु जो ब्राह्मण मृतक के हाथ से दान लेते हैं वे ब्राह्मण अत्यन्त नीच माने जाते हैं, क्योंकि उनकी भावना यही बनी रहती है कोई मरे हमें आय हो। यही बात वैद्यों–चिकित्सा जीवियों–की है। उनकी भावना रहती है अधिक रोगी हों, हमारी ओषधि अधिक बिके। कार्य कोई भी बुरा नहीं, व्यक्ति कोई निन्दनीय नहीं। लोक में सभी कार्य आवश्यक हैं, उपयोगी हैं, उपकारक हैं, किन्तु शास्त्रों में जो कार्य निम्न श्रेणी के बताये हैं उनसे आजीविका चलाने की जो वृत्ति है उसकी निन्दा है। जैसे अस्त्र-शस्त्र बनाने वाला नीच माना गया है, क्योंकि उनसे जन संहार होता है। इसी प्रकार मांस बेचने वाला, मद्य बेचने वाला, लोहा, रस बेचने वाला, वेश्यावृत्ति करने कराने वाला, रोगों के द्वारा आजीविका करने वाला, कलहोपजीवी, मृतकों से आजीविका करने वाले, मछली, पशु-पक्षियों को पकड़ कर उनसे आजीविका करने वालों की निन्दा की गयी है, क्योंकि ऐसे अन्न के खाने से बुद्धि मलिन हो जाती है, ऐसे लोग सांसारिक उन्नति चाहे जितनी कर लें परमार्थ से सदा वंचित ही रहते हैं।

अश्विनी कुमार यद्यपि वैद्यक से ही जीविका चलाते थे, किंतु सन्त सेवा, परोपकार वृत्ति और नम्रता द्वारा उन्होंने ब्रह्म विद्या भी प्राप्त कर ली। दधीचि ऋषि जो दृद्धङ्ङाथवर्ण कहाते थे उनकी सेवा करके उन्हें ब्रह्मविद्या देने को सहमत कर लिया।

इन्द्र को जब मालूम हुआ तो इन्द्र ने कहा—"महाराज ! आपने यदि उन वैद्यों को ब्रह्म विद्या प्रदान की तो मैं आपका सिर काट लूँगा।"

ऋषि ने यह बात वैद्यों से कही। इन्होंने कहा—"भगवन्! क्या आप सिर काटने से डरते हैं, आप जैसे परोपकारी के लिये क्या मरना क्या जीना। हम आपके कटे सिर को पुनः लगा देंगे यह कहकर इन लोगों ने मुनि के सिर को काटकर घोड़े के शरीर में लगा दिया और घोड़े के सिर को मुनि के धड़ पर। मुनि ने उस अश्व के सिर से ही इन्हें ब्रह्म विद्या सिखायी। इन्द्र ने जब सुना तो उसने आकर मुनि का घोड़े का सिर काट दिया। अश्विनी कुमारों ने तुरन्त मुनि का सिर उनके धड़ पर जोड़ दिया। अपनी विद्या, परोपकार, नम्रता और निस्पृहता के कारण ये वैद्य होकर भी महाज्ञानी बन गये।"

हाँ, तो एक दिन उनकी इच्छा हुई हमने सब विद्या तो सीख लीं, अभी तक पिंगल विद्या नहीं सीखी, इसके लिये किसी को और गुरु बनाना चाहिये।

सभी विद्याओं के आचार्य शेषजी हैं, इनके सहस्र फण हैं। ये उनके समीप गये और बोले—"भगवन्! हम आपका शिष्यत्व स्वीकार करने आये हैं, आप जब तक आज्ञा देंगे आप की सेवा में रहकर आपकी सुश्रूषा करेंगे, हमें पिंगल विद्या आप सिखा दें।"

गुरु के वचनों पर सविधि विश्वास करना चाहिये। इसकी शिक्षा देने के लिये शेषजी ने कहा—"अश्विनी कुमारो! तुम धर्मात्मा हो, परोपकारी हो, निश्छल भाव से दीन होकर तुम मेरे पास विद्या पढ़ने आये हो, तुम्हें विद्या पढ़ाना तो मेरा परम कर्तव्य ही है, किन्तु करूँ क्या मेरे नेत्र में अत्यन्त ही पीड़ा है, इसे यदि तुम मिटा दो, तो मैं तुम्हें पिंगल पढ़ाऊँ।"

बड़े उत्साह के साथ अश्विनी कुमारों ने कहा—"महाराज ! यह कौन-सी बात है हमने लाखों करोड़ों आदमियों की आँखों की पीड़ा चुटकी बजाते अच्छी कर दी है। आँख की पीड़ा की हमारे पास 'त्रिघात' नामकी एक ऐसी ओपधि है, कि कैसी भी नेत्र पीड़ा हो, तुरन्त अच्छी हो जाय। लाइये हम अभी लगाकर आपकी पीड़ा शान्त करते हैं।"

यह कहकर अश्विनी कुमारों ने उनकी आखों में वह ओपधि लगा दी। ओपधि लगाते ही शेपजी की पीड़ा तो और भी कई गुनी बढ़ गयी। वे हाय-हाय करके चिल्लाने लगे।"

अश्विनी कुमारों ने सोचा—"कभी भी व्यर्थ न होने वाली हमारी ओपधि आज व्यर्थ कैसे बन गयी। इससे उत्तम तो नेत्र पीड़ा की संसार में कोई दूसरी ओपधि ही नहीं। अब हम क्या करें। हमारा तो आज सम्पूर्ण मद चूर्ण हो गया।" ऐसा सोचकर वे बड़े उदास हो गये किंकर्तव्यविमूढ़ बने खड़े रहे। उसी समय कहीं से घूमते-फिरते नारदजी आ गये। नारदजी ने पूछा—"अश्विनी कुमारो ! तुम इतने उदास क्यों हो रहे हो ?"

कुमारों ने कहा—"महाराज ! क्या बतावें शेपजी की चक्षु पीड़ा हम शान्त करने में समर्थ न हो सके। हमारी सर्वोत्तम ओपधि आज व्यर्थ बन गयी।"

नारदजी ने कहा—"भाई ! तुम तो संसार में सबसे बड़े वैद्य हो। तुम्हारी ही ओपधि व्यर्थ बन गयी अब हम क्या बतावें। किन्तु मर्त्य लोक में हमने एक बड़ा परोपकारी वैद्य देखा है। वह कभी किसी से कुछ लेता नहीं। वैसे ही सबकी ओपधि करता है रोगी के द्वारा वह कभी अपनी आजीविका नहीं चलाता। रोगी के घर का पानी भी नहीं पीता। उसकी बड़ी ख्याति है, उसके हाथ में बड़ा यश है। रोगी को देखते ही उसका निदान

करता है, तुरन्त सब बातें बता देता है, ओषधि खाते ही रोगी अच्छा हो जाता है। आप लोग उसके पास जायँ सम्भव है वह कोई ओषधि बता दे।"

यह सुनकर ब्राह्मण वेष बनाकर दोनों भाई मर्त्य लोक में उस वैद्य के पास गये। उसके यहाँ रोगियों की भीड़ लगी थी। जब इनकी पारी आई तो वैद्य ने पूछा—"कहिये आपको क्या पीड़ा है ?"

उन्होंने कहा—"हमारे नेत्र में बड़ी पीड़ा है, और इसमें हमने 'त्रिघात' नाम की ओषधि भी लगायी है, फिर भी पीड़ा गयी नहीं प्रत्युत बढ़ गयी है, कोई दूसरी ओषधि बताइये।"

वैद्य ने इन ब्राह्मणों की ओर देखा और बोला—"ब्राह्मणो! त्रिघात ओषधि को तो अश्विनी कुमारों के अतिरिक्त अन्य कोई वैद्य जानता नहीं। किन्तु शेषजी के नेत्र की पीड़ा उससे भी भी नहीं गयी। आप लोग अश्विनी कुमार तो नहीं हैं ?"

अब क्या करते अश्विनी कुमार अपने यथार्थ रूप में आ गये। वैद्य ने उठकर उनकी यथोचित पूजा की। वैद्य की विधिवत् की हुई पूजा को सविधि स्वीकार करके अश्विनी कुमारों ने पूछा—"वैद्यजी! त्रिघात ओषधि आज तक हमने जिस मनुष्य पर प्रयोग की वहीं सफल हुई। वह ओषधि कभी व्यर्थ नहीं हुई। शेषजी के ऊपर वह अव्यर्थ ओषधि व्यर्थ कैसे बन गयी। ओषधि की उत्तमता में तो कोई सन्देह ही नहीं ?"

वैद्य ने कहा—"सुर वैद्यो! आपकी ओषधि को व्यर्थ कौन कह सकता है, ओषधि तो आपकी सर्वोत्तम है, अव्यर्थ है, किन्तु उसके प्रयोग की विधि में अन्तर पड़ गया है।"

अश्विनी कुमारों ने कहा—"नहीं, भाई! हमने प्रत्येक रोगी पर इसी विधि से इसका प्रयोग किया है और कभी व्यर्थ नहीं हुई। वैसे ही हमने शेषजी के नेत्र में उसे लगाया।"

वैद्य ने कहा—"भगवन्! आपका कथन सत्य है, किन्तु अनजान में तनिक-सी त्रुटि रह गयी। आप मनुष्यों के नेत्रों पर उसका प्रयोग जब करते थे, जिस नेत्र में पीड़ा होती थी उसे खोलने को स्वभावतः उसके दूसरे नेत्र पर आपकी हथेली रख जाती थी, इससे उसका दूसरा नेत्र बन्द हो जाता था। यों भी किसी रोगी के एक नेत्र में ओषधि डालो तो वह अपने दूसरे नेत्र को स्वभावतः बन्द कर लेगा। इससे ओषधि का प्रभाव पड़ता था। शेषजी के हैं दो सहस्र नेत्र आपने ओषधि एक नेत्र में डाली एक सहस्र नौ सौ निन्यानवे नेत्र उनके खुले के खुले ही रह गये, अब ओषधि का प्रभाव कैसे हो ? कृपा करके उनके दो सहस्र नेत्रों को बन्द कराके अपनी इसी ओषधि को उनकी आँख में डालिये। देखिये प्रभाव होता है या नहीं ?"

वैद्य की यह बात सुनकर अश्विनी कुमार तुरन्त आये उन्होंने आकर शेषजी के सब नेत्र बंद कराये पीड़ा वाले नेत्र को खोलकर ओषधि डाली। ओषधि के पड़ते ही विकार युक्त जल निकलकर बह गया। शेषजी की पीड़ा तुरन्त शान्त हो गयी।

तब शेषजी ने कहा—"अश्विनी कुमारो! वस्तु एक ही है, कथा एक ही है, वक्ता भी एक ही है, किन्तु श्रोताओं की विधि की विभिन्नता से भावों की भिन्नता से उसका फल भिन्न हो जाता है, अतः गुरु जो शास्त्रीय विधि बतावे उसी के अनुसार विश्वास रखकर साधन करना चाहिये। तभी फल मिलता है।"

सूतजी कहते हैं—"सो, मुनियो! सर्व प्रथम तो श्रोता का गुरु वाक्य में विश्वास हो। दूसरे अपने में दीनत्व की भावना। एक ही गुरु के पास दो शिष्य जायँ, एक तो दीन हो दूसरा अभिमानी हो तो अभिमानी को तो उसकी सेवा के अनुसार कुछ संसारी फल मिल जायगा, किन्तु दीन के तो वश में स्वयं

भगवान् हो जायँगे, क्योंकि भगवान् तो दीनदयाल हैं, वे अपने आश्रित दीन सेवकों को अपना आपा ही अर्पण कर देते हैं।"

देखिये, भगवान् कृष्णचन्द्र के पास दुर्योधन और अर्जुन दोनों गये। यही नहीं दुर्योधन पहिले पहुँचा, किन्तु वह अभिमानी था उनके सिर के पास जाकर बैठ गया। भगवान् समझ गये, यह अभिमान की गठरी को साथ लेकर मेरे पास आया है, इसलिये जानकर भी वे मुख को ढके रहे, उसे दर्शन नहीं दिये। कुछ काल के पश्चात् अर्जुन आया वह दीनता के साथ आया। आकर पलंग के नीचे चरणों के समीप बैठकर शनैः शनैः तलुओं को सुहलाने लगा। भगवान् ने तुरन्त अपने आवरण को हटा दिया और अपने विनम्र दीन भक्त को दर्शन देने उठकर बैठ गये और बोले—"कब आये प्यारे ?"

तब तक अभिमानी दुर्योधन बीच में ही बोल उठा—"देखो, कृष्ण ! पहिले मैं आया हूँ ? पहिले मेरा अधिकार है।"

तब भगवान् ने अँगड़ाई लेते कहा—"अच्छा कौरव राज ! आप भी पधारे हैं, धन्यभाग। पहिले आप ही आये होंगे, किन्तु मैंने तो पहिले अर्जुन को ही देखा है, इसलिये पहिले मैं इसी को कुछ दूँगा।"

दुर्योधन ने कहा—"नहीं, यह बात नहीं अपनी सम्पूर्ण सेना आपको मुझे ही देनी पड़ेगी ?"

भगवान् ने पूछा—"अर्जुन ! तुम्हें क्या चाहिये ?"

अर्जुन ने कहा—"महाराज ! मुझे कुछ नहीं चाहिये मुझे आप चाहिये।"

भगवान् ने कहा—"मैं लड़ूँगा नहीं, शस्त्र नहीं उठाऊँगा।"

अर्जुन ने कहा—"आप कब किससे लड़ते हैं। आपके लिये शत्रु मित्र सब समान हैं। लड़ने को तो हम संसारी लोग ही

बहुत हैं, आपका तो मुझे दर्शन चाहिये, आप मेरे हृदय में भीतर और रथ पर बाहर मेरे पास बैठे रहें।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! भगवान् के समीप दोनों ही समान रूप से गये, यही नहीं दुर्योधन पहिले गया, किन्तु वह अभिमान सहित गया, उसे मिले मरणधर्मा हिंसा करने वाले सैनिक। अर्जुन पीछे गया, किन्तु नम्र बनकर गया, उसे मिले लड़ाई-झगड़े से विरत, हँसते हुए, सेवा परायण निरन्तर रथ पर बैठे श्यामसुन्दर। जिधर हँसते हुए श्याम सुन्दर हैं उधर ही श्री है, उधर ही विभूति है, उधर ही विजय है। नम्रता भगवान् को भी विनम्र सेवक बना देती है।"

सूतजी कह रहे हैं—"सो, मुनियो! श्रोता में दूसरा प्रधान गुण होना चाहिये नम्रता दीनता की भावना। तीसरा गुण होना चाहिये मनोदोष जय। दोष सभी मन से होते हैं, मन में दोष न हों तो वाचा और कर्म से दोष हो ही नहीं सकते। फिर भी ऋषियों ने उनके तीन भेद किये हैं। मन द्वारा जो देह से होते हैं उन्हें शारीरिक दोष कहते हैं। मन द्वारा जो वाणी से होते हैं उन्हें वाचिक दोष और जो केवल मन से ही होते हैं उन्हें मानसिक दोष कहते हैं किसी की वस्तु को अन्याय से छिपा कर या बलपूर्वक उठा लाना, किसी को मारना, कष्ट पहुँचाना, अपनी धर्मपत्नी को छोड़कर अन्य से संसर्ग करना इस प्रकार के जो शरीर से किये जाने वाले पाप हैं, उन्हें शारीरिक दोष कहते हैं। व्यर्थ की बातें बोलना, अनावश्यक बोलना, बहुत बक-बक करते रहना, दूसरों की निन्दा करना, अश्लील हँसी-विनोद करना, गाली देना, कड़वे वचन बोलना, असत्य बोलना, तथा जो बात नहीं बोलनी चाहिये उसे बोलना ये वाणी के दोष हैं। संसारी वस्तुओं में अत्यधिक तृष्णा करना। दूसरों से द्वेष करना, मन से दूसरों का अनिष्ट सोचना, कामवासना को मन

में स्थान देना इस प्रकार काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर अन्य भावों को मन में स्थान देने का नाम मानसिक पाप है। भागवत सप्ताह के श्रोता को इनसे यथाशक्ति सावधानी के साथ बचे रहना चाहिये। इस प्रकार जितेन्द्रिय होकर जो कथा सुनता है, वह कथा के पूर्ण फल को प्राप्त करता है।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! चौथा प्रधान नियम है, कथा में बुद्धि को स्थिर रखना। देखिये, श्रोता चार प्रकार के होते हैं, एक तकुआ. एक भखुआ, एक सूप और एक चलनी। अब इनके लक्षण सुनिये। चर्खे में जो लोहे का तकुआ होता है, जिस पर सूत लपेटा जाता है, उस पर कैसा भी अच्छा-बुरा मोटा-पतला सूत हो लपेटा ही जाता है। फिर उस पर जब अधिक पिंडी लिपट जाती है तो उतार दी जाती है। फिर दूसरी काती जाती है। इसी प्रकार एक श्रोता ऐसे होते हैं, जो वक्ता की ओर ताकते रहते हैं। वह जो भी कहे सबको धारण कर लेते हैं, उसमें विवेक नहीं करते कौन विषय कैसा है।

एक होते हैं भखुआ। भखुआ वे कहाते हैं जो चबा-चबाकर खाते ही रहते हैं, कथा में जो भी सुना थोड़ा मनन करके उसे पचा जाते हैं किसी विषय को छोड़ते नहीं। अब तीसरे होते हैं सूप के सदृश। कथा में तीन तरह के बचन होते हैं, रोचक, भयानक और यथार्थ। रोचक तो ऐसे होते हैं, किसी विषय में रुचि बढ़ाने को एक विषय को विस्तार से दृष्टान्त देकर समझाया जाता है, भयानक वे वाक्य हैं, कि किसी विषय से प्रवृत्ति हटाने को उसकी अत्यधिक निन्दा की जाती है। भय दिखाया जाता है। यथार्थ तो यथार्थ है ही। जैसे का तैसा वर्णन करना। सूप में अन्न कूड़ा करकट सभी भरकर फटका जाता है। सूप कूड़ा करकट तथा सड़े-घुने अनाज को बाहर फेंक देता है। अच्छे को उसी में रखे रहता है। ऐसे ही सूप के सदृश श्रोता जो

भगवान् की भक्ति भगवन्नाम महिमा आदि के अत्यन्त मधुर विषय हैं उन्हें तो ग्रहण करता है। और प्रकृति में फँसाने वाले या काम्यकर्मों के प्रसङ्गानुसार प्रशंसा परक वचनों को त्याग देता है, भगवान् की विशुद्ध अहैतुकी पराभक्ति को ही वे ग्रहण करते हैं।

चौथे चलनी के सदृश श्रोता होते हैं। चलनी में भूसी सहित आटा भरा जाता है, चलनी अच्छे-अच्छे आटे को नीचे गिरा देती है, भूसी-भूसी को अपने पास रख लेती है, इसी प्रकार जो क्षुद्र श्रोता होते हैं। वे तत्व की उत्तम बातों को त्याग देते हैं, प्रसंगानुसार जो मनोरंजक दृष्टान्त या काम्यकर्मों के प्रशंसा परक वचनों को अपना लेते हैं।"

सूतजी कह रहे हैं—"सो, मुनियो ! श्रोताओं के इन भेदों को कथा में स्थिर बुद्धि होकर विवेक पूर्वक सब बातों को सुने फिर उनका मनन करे निदिध्यासन करे तो वही श्रोता कथा के यथार्थ फल को प्राप्त कर सकता है। जैसे धुन्धुकारी प्रेत ने निराहार रहकर स्थिर बुद्धि से मनन निदिध्यासन पूर्वक सप्ताह श्रवण किया था। विष्णु पार्षदों ने यही उपदेश गोकर्णजी को दिया था।"

शौनकजी ने पूछा—"तो हाँ, सूतजी, फिर विष्णु पार्षदों ने गोकर्णजी के क्या कहा ?"

सूतजी बोले—"भगवन् ! गोकर्ण के पूछने पर प्रभु पार्षदों ने उनसे कहा—"गोकर्ण ! अबके तुम अपने सभी श्रोताओं को सावधान कर देना। जो सच्ची लगन के हों, नियमों का सविधि पालन कर सकते हों उन्हीं को रखे, इस प्रकार कथा सुनाने से आपको बड़ा भारी पुण्य होगा।"

गोकर्ण ने पूछा—"क्या पुण्य होगा, महाराज ! मेरे लिये भी ऐसा विमान आवेगा क्या ? आप लोगों के अन्त समय दर्शन हो सकेंगे न ?"

हँसकर भगवान् के पार्षद बोले—"गोकर्णजी ! आप कैसी बातें कर रहे हैं। महानुभाव ! आप तो तरनतारन हैं। स्वयं तो तरेंगे ही बहुत से जीवों को अपने साथ तार देंगे। हमारी तो बात ही क्या स्वयं साक्षात् गोलोकवासी गोविन्द ही आपको लेने आवेंगे। वे अपने गोलोक में आपको सदा के लिये रखेंगे। आप जीवों के कल्याणार्थ पुनः श्रीमद्भागवत का सप्ताह करें।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इतना कहकर वे भगवान् के पार्षद अत्यन्त ही ताल स्वर के सहित 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव।' भगवान के इन सुमधुर नामों का कीर्तन करने लगे। दिव्य रूपधारी धुन्धुकारी भी उनके स्वर में स्वर मिलाकर दोनों हाथों से ताली बजाकर उनके साथ कीर्तन करने लगा। इस प्रकार वे सब कीर्तन करते हुए भगवान् के लोक को चले गये।"

इधर गोकर्ण का सप्ताह आषाढ़ की पूर्णिमा को समाप्त हुआ। उन्होंने श्रावण शुक्ला नवमी से पुनः भागवत सप्ताह करने का निश्चय किया और उसके लिये अभी से तैयारी करने लगे। अब वे जैसे सप्ताह करेंगे और उनके सप्ताह के अन्त में जिस प्रकार श्रीहरि प्रकट होंगे, वह कथा मैं आगे वर्णन करूँगा, आप सब दत्तचित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

*कदली खंभ लगाय बनायो मण्डप मन हर।*
*सुन्दर वस्त्र बिछाय सजायो आसन सुखकर॥*
*सप्ता के जो नियम यथाविधि पालहिँ सब जन।*
*व्यासासन गोकरन बिराजे करि हरि वन्दन॥*
*श्रोतनि को मन मुदित अति, तन धन,घर सुधि नहिँ रही।*
*अति अद्भुत घटना घटी, जबहिँ कथा पूरन भई॥*

# गोकर्णजी के दूसरे सप्ताह में प्रभु प्राकट्य तथा सभी का उद्धार

## ( २० )

तैर्दर्शनीयावयवैरुदार-
विलासहासेक्षितवामसूक्तैः ।
हृतात्मनो हृतप्राणांश्च भक्ति-
रनिच्छतो मे गतिमण्वीं प्रयुङ्क्ते ॥*
(श्री भा० ३ स्क०२५ अ० ३६ श्लो०)

छप्पय

*अगनित दिव्य विमान कथा थल सबनि निहारे।*
*संग पारषद लिये स्वयं श्री श्याम पधारे॥*
*पीताम्बर बनमाल भाल वर मुकुट विराजे।*
*आलिंगन गोकरन करें हरि बाजे बाजें॥*
*नगर निवासी नारि नर, नीच ऊँच सब जीव जे।*
*कृपा करी करुना अयन, चढ़े विमाननि तुरत ते॥*

---

* कपिल भगवान् अपनी माता से कह रहे हैं—"हे माता! जो मेरे भक्त मेरी झाँकी कर लेते हैं, मेरे परम सुन्दर दर्शनीय अंग और अवयवों की, मेरे उदार हास विलास की, मेरी मन हर चवल चपल चितवन की, मेरी मन मोहिनी वाणी की तथा मेरी रूप माधुरी की अनुभूति कर लेते हैं उनकी इन्द्रियाँ तथा मन की वृत्तियाँ मुझमें फँस जाती हैं इससे वे मुझे छोड़कर स्वयं तो मुक्ति की इच्छा करते ही नहीं किन्तु मेरी भक्ति उन्हें परम पद को प्राप्त करा ही देती है।"

एक सूर्य नारायण उदित होकर असंख्यों घरों के अंधकार दूर कर देते हैं, एक धर्मात्मा प्याऊ लगाते हैं, असंख्यों यात्री उस पर अपनी प्यास बुझाते हैं, एक सामर्थ्यवान पुरुष औषधालय खोलते हैं, कितने रोगी वहाँ से औषधि लेकर रोग निवृत्त होते हैं, जाड़ों में एक मनुष्य इधर-उधर से ईंधन बटोर कर आग जलाता है, उससे कितने लोग अपना शीत भगाते हैं, कितने छोटे-बड़े आकर शरीर सेकते हैं। कहने का अभिप्राय यह है, कि एक धर्मात्मा पुरुष के पीछे असंख्यों लोगों का भला हो जाता है। ऐसे परोपकारी पुरुष स्वयं साक्षात् भगवान् के तुल्य हैं, नर रूप में नारायण हैं, नहीं तो इस क्षुद्र प्राणी को तो अपनी ही पड़ी रहती है, मेरा ही पेट भरे, मेरा ही घर सुन्दर बने मेरे ही यहाँ सब भोग सामग्रियाँ एकत्रित हों, मेरे ही परिवार वाले इन सब वस्तुओं का उपभोग करें। जिनका मेरा पन व्यष्टि से मिटकर समष्टि में फैल गया है, जिनका "स्व-अर्थ" सीमित न रहकर निस्सीम बन गया, ऐसे परोपकारी जीवों में और भगवान् में कोई अन्तर नहीं। भगवान् के अतिरिक्त इतनी उदारता और किसमें हो सकती है। इतनी महत्ता उन महतो-महीयान् में ही सम्भव है। भगवान् ही इस रूप से धराधाम में प्रकट होकर सामूहिक रूप से अगणित जीवों का उद्धार करके अपने निज लोक में ले जाते हैं और अनेक जीव भी उनके साथ उनके लोक को प्राप्त कर लेते हैं। उनमें उन जीवों का पुरुषार्थ प्रधान नहीं होता, भगवत् कृपा ही वहाँ प्रधान मानी गयी है। जहाँ बहुत से कृपा प्रतीक्षक जीव जुट जाते हैं वहीं ऐसी घटना घटित हो जाती है, जिस नौका में सभी मृत्यु के मुख में जाने वाले एकत्रित हो जाते हैं, वही नौका मझदार में डूब जाती है, जहाँ सभी कृपा के पात्र संगठित हो जाते हैं, वहीं स्वयं श्यामसुन्दर आकर उन्हें ले जाते हैं। इसलिये जीवों को निरन्तर

भगवत् कृपा की सत्संग की ही प्रतीक्षा करनी चाहिये। कब तरनतारन संत मिल जायँ, कब हमें अपने साथ ले जायँ।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब धुन्धकारी दिव्य रूप रख-कर विमान में बैठकर वैकुण्ठ चला गया तो सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। गोकर्णजी ने अपने श्रोताओं से कहा—"भाइयो! आप सबने भगवत् सप्ताह यज्ञ की महिमा प्रत्यक्ष देख ही ली अब मेरी इच्छा है, कि श्रावण मास में किसी व्यक्ति विशेष के निमित्त सप्ताह न करके सर्वसाधारण जीवों की कल्याण कामना से कथा की जावे। सभी का उद्धार हो, सभी को भगवान् के चरणों की शरण प्राप्त हो सभी संसार बन्धन से छूट जायँ, यही भावना हो।"

गोकर्णजी की इस बात का सभी ने एक स्वर से पालन किया। सभी ग्रामवासी एक मत हो गये। सभी ने एक मन एक प्राण होकर सप्ताह को सफल बनाने का प्रबल प्रयत्न किया। जिसके घर जो भी सप्ताहोपयोगी वस्तु थी, वह उसी को ले आया। जिसमें जितनी सामर्थ्य थी, उसने उतनी ही नहीं उससे अधिक सहायता की। सम्पूर्ण ग्राम के नर-नारी एकत्रित हो हो गये सभी को यह पूर्ण विश्वास था, कि अब के स्वयं साक्षात् भगवान् ही कथा में प्रकट होंगे।

अत्यन्त ही धूम धाम से सप्ताह यज्ञ समाप्त हुआ। अब के सप्ताह की समाप्ति पर एक अत्यन्त ही आश्चर्य जनक अत्यद्-भुत घटना घटित हुई। ज्यों ही कथा समाप्त हुई त्यों ही आकाश मंडल में सभी ने देखा, सहस्रों विमानों की पँक्तियाँ दिव्य प्रकाश करती हुई कथा मंडप की ओर चली आ रही हैं। उनके दिव्य प्रकाश से दशों दिशायें प्रकाशित हो रही थीं। उनमें बैठे हुए भगवान् के पार्षद सुमधुर कंठ से कीर्तन कर रहे थे। सहसा उन विमानों में से एक अत्यंत ही दिव्य सुन्दर, प्रभापूर्ण विमान

कथा के समीप तक आया। उसमें से पार्षदों से घिरे हुए भग-श्याम सुन्दर उतरे।"

अहा! उस समय की उनकी शोभा कैसी अनुपम थी, भगवान् मंद-मंद मुस्करा रहे थे, अपनी कृपा भरी दृष्टि से सभी पर प्रेम की वृष्टि कर रहे थे। जितने जीव वहाँ एकत्रित थे सभी हर्ष में उन्मत्त से हो गये, सभी के रोम-रोम में उत्साह छा गया, सभी प्रेम में विह्वल हो गये, सभी के नेत्रों से आनन्दाश्रु बहने लगे सभी हर्ष में विह्वल होकर ऊपर को हाथ उठा-उठाकर जय हो! जय हो! नमो नमः! नमो नमः! हरये नमः! हरये नमः! कहकर चिल्लाने लगे। विष्णु पार्षद भी जय जयकार करने लगे। देवता गण भाँति-भाँति के बाजे बजाने लगे, नन्दनवन के पारिजात पुष्पों की वृष्टि करने लगे। स्वयं श्रीहरि भी हर्षातिरेक से अपने पाँचजन्य शंख को बजाने लगे। सभी अपने वस्त्रों को

फैलाकर हाथों को नचाने लगे। भगवान् किरीट मुकुट धारे वन माला पहिने हँसते हुए गोकर्ण जी के समीप आये और उन्हें अपनी विशाल भुजाओं को फैलाकर हृदय से लगा लिये आनंद में भरकर आलिंगन कर लिया। भगवान् का आलिंगन पाते ही गोकर्णजी तद्रूप बन गये। भगवान् के समान ही दिखायी देने लगे।

देखते-देखते वहाँ पर जितने जीव उपस्थित थे, सभी का रूप बदल गया। सभी के सभी का वर्ण नूतन जल भरे मेघों के समान श्याम हो गया था, सभी दिव्य पीताम्बर ओढ़े थे, सभी के मस्तक पर मनोहर मुकुट शोभा दे रहा था, सभी के कानों के कमनीय कनक कुण्डल झलमल-झलमल करके कपोलों की कान्ति को बढ़ा रहे थे। सभी के कंठ में घुटनों तक दिव्य वन माला सुशोभित हो रही थी, उन पर भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे।

यही बात नहीं कि कथा सुनने वालों का ही ऐसा रूप हुआ हो। उस ग्राम में जितने भी श्वपच, चांडाल, कूकर, सूकर, पशु-पक्षी, कीट पतंग तथा जितने भी ऊँच-नीच जीव थे। वे सब के सब दिव्य बन गये। परोपकार निरत गोकर्णजी की कृपा से वे सब के सब उन दिव्य विमानों पर बैठाये गये। सभी ने जय जयकार किया। भगवान् ने अपने पार्षदों से कहा—"जहाँ योगी जन जाते हैं। जिस लोक को पाना बड़े-बड़े ज्ञानी ध्यानियों को भी दुर्लभ है, मेरे उस दिव्य लोक में परमधाम में इन सबको ले चलो।" भगवान् की आज्ञा पाकर वे सभी विमान उड़े और उन सबको भगवान् के परम दिव्य धाम को ले गये।

भगवान् ने गोकर्णजी को हाथ पकड़कर अपने ही विमान में बिठाया। भगवान् को अपनी कथा अत्यन्त ही प्रिय है

जो जीवों के उद्धार के निमित्त भगवत् कथाओं का प्रचार-प्रसार करता है, सबको निष्काम भाव से सुनाता है भगवान् उस पर परम प्रसन्न होते हैं। गोकर्णजी ने सबके हित के निमित्त कही थी इससे भक्तवत्सल भगवान् नन्दनन्दन, आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र उन पर अत्यन्त ही रीझ गये उन्हें अपने समीप बिठाकर अपने गोप बन्धुओं के परम प्रिय गोलोक धाम में ले गये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! यह अत्यन्त ही आश्चर्य जनक घटना घटित हुई। या तो त्रेया युग में कौशल्यानन्दवर्धन, जानकीजीवनधन भगवान् रामचन्द्रजी अपने समस्त पुरवासियों को अपने साथ साकेत लोक ले गये थे या यह गोकर्णजी की ऐसी घटना हुई। जिस गोलोक में बड़े-बड़े योगियों का जाना भी दुर्लभ है उसमें गोकर्णजी की कृपा से उस ग्राम के कीट-पतंग तक चले गये। यह कितने आश्चर्य की बात है।"

शौनक जी ने पूछा—"सूतजी! आपने तो कहा—भावना के भेद से फल में भी भेद हो जाता है, धुन्धुकारी ने लगन से ध्यान पूर्वक कथा सुनी तो उसकी प्रेत योनि से मुक्ति हो गयी दूसरों ने असावधानी से सुनी इसलिये कुछ नहीं हुआ। अब आप कहते हैं, कि उस ग्राम के कूकर, सूकर कीट-पतंग भी मुक्त हो गये, तो उन कूकर, सूकरों ने कौन-सी भावपूर्वक कथा सुनी थी, वे कैसे मुक्त हुए, कृपा करके हमारी इस शंका का समाधान और कर दें।"

यह सुनकर सूतजी हँसते हुए बोले—"भगवन्! सुहागे की क्या सामर्थ्य जो राजा के सिर पर बैठ जाय, किन्तु सुवर्ण के साथ सुहागा भी चला जाता है, तृण की क्या सामर्थ्य जो शिव जी के सिर पर बैठ जाय, किन्तु फूलों के साथ वह भी शिवजी के मस्तक पर पहुँच जाता है। दूर का दृष्टान्त छोड़ दीजिये मैं

विलोम जाति में उत्पन्न हुआ हूँ। मेरी इतनी योग्यता कहाँ कि आपके चरणों के समीप भी बैठ सकता, किन्तु भगवत् कथा के प्रभाव से आप सब के सम्मुख उच्चासन पर बैठकर आपको उपदेश दे रहा हूँ। भगवन्! यह उन श्रोताओं की सामर्थ्य नहीं थी। यह तो गोकर्णजी की सामर्थ्य थी कि उनके सत्संग के प्रभाव से सब के सब परम धाम के अधिकारी हुए। उनकी भागवत् भक्ति का ही यह परिणाम हुआ। जिन्होंने गोकर्णजी की कथा का एक भी अक्षर सुना वे ही परम धाम के अधिकारी बन गये जिनके कर्ण पुटों ने गोकर्ण की कथामृत का पान कर लिया उन्हें फिर कभी संसार में माता के स्तन पान करने को नहीं आना पड़ा। यह तो सौभाग्य की बात है, उनके पूर्वजन्मों का सुकृत है, कि जिस गति को प्राणायाम, ध्यान धारणा करने वाले योगी प्राप्त नहीं कर सकते, जिस गति को वायु जल और वृक्ष के सूखे पत्ते खाकर तपस्वी नहीं प्राप्त कर सकते उस गति को गोकर्ण सप्ताह का एक अक्षर सुनने वाले जीव सहज में ही पा गये।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! यह तो आपने बहुत ही अद्भुत उपाख्यान सुनाया। महानुभाव! अपने यह कथा कहाँ सुनी थी? यह घटना तो महाराज परीक्षित् के परमधाम पधारने के अनन्तर ही हुई होगी?"

सूतजी बोले—"महाराज! यह घटना तो राजर्षि परीक्षित् के परम धाम पधारने के दो सौ वर्ष पश्चात् हुई, किन्तु यह कोई छिपी घटना थोड़े ही है, सभी ऋषि महर्षि इसे जानते हैं, चित्रकूट पर्वत पर बैठे हुए शाण्डिल्य मुनि ब्रह्मानन्द में निमग्न होकर इस कथा को बारम्बर पढ़ते रहते हैं, उन्हीं के मुख से मैंने इसे सुना है। यह कथा अत्यन्त धन्य है, पावन है, पवित्र है, पुण्य प्रद है, पापनाशिनी और क्लेश काटिनी है इसे एक बार भी जो श्रद्धा प्रेम और विश्वासपूर्वक सुनते हैं या पढ़ते हैं, उनके पाप-पुण्य

उसी प्रकार भस्म हो जाते हैं जिस प्रकार तनिक-सी चिनगारी पड़ने पर रुई का बड़ा भारी ढेर बात की बात में भस्मसात् हो जाता है। जो इसका नित्य नियम से प्रेमपूर्वक पाठ करते हैं, उन्हें पुनर्जन्म की हाट पुनः नहीं देखनी पड़ती। श्राद्ध के समय सुनाने से पितृगण परम तृप्त हो जाते हैं। महाराज! मैं इस की महिमा का क्या वर्णन करूँ। जिन शेषजी के सहस्र मुख और दो सहस्र जिह्वायें हैं, वे भी इसका पूरा माहात्म्य नहीं कह सकते तो मेरे तो एक ही मुख और फिर उसमें एक ही जिह्वा है।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! इस प्रकार यह कथा, इस घटना के तीस वर्ष के अनन्तर सनकादि मुनियों ने नारद से कही और नारदजी के मुख से मैंने सुनी।"

शौनकजी ने पूछा—"हाँ तो सूतजी! नारदजी ने पुनः सनकादि महर्षियों से कौन-सा प्रश्न किया। इसे सुनने की हमारी बड़ी प्रबल इच्छा है। कृपा करके हमें नारद-सनकादि सम्वाद की अगली कथा और सुनावें।"

सूतजी बोले—"भगवन्! भागवत सप्ताह माहात्म्य की कथा सुनकर नारदजी ने कुमारों से पूछा—"प्रभो! हमने सप्ताह माहात्म्य के आख्यान तो सुने, अब हम भागवत सप्ताह की विधि और सुनना चाहते हैं। भागवत सप्ताह कैसे किया जाय, उसमें कौन-कौन सी सामग्रियाँ जुटाई जायँ।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! नारदजी के प्रश्न पर सनकादि मुनियों ने जो उन्हें भागवत सप्ताह की विधि बतायी उसे मैं आप सबको आगे सुनाऊँगा। आप सावधान होकर श्रवण करें।"

—०—

छप्पय

अवध निवासी जीव राम सँग धाम पधारे।
त्यों सब सँग गोकरन हरषि गोलोक सिधारे॥
यह प्रसंग अति पुन्य कथा जे सुनें सुनावैं।
बिनु प्रयास सब जीव सहज महँ शुभ गति पावैं॥
धुन्धुकारि गोकरन की, कथा भई पूरन विमल।
अब विधि शुभ सप्ताह को, सुनहु सजन सादर सकल॥

# सप्ताह श्रवण विधि

## [ २१ ]

निःश्रेयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत् ।
तदिदं ग्राहयामास सुतमात्मवतां वरम् ॥*

(श्री भा० १ स्क० ३ अ० ४१ श्लो०)

छप्पय

*शुभ मुहूर्त सुघराइ कथाथल सुघर बनावै ।*
*कदली बन्दनवार, पताका ध्वजा लगावैं ॥*
*कातिक, क्वार, अषाढ़, भाद्र, अगहन अरु सावन ।*
*कहे मोक्षप्रद मास पठावै सबहिँ निमन्त्रन ॥*
*कथा भागवत सात दिन, होगी आवैं कृपा करि ।*
*आइ कथा रस पान करि, करहिँ कृतारथ दास हरि ॥*

वह थल धन्य है, जहाँ भगवान् की कथा होती है, वह सामग्री धन्य है जो भगवान् की कथा में काम आती हो, वे जन धन्य हैं, जिन्हें कथा कहलाने का उत्साह हो, वे सेवक धन्य हैं, जो भगवत् कथा में हार्दिक सहयोग देते हों, वे कीर्तनकार धन्य हैं जो भगवत् कथा स्थल में आकर सुमधुर कण्ठ से भगवन्नाम संकीर्तन करते हों वे मास, पक्ष, तिथि, वार धन्य हैं, जिनमें

---

* सूतजी कहते हैं—"यह श्रीमद्भागवत पुराण अत्यन्त ही धन्य है, महान् मङ्गलमय है, इसे संसार के कल्याण के निमित्त व्यासजी ने आत्मज्ञानियों में परम श्रेष्ठ अपने पुत्र श्रीशुकदेवजी को पढ़ाया।"

भगवान् की कथा होती हो। वे वक्ता धन्य हैं, जो अपनी वाणी को कृष्ण कथा कह कर कृत कृत्य करते हों और वे सुकृति श्रोता धन्य-धन्य हैं जो श्याम के सुन्दर सुखद कथा को स्वाद के साथ सुनते हों। लोक कथायें तो सभी सुनते हैं। इन लोक कथाओं को सुनते-सुनते ही तो हम लोक बन्धन में बँध गये हैं। इस बन्धन के तोड़ने का उपाय भी यही है कि लोक कथाओं से मुँह मोड़-कर मोहन की मनमोहिनी कथाओं से सम्बन्ध जोड़ लें। फिर लोक से सम्बन्ध टूट जायगा। माधव से नाता जुड़ जायगा। यह सब होगा सविधि भागवती कथाओं के सुनने से, जिनके पास संसारी सामग्री नहीं है। उनके लिये प्रेम पूर्वक सुनना ही सबसे बड़ी विधि है। जिनके पास संसारी सामग्री है, वे कृप-णता न करें। अरे इन संसारी तुच्छ वस्तुओं को जोड़-जोड़कर क्या करोगे। एक दिन मर जाओगे, हाथ पसारे रिक्त हस्त चले जाओगे, ये सब वस्तुयें यहीं रह जायँगी, जल जायँगी, गल जायँगी, पाप रूप बन जायँगी। इनका सदुपयोग क्यों नहीं कर लेते। धन का सदुपयोग है धर्म में लगे। भगवान् के कथा कीर्तन में व्यय हो। फलों का उपयोग है भगवान् के अर्पण हों सब भक्त मिलकर हर्ष के सहित प्रभु का प्रसाद पावें। इन रसीली लचीली कुरकुरी, मुरमुरी मिठाइयों का सबसे सुन्दर उपयोग यही है भगवान् का ठाठ-बाठ के साथ विशाल भोग लगे। पटरस छप्पन व्यंजन बनें। भगवान् श्यामसुन्दर आकर अपने अधर का मधुर रस उनमें चुवा दें, जिससे वे और भी मधुराति मधुर बन जायँ। फिर उन्हें भक्त वृन्द भगवान् का जय जयकार करते हुए पावें। भर पेट यथेच्छ पावें। सोचिये इससे बढ़कर और इन पदार्थों की सार्थकता क्या है। फिर ये पदार्थ अमृत हो जायँगे। खाने खवाने वालों को वैकुण्ठ ले जायँगे। ऐसा न करके सबसे छिपाकर चुराकर पूत जमाई को खिलाओगे भगवान्

के अर्पण न करोगे, ये ही मिठाई पाप रूप बन जायँगी विष्ठा तो बननी ही है। अन्त में नरक ले जायँगी। जो भगवान् के निमित्त न बनकर अपने लिये पदार्थ बनते हैं, वे पाप रूप हैं। उनका फल दुःख, रोग, शोक, और नरक ही है। इसलिये बुद्धिमानी इसी में है कि नाशवान वस्तुओं को अविनाशी बना ले। कृष्ण कथा कीर्तन के संसर्ग से उन्हें तारक बना ले। यही सबसे बड़ी चातुरी है यही पंडिताई है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! नारदजी के पूछने पर सनकादि महर्षि भागवत सप्ताह विधि का वर्णन करने लगे। कुमारों ने कहा—"नारद! यह सप्ताह यज्ञ है। यह सार्वजनिक अनुष्ठान है। यह जप प्राणायाम की भाँति नहीं है कि अकेले जाकर एकान्त में बैठ गये, उँगलियों पर मन्त्र जप लिया या नाक दबा कर पूरक, कुम्भक, रेचक कर लिया। इसमें तो सबके सहयोग की आवश्यकता होती है। इस यज्ञ में सहयोग की आवश्यकता होती है। इस यज्ञ के लिये दो साधन मुख्य चाहिये। एक तो जन का सहयोग दूसरे धन का सहयोग। जैसी भी अपनी सामर्थ्य हो भगवान् ने विपुल धन दिया हो, तो बड़े विस्तार से हृदय खोलकर उदारता के साथ व्यय करें। अपने समस्त बन्धु-बान्धव कुटुम्बी सम्बन्धी सभी को बुला लें। सभी को कुछ न कुछ काम सौंप दें। अपनी बहिनों को, लड़कियों को, बूआओं को, अपनी ससुराल, ननसाल तथा दूसरे सम्बन्धियों को बुला लें। स्त्रियाँ भीतर का काम धंधा देखें पुरुष बाहर के काम देखें बच्चे चारों ओर सुन्दर-सुन्दर नये-नये वस्त्र पहिन कर क्रीड़ा करें मंडप को सजावें। फूल फल लावें बन्दनवार बनावें।"

पहिले ज्योतिषी से मुहूर्त पूछकर दिन निश्चय करे। वैसे तो शुभ काम जब भी हो जाय, तब ही अच्छा है जब मन में उत्साह हो जाय तब ही मुहूर्त है किन्तु जब विस्तार से करना हो तो

मुहूर्त पूछ ले। वैसे तो सभी महीना श्रेष्ठ हैं, किन्तु अषाढ़ से लेकर मार्गशीर्ष तक ये महीने बहुत सुन्दर कहे गये हैं। कथा के लिये दोनों पक्ष सुन्दर हैं, किन्तु शुक्ल पक्ष अति सुन्दर है तिथि भी सभी श्रेष्ठ हैं किन्तु प्रायः शुक्ल पक्ष में अष्टमी नवमी से आरम्भ करके पूर्णिमा तक सप्ताह श्रेष्ठ माना गया है। तिथियों भद्रा आदि को त्यागकर सुन्दर तिथि, वार, नक्षत्र देखकर कथा का दिन १०-२० दिन पहिले ही निश्चय कर ले फिर जिन लोगों को कथा में उत्साह हो, शुभकार्मों में जो भाग लेते हों उनसे जाकर सम्मति करें—"भाई हमारा विचार भागवत सप्ताह करने का है। आपकी क्या सम्मति है ?" वे कहेंगे ही—"आपने बड़ी सुन्दर बात सोची, इससे बढ़कर और क्या कार्य हो सकता है। आप अवश्य करें, कब से कर रहे हैं ?"

तब उनसे कहे—"अमुक तिथि से करने का विचार है, किन्तु यह काम आपके सहयोग के बिना नहीं हो सकता आपको ही सब करना धरना होगा।"

वे कहेंगे—"यह भी कोई कहने की बात है। वह तो सभी का काम है भगवान् के काम से कौन मुँह मोड़ सकता है मुझे आप जो कहेंगे, यथाशक्ति उसे करने की चेष्टा करूँगा।"

इस प्रकार अपने सहायक सहयोगी कथा प्रेमियों से सम्मति करके उनकी स्वीकृति लेकर तब आगे को काम बढ़ाना चाहिये। सबसे पहिले तो अपने सगे सम्बन्धी इष्ट मित्रों को पत्र भेजे। सुयोग्य लेखकों से पत्र लिखवा ले। उसमें इस प्रकार लिखे।

"सिद्धि श्री सर्वोपमा सकल गुण निधान............... ...में विराज मान श्री मान्......जी को योग्य लिखी...से ...अमुक अमुक की राम राम, जय श्री कृष्ण, जय गोपाल (जो भी अपनी प्रथा हो) वंदना जी। आगे हाल यह है कि हम

सब यहाँ प्रसन्न हैं आप सबकी प्रसन्नता श्री भगवान् से सदा नेक चाहते रहते हैं। आगे भगवान् की कृपा से तथा आप सब लोगों के आशीर्वाद से हमारा मनोरथ श्रीमद्भागवत सप्ताह करने का हुआ है, उसकी पूर्ति भगवत् कृपा और सबके आशीर्वाद और सहयोग पर निर्भर है। अमुक तिथि से लेकर अमुक तक सप्ताह की तिथि निश्चित हुई है। सात दिनों तक यहाँ बड़ा ही अद्भुत अलौकिक आनन्द रहेगा। बड़े-बड़े सत्पुरुषों का दुर्लभ समागम होगा। अपूर्व रसमयी श्रीमद्भागवत की कथा होगी। आप तो पहिले से ही कथा के प्रेमी हैं, आपकी रसिकता के सम्बन्ध में तो कुछ कहना ही नहीं है। अतः इस तिथि के एक दिन पहिले ही आप अवश्य-अवश्य पधारें सपरिवार पधारें और भी जो कथा के प्रेमी हों, उनको भी सूचना दे दें। ऐसा न हो, कि इस पुण्य अवसर पर आपके दर्शन न हो सकें। कदाचित् सात दिन का अवकाश न भी मिले तो जैसे भी बने तैसे सभी काम छोड़कर एक दिन के लिये तो अवश्य ही आवें, क्योंकि यहाँ का तो एक क्षण भी बड़ा दुर्लभ है। अपने आने की स्वीकृति भेजें। हमारे योग्य कोई सेवा हो तो उसे लिखें भूलें नहीं। सब लोगों को यथा योग्य कहें। बाल गोपालों को प्यार।"

ऐसा पत्र अपने सगे सम्बन्धियों को लिखे। विरक्त वैष्णव त्यागी महात्माओं से नम्रता पूर्वक प्रार्थना करे। लोगों के द्वारा सर्वत्र समाचार भेज दे। जो सेवा परायण शूद्र हैं या जो घर में ही रहने वाली स्त्रियाँ हैं उन्हें सत्संग का अवकाश कभी-कभी ही मिलता है, इसलिये सब लोग जान जायँ कि अमुक स्थान पर अमुक दिन से कथा होगी ऐसा प्रबन्ध पहिले से ही कर दे। जो अच्छे कीर्तनकार हों उन्हें भी विनयपूर्वक बुलावें। कथा प्रेमी आस-पास विरक्त वैष्णव हों उनके भी पास समाचार पठा दे। कथा कहने वाले, कथा सुनने वाले तथा कीर्तन करने

वाले जो भी आवें उनके ठहरने आदि का समुचित प्रबन्ध कर दे। ठहरने का स्थान ऐसा हो, जहाँ जल का डोल डाल का सुपास हो।

जहाँ तक हो, कथा को जाकर पुण्य तीर्थों में करे। इतनी सामर्थ्य न हो तो अपने गाँव में कोई देवालय हो, नदी तट हो वहाँ करे। यह भी न हो तो अपने घर में ही करे। घर में जो सबसे चौड़ा विस्तृत स्थान हो, जहाँ श्रोता सुख से बैठ सकें वहीं कथा का मण्डप बनावे। पहिले वहाँ के सब सामान को उठाकर दूसरे स्थान पर रख दे। धूलि, जाला, मकड़ा, सबको बाँस में कपड़ा बाँधकर झाड़ दे बुहारी से झाड़ू दे दे। फिर गोबर मिट्टी से लीप दें। यदि सम्पूर्ण भूमि पर वज्रलेप हो रहा हो तो उसे धो दे। फिर उस पर गेरू के चूर्ण से चौका बेल बूटे चित्र आदि बनावे। भूमि पर बिछाने के लिये बिछौने का तथा साधु सन्तों के लिये आसनों का प्रबन्ध कर ले। अपने यहाँ पर्याप्त न हों तो इधर-उधर से माँग कर चार पाँच दिन पहिले ही एकत्रित कर ले। फिर नियत स्थान में सुन्दर मण्डप बनावे उसे जितना सजा सकता हो उत्साहपूर्वक सजावे। वक्ता के लिये मृदुल गुदगुदा असान बिछावे, पीठ टेकने के लिये बड़ा उपवर्ण (तकिया) रख दे। मंडप के चारों कोनों पर केले के खम्भे लगा दे। केलों को किसी ऐसे पात्र में रखे कि सप्ताह भर हरे भरे बने रहें। ध्वजा, पताका, बन्दनवार, झण्डी आदि लगाकर ऐसा बना दें कि देखने वालों का मन प्रफुल्लित हो उठे। वेदी के ऊर्ध्व भाग में सात वस्त्र लगाकर सात लोकों की कल्पना करे। उनमें आसन बिछाकर सात विरक्त वैष्णवों को बिठा दें। साक्षात् ऐसा न भी कर सके तो ऊपर सात परत का वस्त्र लगाकर मन से ही कल्पना कर ले। फिर श्रोता-वक्ता शुभ दिशा में मुख करके बैठें।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! श्रोता का मुख किधर होना चाहिये और वक्ता का किधर ?"

सूतजी ने कहा—"महाराज, यदि वक्ता का मुख उत्तर की ओर हो तो श्रोता का मुख पूर्व की ओर और यदि वक्ता का मुख पूर्व की ओर हो तो श्रोता का उत्तर की ओर अथवा श्रोता वक्ता के बीच में कैसी भी पूर्व दिशा अवश्य आ जानी चाहिये।"

शौनकजी ने पूछा—"इसका क्या अभिप्राय कैसे श्रोता वक्ता के प्रसंग में पूर्व दिशा आवे ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! इसका सीधा अर्थ यह है कि श्रोता-वक्ता किसी का भी मुख दक्षिण की ओर न होना चाहिये। जैसे श्रोता पूर्वाभिमुख है तो वक्ता का मुख उत्तर की ओर, वक्ता उत्तर मुख है, तो श्रोता पूर्व की ओर, वक्ता का मुख पश्चिम की ओर है तो श्रोता का पूर्व की ओर, वक्ता पूर्वाभिमुख है, तो श्रोता पश्चिम मुख भी कर सकता है। कैसे भी पूर्व दिशा आनी चाहिये। यह नियम मुख्य श्रोता के ही सम्बन्ध में है। वक्ता का चुनाव बड़ी बुद्धिमानी से सोच समझ कर करना चाहिये।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! कैसा वक्ता होना चाहिये, उसके कुछ लक्षण तो बताइये।"

सूतजी बोले—"महाराज ! सबसे पहिले तो वक्ता में यह गुण होना आवश्यक है, कि वह संसारी विषयों में विशेष बँधा न हो, संसारी भोगों से विरक्त हो। यह भागवत विष्णु परक शास्त्र है, अतः वक्ता ब्राह्मण को विष्णु भक्त होना चाहिये। विद्वान् भी हो, वेद शास्त्रों की व्याख्या करने में हिचके नहीं, अपने विषय को स्पष्ट कर दे। यह भी नहीं कि अक्षरों को बाँचता गया, श्रोता चाहे समझे या न समझे। जिस विषय का वर्णन करे उसे दृष्टान्त देकर समझाने में समर्थ हो। जो घबड़ावे नहीं, विकार की सामग्रियों के रहते हुए भी जिसका मन विचलित न हो, किसी

की ओर कुदृष्टि न डालता हो। जो धन को ही सब कुछ न समझता हो, सब समय चढ़ावे की ही चिन्ता में मग्न न रहता हो। निःस्पृह चित्त वाला हो ऐसे ही विद्वान् को वक्ता बनाना चाहिये।"

शौनकजी ने कहा—"जिसमें ये गुण हों, उसे तो वक्ता बनाना ही चाहिये, अब यह बताइये कैसे को वक्ता न बनावे ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! जो मतमतान्तरों के भ्रम में पड़ा हो, लोभ वश नये-नये कलियुगी पन्थों के चक्कर में पड़ा हो, जो स्त्रियों में अत्यन्त लम्पट हो, जिसकी बोल-चाल में आचार-व्यवहार में चाल ढ़ाल में कपट भरा हो, कपट का व्यवहार करता हो, वह चाहे कैसा भी विद्वान् हो, दिग्गज पंडित हो, षट्शास्त्री भी क्यों न हो उसे कभी भी श्रीमद्भागवत का वक्ता न बनाना चाहिये।"

वक्ता सुन्दर कण्ठ वाला मधुर भाषी हो, उसका एक सहायक वक्ता भी होना चाहिये, वह भी उसी की भाँति विद्वान् संशयों को छेदन करने वाला तथा लोगों की शंकाओं का समाधान करने वाला हो। ऐसे वक्ताओं से कथा की शोभा बढ़ती है, बड़ा आनन्द आता है, कथा में रस बरसने लगता है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! यह सब तो सप्ताह के आरम्भ होने के पूर्व का कृत्य हुआ कथा की तैयारियाँ हो गयीं, श्रोता एकत्रित हो गये, कथा के वक्ता आ गये, अब क्या करे ?"

सूतजी ने कहा—"भगवन् ! कथा आरम्भ होने के एक दिन पूर्व भगवान् का अधिवास करे भगवान् का आवाहन पूजनादि करे, उस कर्तव्यों को मैं आगे कहूँगा और आप इस विधि विधान के प्रसंग को श्रद्धापूर्वक श्रवण करें।"

—०—

### छप्पय

*भेजे सब थल पत्र निमंत्रित जे जन पावें।*
*असन वसन परबंध करें दुख तनिक न पावें॥*
*वक्ता वैष्णव, विज्ञ, विवेकी, बिप्र, वेद वित।*
*कुशल धीर गंभीर अरथ सब करै प्रकाशित॥*
*संग सहायक सरल शुचि, पंडित वक्ता अपर करि।*
*श्रोता व्रत धारन करै, निरखै सब महँ स्वयं हरि॥*

# कथारम्भ के पूर्व दिन की विधि

## [ २२ ]

**कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह ।**
**कलौ नष्ट दृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः ॥***

(श्री भा० १ स्क० ३ अ० ४३-४४ श्लो०)

### छप्पय

*कथा एक दिन प्रथम बाल वक्ता बनवावे।*
*गौरी, कलश, गनेश, मातृ, मह, हरि पुजवावे॥*
*पुस्तक पूजन विनय भागवत भगवत चरनन।*
*है कें अतिई दीन करै हिय महँ हरि सुमरन॥*
*तजि चिन्ता धन धाम की, सुनहिँ कथा श्रोता सकल।*
*मिलहि भक्ति भगवान् की, पावैं तेई परम फल॥*

अन्तः करण से की हुई विनय से भगवान् श्याम सुन्दर का हृदय पिघल जाता है, द्रवित हो जाता है, तरल बन जाता है, उसमें भक्त की आकृति खिँच जाती है, वह हरि के हृदय में बस जाती है, फिर भगवान् स्वयं उस भक्त का भजन करने लगते

---

* सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! धर्म और ज्ञानादि के सहित जब भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी अपने स्वधाम गोलोक को चले गये, तब कलि-काल में जिनकी अज्ञान के कारण दृष्टि नष्ट हो गयी है ऐसे कलियुगी जीवों के लिये यह भागवत रूपी सूर्य उदय हुआ है। यह साक्षात् भगवान् का ही स्वरूप है।"

हैं, भजन किया करते हैं सदा के लिये वह उनके हृदय में समा जाता है उनके ही श्री विग्रह का एक अंग बन जाता है। सम्पूर्ण संसार श्रीहरि के वश में हैं, किन्तु वे श्रीहरि स्वयं भक्त के वश में हैं। इसलिये कथा में कीर्तन में भक्ति की प्रीति की आवश्यकता है। लगन के साथ हृदय की पुकार को प्रभु अविलम्ब सुनते हैं और फिर उनसे रहा नहीं जाता, अवश होकर वे भक्त को अपना लेते हैं, कथा स्थल पर प्रकट होकर भक्त को हृदय से सटा लेते हैं, उसे अपना बना लेते हैं। यही भगवान् की भक्तवत्सलता है, इसी का नाम शरणागत प्रतिपालकता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! नारदजी से सनकादि मुनिगण भागवत सप्ताह श्रवण की विधि बताते हुए कह रहे हैं—"नारद ! सप्ताह जिस दिन से करना हो उसके एक दिन पूर्व भगवान् का अधिवास उत्सव करे। श्रोता-वक्ता दोनों को उस दिन क्षौर करा लेना चाहिये। भोर में तड़के अरुणोदय के समय उठकर शौचादि से निवृत्त होकर संक्षेप में प्रातः कृत्य कर लेने चाहिये। यदि नित्य अधिक जप करता हो तो उस दिन केवल नाम मात्र के लिये नियम पूर्ति के निमित्त थोड़ा ही जप करे, क्योंकि नैमित्तिक कर्म के सम्मुख नित्यकर्म गौण हो जाता है कथा सुनना-सुनाना यह भी तो भगवान् की उपासना ही है।

नित्य कर्मों से निवृत्त होकर कथा मण्डप में आ जाय, वहाँ आकर ग्रहों की स्थापना करे। सर्वतोभद्र चक्र बनाकर उसके बीच में भगवान् को पधरा दें। आरम्भ में विघ्न विनाशक गणेश-जी का पूजन करे, पञ्चगव्य से शरीर की शुद्धि करे, अंगन्यास करन्यास करके शरीर को देवतामय बनावे। भूत शुद्धि करे, अपने पितरों का तर्पण करे। नवग्रह षोडशमातृका आदि सबका पूजन करे, फिर मण्डप में स्थापित भगवान् का विधि विधान-पूर्वक षोडशोपचार पूजन करवावे। आचमन प्राणायाम करके

पूजन का संकल्प करे, फिर विधिपूर्वक क्रम से आवाहन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानीय, वस्त्र अलंकार यज्ञोपवीत, धूप, दीप, नैवेद्य, मुखशुद्धि, दक्षिणा, आरती, प्रदक्षिणा और नमस्कार करे। फिर हाथ जोड़कर दीनता के साथ गद्गद वाणी से प्रेमपूर्वक भगवान् की इस प्रकार स्तुति करे—

*निहारो अब प्रभु मेरी ओर।*
भव जल निधि अति अगम अलखपति, दीखत ओर न छोर ॥१॥
करम मोह द्वै ग्राह ग्रसें जल, नाथ ! उबारो दौरि।
भटकत डूबत उतरत कब तें, करो कृपा की कोर ॥२॥ नि०
चकित चकित चितवत चहुँदिशि हौं, निविड़ तिमिर घनघोर।
उठत तरंग भयानक भवजल, बहत बहत भयो भोर ॥३॥ नि०
जग जन सब स्वारथ के साथी, अपर आस नहिं मोर।
पतित उधारक पालक प्रभुवर ! लगी चरन महँ डोर ॥४॥ नि०

"हे नाथ ! मैं इस भवसागर में बह रहा हूँ, डूब रहा हूँ, छटपटा रहा हूँ, बिल-बिला रहा हूँ, घबरा रहा हूँ, मेरी रक्षा करो। तैरते-तैरते थक गया हूँ, कर्म और मोह रूपी दो ग्राहों ने मुझे ग्रस लिया है, पकड़ लिया है, थाम लिया है, अब वे मुझे निगलना चाहते हैं, लीलना ही चाहते हैं, इनसे उबारो, इनसे बचाओ। आओ, आओ, नाथ अभी आओ, मत विलम्ब लगाओ, प्राण बचाओ, अधिक नाच न नचाओ। मैं शरण तिहारी, बलि-बलि हारी, करो हमारी रक्षा स्वामी। आओ, आ जाओ, दास को अपनाओ। पतित के बन्धन छुड़ाओ। रक्षा करो, उद्धार करो।"

इस प्रकार भगवान् की स्तुति करे।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! भगवान् की षोडशोपचार पूजा करने के अनन्तर फिर श्रीमद्भागवत की पुस्तक की अति

उत्साह, परम प्रीति और शास्त्रीय विधि विधान से पूजा करे। माला धूप, दीप, नैवेद्यादि सामग्री से पूजा करके फिर हाथ में एक श्रीफल ले, उसमें काला वा लाल वस्त्र लपेट ले, कुछ दक्षिणा भी रख ले। उसमें से पुस्तक भाव विलीन कर दे। यह सोचे कि ये साक्षात् श्रीकृष्ण ही हैं, मेरे उद्धार के ही निमित्त यहाँ पधारे हैं। उनकी अति मुदित मन से प्रेम भरित हृदय से यों स्तुति करे।"

भागवत् ! भगवत् रूप तिहारो।
जग महँ भटकत दरसन दीन्हें, अब मिलि गयो सहारो ॥१॥ भा०
भयो सनाथ शरन तव आयो और नहीं रखवारो।
पद पदुमनि महँ पर्‌यो पतित प्रभु पकरो बाँह उबारो ॥२॥ भा०
मातु, पिता, गुरु सरबसु हौ हरि, और न हितू हमारो।
असरन सरन विरुद सुनि पकर्‌यो, दीन उधारन द्वारो ॥३॥ भा०
अब तक अगनित अधम उधारे, अब जा पतितहिं तारो।
सफल होहि व्रत, नियम, कथा प्रभु, बाधा विघननि टारो ॥४॥ भा०

"हे भागवत के रूप में भगवान् ! हे ग्रन्थ रूप में गोविन्द ! हे ज्ञान स्वरूप ! हे कृष्ण स्वरूप ! चिरकाल से मैं भवसागर मे भटक रहा हूँ, उससे पार जाने को छटपटा रहा हूँ, अब सौभाग्य से आपके दर्शन हुए हैं। तुम्हें सर्व समर्थ स्वामी समझकर सदा के लिये तुम्हारी शरण ली है, हे दीन दयाल ! मैं तुम्हारा दास हूँ हे केशव ! मैं तुम्हारा किंकर हूँ मेरी रक्षा करो। मेरे मनोरथ सफल करो, मेरे व्रत को पूर्ण करो, मेरे नियम को निभाओ। मुझे अपनाओ, अपना अकिंचन अनुचर बनाओ।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! इस प्रकार पुस्तक के पूजन के अनन्तर भागवत वक्ता का सविधि पूजन करे। पाद्य, अर्घ्य आचमनीयादि देकर चन्दन लगावे, माला पहिनावे, यज्ञोपवीत

दे, अपनी शक्ति के अनुसार सुन्दर वस्त्रों को उढ़ावें। इस प्रकार वस्त्राभूषणों से विभूषित करके दीन होकर आरती प्रदक्षिणा आदि करे, फिर अत्यन्त नम्रता के साथ, गद्‌गद वाणी से उनकी स्तुति करे। हाथ में पुष्प लेकर इस प्रकार कहे।

सवैया

हे शुकदेव सरूप! अनूप कथा कमनीय सुस्वादु सुनाओ।
कबतैं हियमहँ तम व्यापि रह्यो तिहि दीप सुज्ञान जराइ भगाओ।
हे द्विज देव! दया करिकें निज सेवक जानि हमें अपनाओ।
भव सागर डूबि रह्यो प्रभुजी पकरे पद पंकज पार लगाओ।

"हे शुकदेव स्वरूप! मैं तुम्हारी शरण में हूँ, इस भयानक भवसागर से पार जाने के निमित्त तुम्हारे चरणों की शरण ली है, हे कृपालो! कृपा करो, मुझे श्रीकृष्ण की कमनीय कथा सुनाकर कृतार्थ करो। हे केशव! अपना अकिंचन किंकर मान कर मेरे मनोरथ को सफल करो। हे सर्वशास्त्र विशारद! इस दिव्य कथा रूप सूर्य को प्रकाशित करके मेरे हृदय के अज्ञान रूप अन्धकार को भगाओ।"

इस प्रकार भगवान् की, भागवत की और भागवत वक्ता की पूजा करे। पूजा हो जाने पर भगवान् और भागवत के सम्मुख वक्ता के सामने सात दिन का नियम धारण करें, कि "मैं सात दिन उपवास रहकर, दूध पीकर, फलाहार करके या एक समय भोजन करके कथा श्रवण करूँगा।" अपनी सामर्थ्य देखकर ही नियम धारण करे और फिर उसका यथाशक्ति सात दिनों तक पालन करे वक्ता का जो सहायक है उसकी पूजा करे। इस प्रकार यह आरम्भिक कृत्य समाप्त हुआ।

अब एक बात और रह गयी। वक्ता सहायक वक्ता के अतिरिक्त पाँच ब्राह्मणों को जप के लिये और वरण करे। क्योंकि

"भागवत" सप्ताह एक प्रकार का यज्ञ है और यज्ञों में विघ्नों की बड़ी संभावना होती है, अतः यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो जाय, किसी प्रकार की त्रुटि न रहे, इसके निमित्त पाँच ब्राह्मणों को भगवान् के द्वादशाक्षर मंत्र के जप के निमित्त बिठा देना चाहिये। उन्हें वरणी देकर जप के लिये वरण करे। फिर जितने वहाँ, विष्णु भक्त ब्राह्मण, वैष्णव तथा कीर्तनकार हों, उनको भी नमस्कार करे, यथाविधि उनकी भी पूजा करे। फिर सबकी अनुमति लेकर सबको दण्डवत् प्रणाम करके वक्ता के द्वारा बताये हुए अपने आसन पर स्वस्थ चित्त होकर बैठ जाय।

उस दिन वक्ता को चाहिये, कि श्रीमद्भागवत का माहात्म्य सुनावे। श्रोता को एकाग्रचित्त होकर कथा को श्रवण करना चाहिये। कथा सुनते समय लोकवार्ताओं का विचार न करे। संसार में जो उत्तेजक व्यावहारिक घटनायें घट जाती हैं उन्हें संकल्प पूर्वक न सुने। ऐसी बातों के श्रवण करने से यथाशक्ति बचता रहे। अपनी धन सम्पत्ति के सम्बन्ध में भी विशेष चिन्ता न करे सात दिन तक सब कार्य भार साँवलिया को सौंप दे। वे ही सब देख-रेख रखें, वे ही इच्छानुसार बनावें बिगाड़ें। घर की चिन्ता न करे क्या हो रहा है, कैसा है। अपने पुत्र-पुत्रियों का परिवार स्वजनों का समस्त भार श्यामसुन्दर को दे दे। वे जिसे जैसे चाहें रखें। सब ओर से मन को हटाकर कथा में ही अपने चित्त को लगाये रखे। ध्यान को सदा कथा में ही रखे। दृष्टि को सदा वक्ता की ओर रखे। उसके मुख से सुने हुए शब्दों को सावधानी के साथ धारण करे।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! यह मैंने सनकादि मुनियों के द्वारा नारदजी को कही हुई सप्ताह से प्रथम दिन के कृत्य की कथा सुना दी। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! आपने कहा था, कि श्रोता

को सात दिनों तक नियमों का पालन करना चाहिये, वक्ता को भी सात दिनों तक नियम संयम पूर्वक कथा सुनानी चाहिये; सो हम श्रोता वक्ता के उन नियमों को और सुनना चाहते हैं।"

सूतजी ने कहा—"महाराज! सनकादि मुनियों ने भी तो आगे यही बात नारदजी को सुनायी थी उसे ही मैं आप को सुनाता हूँ आप इस प्रसंग को प्रसन्नतापूर्वक एकाग्रचित्त से श्रवण करें।"

छप्पय

*भक्त, भागवत, व्यास, विप्र, सुर, पितर सबनि कूँ।*
*पूजन करि डंडौत करै आगत अतिथिनि कूँ॥*
*द्वादश अक्षर मंत्र हेतु द्विज पाँच बिठावै।*
*विधिवत करिकें वरन नियम तैं जप करवावै॥*
*सबतैं अनुमति माँगि पुनि, सुनै महातम प्रेम तैं।*
*सात दिवस सप्ताह कूँ, सुनै यथा विधि नेमतैं॥*

# श्रोता वक्ता के नियम, कथारम्भ

## [ २३ ]

नैतन्मनस्तव कथासु विकुण्ठनाथ
सम्प्रीयते दुरितदुष्टमसाधु तीव्रम् ॥
कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तम्
तस्मिन्कथं तव गतिं विमृशामि दीनः ॥*
(श्री भा० ७ स्क० ६ अ० ३६ श्लो०)

छप्पय

*विष्णुमंत्र लै सुनै तैल मधु दारु न खावै।*
*ब्रह्मचर्यव्रत शयन भूमि षडरिपुनि भगावै॥*
*वेद विप्र, गुरु, गाय, नारि, नृप निन्दा त्यागै।*
*धारि सत्य संतोष चित्त प्रभु चरननि लागै॥*
*रोगी पापी सुत रहित, धन कामी नामी अधम।*
*भुक्ति-मुक्ति सप्ताह सुनि, पावैं प्रानी पद परम॥*

रोग निवृत्ति के लिये ओषधि सेवन अत्यावश्यक है, किन्तु केवल ओषधि से ही रोग नहीं चला जायगा, उसके लिये पथ्य

---

* भगवान् की स्तुति करते हुए प्रह्लादजी कह रहे हैं—"हे वैकुण्ठ नाथ! मेरे इस मनकी प्रीति आपकी कथाओं मे नही है। यह दुष्ट विविध संसारी दोषों से दूषित, कामातुर तथा हर्ष, शोक भय और तीन प्रकार की एषणाओं से व्याकुल बना हुआ है, इस ऐसे कलुषित मन को लिये हुए मैं अति दीन-हीन आपका भजन चिंतन श्रवण कर ही कैसे सकता हूँ?"

भी अत्यावश्यक है। जो कुपथ्य करता है, आहार विहार का विवेक नहीं रखता, उसे ओषधि भी उतना लाभ नहीं करती। इसलिये वैद्यक शास्त्रों में कहा है—"जो पथ्य से रहता है, उसे ओषधि की क्या आवश्यकता है ? और जो पथ्य से नहीं रहता, उसका ओषधि सेवन भी व्यर्थ है। अर्थात् ओषधि के साथ पथ्य अत्यावश्यक है।"

हमारे यहाँ जो व्रत, उपवास, दीक्षा तथा अनुष्ठानादि को इतना महत्त्व इसीलिये दिया है, कि इनके साथ संयम नियमों का पालन करना ही होगा। ये काम क्रोधादि मन के रोग हैं, इनके लिये व्रत, यज्ञ, अनुष्ठान ये ओषधियाँ हैं, सत्य, संतोष, शौच, सदाचार, संयम तथा उदारता आदि पथ्य हैं। अनुपान हैं। उन दिनों इनका पालन दीक्षा लेने वाले को अत्यन्त ही आवश्यक है।"

वैसे इन नियमों का पालन तो सदा ही करते रहना चाहिये, किन्तु जब तक अंकुश नहीं होता पालन करना कठिन पड़ जाता है, इसलिये व्रत के दिन, पर्व के दिन, अनुष्ठान के दिनों में इनका पालन यथाशक्ति अनिवार्य माना गया है। प्राणी जान में, अनजान में, स्वाभावानुसार तथा प्रकृति दोष से सत्य शौचादि का सदा सर्वदा पालन नहीं कर सकता इसीलिये ये व्रतादि हैं, एकादशी के दिन, पूर्णिमा के दिन मौन रहो, सत्य नारायण कथा सुनो। सत्य नारायण कथा का माहात्म्य सुन लो, पँजीरी पंचामृत बाँट दो, इतना ही व्रत नहीं, उस दिन सत्य को नारायण मानकर असत्य भाषण नहीं करना चाहिये, नारायण का नाम कीर्तन करते हुए रात्रि जागरण करना चाहिये। आप चाहें कि हमारी खाँसी प्रतिश्याय दूर हो जाय उसके लिये वैद्य की ओषधि तो खाते हैं, किन्तु बड़े-बड़े बालों को भिगोकर नित्य स्नान करते हैं, मिठाई गरिष्ठ पदार्थ खाते हैं, वसंत में

हिम जल, मीठा मिला जल पीते हैं, दही, ठंडे फलों का रस आदि कफ वर्धक पदार्थ खाते हैं तो आपकी ओषधि का क्या प्रभाव होगा। इसके लिये तो आपको कफ वर्धक वस्तुओं का त्याग और सोंठ, अदरख, हरड़, काली मिरच, उष्ण जल तथा और भी ऐसी ही कफ नाशक वस्तुओं का सेवन करना चाहिये, जिससे ये ओषधि के सहायक बनकर जड़ मूल से रोग को नष्ट कर दें। इसी प्रकार भागवत सप्ताह श्रवण करने वालों को यथाशक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसमें बताये हुए नियमों का पालन करना अत्यावश्यक है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! कथा कहने वाले वक्ता को यह सोचकर कथा कहनी चाहिये, कि हम भगवान् की सेवा कर रहे हैं। भागवत साक्षात् श्रीकृष्ण का स्वरूप है। प्रातःकाल ही तड़के अरुणोदय में उठे। नित्य कृत्य करके संक्षेप से ही सन्ध्यावन्दन कर ले। सूर्योदय तक अपने आसन पर कथा कहने आ जाय। प्रधान श्रोता के आ जाने पर सबकी अनुमति लेकर पुस्तक को तथा सभी विष्णु भक्तों को प्रणाम करके व्यासासन पर विराजमान हो जाय। सूर्योदय के समय कथा को आरंभ कर दे।

कथा कहने के दो प्रकार हैं, पहिला तो यह कि एक अध्याय का पाठ करले उसका अर्थ कर दे। पाठ और अर्थ के लिये दो वक्ता हों तो और भी उत्तम है एक पाठ कर दे दूसरा उसका अर्थ कह दे। अथवा प्रातःकाल में मूल पाठ कर ले, सायंकाल में जितने का पाठ करे उसका अर्थ सुना दे। सात दिन में पूरी भागवत कथा कह लेना कोई साधारण काम नहीं है अतः कम से कम साढ़े तीन प्रहर चार प्रहर तक कथा करे। मध्याह्न दो घड़ी के लिये विश्राम ले। उस समय कथा बन्द कर दे। तब

तक वैष्णव गण मिलकर भगवन्नाम संकीर्तन करें। इस प्रकार वक्ता बड़े संयम नियम से रहकर कथा करे।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! यह तो मैंने संक्षेप में वक्ता के नियम बताये, अब आप श्रोता के नियमों को और सुन लें। सर्व प्रथम तो आहार के नियम समझ लें। मुख्य वस्तु है आहार। मनुष्य का जैसा आहार होगा, वैसी ही उसकी वृत्ति बनेगी। जब तक कथा हो तब तक श्रोता को बैठे ही रहना चाहिये। वह होगा संयत आहार से। अधिक भोजन कर या पेय पदार्थ परिमाण से अधिक पान कर लिये तो बीच में मल मूत्र त्याग के लिये उठना ही पड़ेगा, इसलिये यथाशक्ति अल्पाहार करे, वह भी दिन में एक बार। खीर, फल या जो भी हविष्यान्न हो एक बार खाकर रहे। सायंकाल में चाहे तो दूध ले लें।"

शौनकजी ने पूछा—"खाना आवश्यक है क्या सूतजी?"

सूतजी बोले—"नहीं महाराज! आवश्यक कुछ नहीं किसी की सामर्थ्य हो तो सात दिन निराहार व्रत लेकर कथा सुने। निराहार न रह सके केवल दूध पीकर रहे, घी खाकर रहे फलाहार भक्षण करके सुने अथवा एकाहारी रहकर कथा सुने। दिन में एक बार हविष्यान्न का भोग लगाकर प्रसाद पावे।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! उपवास करके ही सुनना चाहिये। अनशन की भाँति कोई दूसरा तप नहीं। राजा परीक्षित् ने तो अनशन करके ही पूरा सप्ताह सुना था, यहाँ तक कि उन्होंने तो गंगा जल भी पान नहीं किया था। धुन्धुकारी प्रेत ने भी सात दिनों तक निराहार रहकर ही सप्ताह सुना। इससे सबको निराहार रहकर ही सुनना चाहिये।"

सूतजी ने कहा—"महाराज! निराहार व्रत का तो कहना ही क्या? यदि किसी से निभ जाय, तो इससे उत्तम तो कोई बात ही

नहीं। किन्तु भगवन्! सबके मान की यह बात नहीं। अपनी सामर्थ्य देखकर नियम लेना चाहिये। ऐसा न हो, कि नियम के हठ में मूल भावना ही नष्ट हो जाय। चौबेजी गये छब्बे जी बनने, रह गये दूबे जी ही। मुख्य उद्देश्य तो कथा श्रवण है, हमारी शक्ति तो निराहार की है नहीं, किन्तु हमने उत्तम समझ कर व्रत ले लिये। दो ही दिन में शिथिल हो गये। काँखते रहते हैं, दो आदमी पकड़कर लिटा देते हैं, कथा में बैठे-बैठे तन्द्रा में झपकियाँ लेते रहते हैं, कथा सुनायी भी नहीं पड़ती। आँखों के सम्मुख अँधेरा छा जाता है। पंडितजी ने क्या कहा कहाँ तक कथा हुई, इसका पता तक नहीं। तो भगवन्! ऐसे कथा में विघ्न करने वाले उपवास से तो मैं कथा श्रवण में सहायक भोजन को ही श्रेष्ठ मानता हूँ। समय पर आनन्द से एक बार खीर, हलुआ या दूसरा कोई भी हविष्य पदार्थ भगवान् का भोग लगाया, पा लिया। फिर आनन्द से सुख पूर्वक कथा सुनते रहे। यदि दोपहर में खाने से आलस्य आ जाय तो ऐसा नियम करले, कथा समाप्त होने पर सायंकाल में ही प्रसाद पाया करेंगे। सो भगवन् उपवास के पक्ष को उत्तम तो कहा है। किन्तु मेरी दृष्टि में कथा श्रवण में विघ्नकारक उपवास की अपेक्षा कथा श्रवण में सहायक भोजन को मैं सर्वोत्तम पक्ष मानता हूँ। आपकी क्या सम्मति है ?"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! आपका कथन सत्य है। यदि उपवास भार स्वरूप बन जाय तब तो उसका मूल स्वरूप ही नष्ट हो गया। मुख्य उद्देश्य तो श्रोता के लिये कथा श्रवण ही है। अच्छा, अब श्रोता के अन्य नियम बताइये।"

सूतजी ने कहा—"महाराज! पहिले तो श्रोता को दीक्षित होना चाहिये। यदि वह द्विजाति है, यज्ञोपवीत धारी है, तो उसके लिये आवश्यक नहीं कोई अन्य दीक्षा ले। यदि कुल परम्परा ऐसी हो तो कोई निषेध भी नहीं क्योंकि यज्ञो वै विष्णु, जिसने

यज्ञ के उपवीत की वेद माता गायत्री की दीक्षा ले ली है, वह वैष्णव ही है। दीक्षा नाम भक्ति का भी है, जो विष्णु भक्त है वह वैष्णव ही है, जिन्हें यज्ञोपवीत का अधिकार नहीं उनके लिये नाम महा मन्त्र की दीक्षा आवश्यक है।"

शौनकजी ने पूछा—"महाराज! तब तो पापी, शठ, स्त्री, शूद्र कोई भी कथा नहीं सुन सकते?"

सूतजी बोले—"नहीं, भगवन्! ऐसी बात नहीं भगवान् की कथा श्रवण के तो सभी अधिकारी हैं चाहें दीक्षित हों, अदीक्षित हों विष्णु की कथा सुनना भी तो एक दीक्षा ही है, यह जो पहिले बात कही गयी है, वह प्रधान श्रोता-सप्ताह कराने वाले के सम्बन्ध में है। गोकर्णजी के सप्ताह में तो आपने सुना ही है, एक शब्द के श्रवण मात्र से ही आस-पास के जितने सूकर, कूकर, कीट पतंग आदि जीव थे, वे सबके सब तर गये, सबके सब गोकर्णजी की कृपा से विमान पर चढ़कर गोलोक चले गये। कथा श्रवण के सभी अधिकारी हैं, कैसा भी क्यों न हो, एक के पीछे सभी तर जाते हैं, परिश्रम एक करता है, उसका लाभ सभी उठाते हैं। औषधि का अन्वेषण एक करता है, उससे आरोग्य लाभ अनेक करते हैं। अग्नि एक जलाता है, उससे शीत निवारण बहुत से लोग करते हैं। अतः यह विधि प्रधान श्रोता के सम्बन्ध में है इसके अतिरिक्त श्रोता को इन नियमों का पालन करना चाहिये।

१—श्रोता चाहें गृहस्थ हो, या विरक्त, स्त्री हो या पुरुष, सात दिनों तक ब्रह्मचर्य व्रत से रहना चाहिये।

२—यदि आहार करके कथा सुनता हो, तो उसे भोजन में इन वस्तुओं को नहीं लेना चाहिये। जैसे दाल, मधु, तैल, गरिष्ठ, बासी भोजन, भाव दूषित अन्न, लहसुन, प्याज आदि निषिद्ध पदार्थ इनका भूलकर भी उपयोग न करे।

३—काम वासना से किसी की ओर देखना, छूना, सोचना तथा दूसरी संसारी कामनाओं को करते रहना। किसी पर क्रोध करना, तथा मद, मत्सर, मान, लोभ, दम्भ तथा मोह आदि इन शत्रु रूप दोषों से निरन्तर बचते रहना।

४—जो लोग वेदाध्ययन, वेद पाठ तथा, वेद का प्रचार प्रसार करते हों, विप्र वृत्ति से रहते हों, अपने किसी भी विद्या के गुरु हों। गौओं की सदा श्रद्धापूर्वक सेवा करते हों, इनकी, तथा स्त्रियों की, शासक राजा की तथा संत महात्मा सज्जन पुरुषों की कभी निन्दा न करे। निन्दा तो किसी की न करनी चाहिये, किन्तु इन सुकृतियों की तो कभी भूलकर निन्दा न करे।

५—प्रधान श्रोता को चाहिये कि वह रजस्वला स्त्रियों से, अन्त्यजों से, म्लेच्छों से, पतितों से, द्विज होकर भी उचित समय पर जिनका यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हुआ है, उन व्रात्यों से, द्विज द्वेपियों से, तथा जो वैदिक मार्ग से बहिष्कृत कर दिये गये हों उन वेद बहिष्कृतों से बात भी न करे।

६—बोलना हो तो सत्य ही बोले, बहुत ही आवश्यक बात बोले, थोड़ा बोले, मीठा बोले नहीं तो सात दिनों तक मौन व्रत धारण करले।

७—भीतर बाहर की पवित्रता रखे।

८—सबके साथ दया का व्यवहार करे।

९—सरलता से रहे, किसी भी बात में अहङ्कार प्रदर्शित न होने दे।

१०—जो भी अपने संसर्ग में आवें, चाहें वे अपने छोटे सम्बन्धी, शिष्य तथा सेवक ही क्यों न हों सबके साथ विनय पूर्वक बर्ताव करे।

११—मन में कृपणता न लावे। उदारता पूर्वक सब काम करे।

इन नियमों का पालन करने वाला श्रोता यथार्थ में सप्ताह श्रवण के फल को पूर्ण रूप से प्राप्त कर सकता है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! किन-किन को यह कथा सुननी चाहिये ?"

सूतजी बोले—"महाराज! इसमें कोई भी नियम नहीं। सकामी हो, अकामी हो, मोक्षकामी हो, सभी का यह भागवती कथा कल्याण करती है। दरिद्री हो तो वह अपने दारिद्र नाश के निमित्त, धन प्राप्ति की इच्छा से कथा सुने, कोई राजयक्ष्मा का रोगी हो, तो अपने रोग की निवृत्ति की कामना से कथा सुने। भाग्यहीन हो, जो कार्य करता हो, उसी में हानि होती हो तो अपने भाग्य को बनाने के लिये सौभाग्य प्राप्ति के निमित्त सुने। पापी हो तो पाप क्षय के निमित्त, पुत्रहीन हो, तो पुत्र प्राप्ति की अभिलाषा से इस कथा को विधि विधान पूर्वक सुने। पुरुष ही नहीं स्त्रियाँ भी सकाम भाव से कथा सुन सकती हैं, जैसे किसी को रजोधर्म न होता हो, जिसके एक बार तो सन्तान हुई, फिर भी सन्तान ही न होती हो वह भी पुनः सन्तान की कामना से कथा सुने। जो जन्म से वन्ध्या हो, सन्तान हो-होकर मर जाती हों, असमय में जिसका गर्भ ही गिर जाता हो, ऐसी सभी स्त्रियाँ अपनी मनोकामना पूर्ति के निमित्त इस कथा को सुने। जो भगवान् की भक्ति चाहते हों, संसार से मुक्ति चाहते हों। अथवा इहलौकिक पारलौकिक कोई भी कामना क्यों न हो, सभी नरनारी इस कथा को श्रवण करके सुखी हो सकते हैं। भागवत सप्ताह कोई साधारण बात नहीं है, यह एक बड़ा भारी यज्ञ है। सकाम करोड़ों यज्ञों से भी बढ़कर यह यज्ञ है, यदि यह भगवत् प्रीत्यर्थ निष्काम भावना से किया जाय तो अन्य यज्ञों का फल तो सीमित होता है, इस यज्ञ का फल असीमित है, अन्य यज्ञों का फल तो क्षयिष्णु है, समय आने पर क्षय हो जाता है, किन्तु इसका फल

अक्षय है इसलिये ऋषियों ने भागवत सप्ताह यज्ञ की इतनी प्रशंसा की है। सात दिनों तक निरन्तर उत्साह पूर्वक महा महोत्सव मनाता हुआ कथा का श्रवण करे। जो भी कथा सुनने आ जायँ सबका यथाशक्ति सत्कार करे, उन्हें भोजन करावे, प्रसाद दें, फूल, माला, चन्दन, प्रसाद अर्पण करे। मधुर वाणी से सबका स्वागत करे।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! आपने कथा की विधि तो बड़ी सुन्दर बता दी। अब कृपा करके कथा की समाप्ति पर जो कृत्य होता है, उसकी विधि और बताइये। कथा का उद्यापन कैसे करना चाहिये ?"

सूतजी ने कहा—"अच्छी बात है महाराज ! अब मैं कथा की उद्यापन विधि आपको बताता हूँ, आप एकाग्र चित्त से उसे श्रवण करें।"

### छप्पय

*रोग शोक, अघ मिटैं पुत्र पुत्रार्थी पावैं।*
*कोटि यज्ञ फल होहि पातकी पाप नसावैं॥*
*उद्यापन पुनि करै व्यास पोथी पूजन करि।*
*झाँज मृदंग बजाय करैं कीर्तन सब जय हरि॥*
*अन्त पाठ गीता करै, निशकिंचन हरि भक्त सुनि।*
*गृही खीर को हवन करि, सहसनाम प्रभु पाठ पुनि॥*

—०—

# कथा समाप्ति पर कर्तव्य

## ( २४ )

अज्ञानं च निरस्तं मे ज्ञानविज्ञाननिष्ठया ।
भवता दर्शितं क्षेमं परं भगवतः पदम् ॥*
(श्री भा० १२ स्क० ६ ग्र० ७ श्लोक)

**छप्पय**

*नाम गान परिपूर्न करै त्रुटि सकल मिटावै ।*
*मन्त्र तन्त्र, विधि दोप दूरि करि सफल बनावै ॥*
*बारह विप्र बुलाय खीर भोजन करवावै ।*
*करै कृपनता नहीं चकाचक माल घुटावै ॥*
*कनक सिँघासन भागवत, शक्ति होइ सम्मुख धरै ।*
*चन्दन आभूषन, वसन, गो धन दै पूजन करै ।*

प्रत्येक व्रत के अन्त में उसका उद्यापन होता है इसका अर्थ है उस व्रत का अंतिम पूजन पूर्णाहुति विदायी। जैसे हम अपनी पुत्री को प्रियजन को विदा करते समय उसका पूजन करते हैं, विविध वस्तुएँ भेंट में देकर उसका मान सम्मान करते, हैं वैसे ही अनुष्ठान के अन्त में आने वाले देवताओं

---

* सात दिनों तक पूरी भागवत सप्ताह सुनने के अनन्तर महाराज परीक्षित श्रीशुकदेवजी से कह रहे हैं—"भगवन् ! ज्ञान विज्ञान निष्ठा के द्वारा आपने मेरा अज्ञान दूर कर दिया और भागवत के द्वारा भगवान् का परम मंगलमय परमपद भी दिखा दिया। मैं सप्ताह सुनकर कृत-कृत्य हो गया।"

का, आचार्य का, अन्य सदस्यों का अतिथियों तथा सगे सम्बन्धियों का पूजन किया जाता है। अपनी त्रुटियों के लिये क्षमा याचना की जाती है और अपनी शक्ति के अनुसार दान मान से उनका सत्कार किया जाता है। तभी अनुष्ठान की पूर्ति समझी जाती है। तब हृदय प्रफुल्लित हो जाता है, कि हमारा अनुष्ठान सविधि सम्पन्न हो गया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! शौनकादि महर्षि नारदजी से भागवत सप्ताह विधि बताते हुए अन्तिम दिन-पूर्णाहुति के दिन-के कृत्य का वर्णन करते हुए कह रहे हैं। नारद! प्रत्येक अनुष्ठान की पूर्णाहुति तो की ही जाती है। उसमें दान का महत्व अत्यधिक है। श्रोता दो प्रकार के होते हैं। सकाम और निष्काम, फल की इच्छा वाले सकाम और निष्काम—प्रभु प्रीत्यर्थ कर्म करने वाले। फल तो विधि के अधीन है। विधि में त्रुटि पड़ने से फल में भी त्रुटि पड़ जाती है, सफल कर्म तो उस प्रकार हैं, जैसे फल खाने की इच्छा से फलों के वृक्ष लगाना। उनमें तो विधिपूर्वक समय से जल देना चाहिये खाद देनी चाहिये और भी उपयोगी साधन जुटाकर फल प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिये। निष्काम कर्म ऐसे हैं, जैसे परोपकार की भावना से-या स्वभाव वश वन में बीज फेंक दिया। वह अनायास जम गया, वृक्ष हो गया, जो चाहो उसके फल खाओ, बोने वाले को ध्यान भी नहीं रहता मैंने अमुक स्थान पर बीज बोया था। इसी प्रकार जो किसी कामना को लेकर—किसी फल की प्राप्ति के लिये कोई अनुष्ठान करते हैं उन्हें तो उद्यापन करना ही चाहिये, किन्तु जो निष्काम, निष्किञ्चन वैष्णव भक्त हैं, उनके लिये उद्यापन का कोई आग्रह नहीं, कोई यजमान अनायास मिल गया और उसने आग्रह किया, तो धूम धाम से उद्यापन कर भी दिया, उस समय यह हठ न करे, कि हम तो बड़े भारी त्यागी

वैरागी निष्किचन भक्त हैं हमें इन प्रपंचों में पड़ने से क्या प्रयोजन ? यदि ऐसा संयोग न जुटे, तो उद्यापन करने के दुराग्रह में विक्षिप्तों की भाँति घूमता न फिरे कि हमें भागवत सप्ताह का उद्यापन करना है। उसके लिये कोई आवश्यक नहीं। उसने कथा सुन ली यही बहुत है सुनने मात्र से ही वह पवित्र हो जायगा। पूरी कथा सुनने के अनन्तर वह गीता का पाठ और सुन ले न्यूनाधिक दोष निवृत्ति के लिये श्रीविष्णु सहस्रनाम का पाठ सुन ले। बस उसकी विधि परिपूर्ण हो गयी भगवन्नाम के श्रवण गायन से मंत्र, तन्त्र, देश, काल, वस्तु तथा विधि सम्बन्धी सभी वैविधियाँ परिपूर्ण हो जाती हैं।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! यह तो निष्काम विरक्त वैष्णवों के उद्यापन की विधि हुई। अब जो सकाम हो फलेच्छु होकर जिसने सप्ताह यज्ञ किया हो उसे क्या करना चाहिये ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! उसकी विधि तो अपनी शक्ति सामर्थ्य के ऊपर है। भगवान् ने यथेष्ट, तो धन दिया हो और वैसा ही उदार हृदय दिया हो, तब यज्ञानुष्ठान करने में आनन्द आता है। बहुत बड़े से बड़े धनिक तो होते हैं। किन्तु भगवान् ने उनमें दातृत्व शक्ति दी ही नहीं, या तो भगवान् भूल गये होंगे या उन्होंने भी देने में कृपणता की होगी, वे धनिक तो महाराज ! यक्षवित्त होते हैं, जैसे कोई धन गाड़ कर मर जाता है और मरकर सर्प होकर उस धन पर बैठा रहता है, स्वयं तो उसका सुख भोग नहीं सकता। दूसरों को भी उससे वञ्चित करता है। ऐसे ही ये कृपणानन्द होते हैं न स्वयं खायँगे न किसी को खाने देंगे; दान व्रत की बात तो पृथक रही। कभी संकोच वश व्यवहार वश, सामाजिक बन्धन के कारण कुछ करना भी होगा, तो एक पाई व्यय करने में उनके प्राण सूखने लगेंगे। ऐसे लोग

सप्ताह ही क्या करावेंगे, किसी तरह करा भी दिया तो उद्यापन नहीं कर सकते। उद्यापन तो वही सविधि कर सकता है। जिसे धन के साथ भगवान् ने यथेष्ट दातृत्व शक्ति और उत्साह प्रदान किया हो। ऐसे लोगों को भागवत सप्ताह का उद्यापन बड़े आह्लाद के साथ जन्माष्टमी के उद्यापन की भाँति करना चाहिये। जैसे स्नेही पिता बड़ी धूम-धाम से अपने पुत्र तथा पुत्रियों का विवाह धूम-धाम से करता है, उसी उत्साह से उद्यापन के कृत्यों को करें। उस दिन बड़ा भारी महा महोत्सव मनावे।

कथा सप्ताह होने पर श्रोता सविधि श्रीमद्भागवत की पुस्तक का कथा कहने वाले व्यास का सविधि पूजन करे।

प्रधान श्रोता के पूजन करने के अनन्तर जितने भी अन्य श्रोता हैं सभी अपनी सामर्थ्य के अनुसार पूजन करें।

1.. पूजन करने वाले भक्तों को वक्ता तुलसी दल, प्रसाद तथा

प्रसादी माला दे। सब मिलकर भक्ति भाव से पुस्तक की तथा वक्ता व्यास की आरती करें, घंटा, घड़ियाल, शंख, मृदंग आदि बाजों को बजावें। अबीर उड़ावें खील बखेरे, नृत्य करें और, सब मिलकर झाँझ मृदंग आदि, मनोहर वाद्यों के साथ, ताल स्वर लय और मधुर ध्वनि के सहित भगवान् के सुमधुर नामों का आनन्द में विभोर होकर कीर्तन करें। कीर्तन में सभी तन्मय हो जायँ, सभी नाचने लगें। उच्च स्वर से जय-जयकार करें, नमो नमः नमो नमः आदि मंगल शब्दों का उच्चारण करें। अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को, भिक्षुकों को तथा और भी जो याचक आवें सभी को दान-पुण्य करे। इस प्रकार सप्ताह को समाप्त कर दे।

दूसरे दिन श्रोता भगवान का निष्किंचन विरक्त भक्त हो तो, गीता तथा विष्णु सहस्र नाम सुनकर समाप्त करे, यदि गृही हो, सामर्थ्यवान् हो, तो हवन करावे। जैसे और सब हवन होते हैं, वैसे ही करे, उसमें आहुतियाँ दूध की खीर की हों उसमें मधु, घृत तथा तिल, जौ, चावलादि भी मिला दे। आहुति श्रीमद्-भागवत के दशमस्कन्ध के मन्त्रों से करे। पूरे से न करे रास पंचाध्यायी से करे। अथवा गायत्री मन्त्र से ही हवन करे।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! गायत्री मन्त्र से और भागवत से क्या सम्बन्ध ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! श्रीमद्भागवत गायत्री मन्त्र का तो भाष्य ही है। इसमें केवल मात्र गायत्री मन्त्र की व्याख्या है, यह गायत्री मन्त्रमय है। अन्तर इतना ही है उस वैदिकी गायत्री को सुनने का अधिकार द्विज मात्र को ही है और इस गायत्री को पतित, चांडाल, तथा और पापी तापी आदि सभी सुन सकते हैं।"

हवन न कर सके तो उतनी सामग्री या उतनी सामग्री का

मूल्य ब्राह्मणों को दान कर दे। ब्राह्मणों को दान देने से भी वही फल मिल जायगा क्योंकि भगवान के दो मुख हैं, अग्नि और ब्राह्मण। दोनों में आहुति पड़ने पर प्रभु प्रसन्न होते हैं। अग्नि में कच्चे अन्न को घृत मिलाकर आहुति दी जाती है और ब्राह्मण के मुख में पकाकर जिसमें से घृत चू रहा हो, ऐसे हलुआ आदि की आहुति दी जाती है। इसीलिये सभी कर्म अंग हैं, ब्राह्मण भोजन अंगी है। सब कर्म ब्राह्मण भोजन से ही सफल होते हैं। इसलिये सुन्दर अधौटा दूध की खीर बनाकर कम से कम श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध हैं तो बारह ब्राह्मणों को तो भोजन करावे ही, भोजन कराकर दक्षिणा दे, गौदान दे, सुवर्ण दान दे।"

हँसकर शौनकजी बोले—"सूतजी! ब्राह्मणों ने सर्वत्र अपने ही स्वार्थ की बात भर दी है। जहाँ देखो वहीं ब्राह्मण भोजन, दान दक्षिणा की ही भर मार है। इनके बिना कोई काम नें ही नहीं होता। यह क्या बात है?"

हँसकर सूतजी बोले—"महाराज! इसे तो आप जानें और आपके पूर्वज ऋषि जानें, मुनि जानें, मैंने तो जो सुना है वह बताता हूँ। लोग साधु ब्राह्मणों को "दादा" (बाबा) कहा करते हैं इसलिये इन्हें सदा दान की ही स्मृति बनी रहती है। सेठों को लोग "लाला" कहते हैं, वे सदा धन लाओ, अन्न लाओ, पशु लाओ, यही कहते रहते हैं। मिलता उसी को है जो दूसरों को देता है, पेट उसी का भरता है जो दूसरों के मुख में डालता है। बिना दिये आता नहीं, बिना दूसरों को खिलाये, खाना मिलता नहीं। इस विषय में एक वैदिक दृष्टान्त है।"

एक बार ऋषियों में यह चर्चा हुई, कि समाज का कल्याण कैसे हो, सब को सुख कैसे मिले। उनमें जो सबसे बड़े ऋषि थे

उन्होंने कहा—"कल आप सब का हमारे यहाँ निमन्त्रण है, वहीं इस विषय की भी चर्चा होगी।"

सबने स्वीकार किया, दूसरे दिन नियत समय पर ऋषिगण पहुँच गये। महर्षि ने बड़े सुन्दर-सुन्दर पदार्थ बनाये थे। सबको आसन बिछाकर उनसे थोड़ी-थोड़ी दूर पर पत्तलें परोसी।

सब सोचने लगे ये इतनी दूर पत्तल क्यों परोस रहे हैं बहुत लम्बे हाथ करने पर ही उसमें से खाद्य पदार्थ उठा सकते हैं, किन्तु कोई बोला नहीं। फिर बहुत से डंडे ले आये सब मुनियों के दाँयें हाथ में कंधे से कोहनी के नीचे तक डंडा बाँध दिया जिससे मुड़ न सके। जब सबके बँध गया, तो मुनि ने कहा—"अच्छा अब आप सब लोग भोजन करें।"

अब भोजन करें कैसे, हाथ मुड़े मुख तक ग्रास जाय, तो भोजन हो। दूर परसी पत्तल में से लम्बा हाथ करके ग्रास तो उठाया जा सकता है, किन्तु वह अपने मुख तक तो पहुँच नहीं सकता।

मुनियों ने कहा—"महाराज! आपको नहीं खिलाना था, तो वैसे ही मना कर देते, हाथ तो आपने बाँध दिये। पत्तल दूर परोस दी पदार्थ स्वादिष्ट बनाये। मन ललचा रहा है किन्तु हाथ बँधे होने से हम खा नहीं सकते। पेट भर नहीं सकता। क्षुधा की शांति नहीं हो सकती। हम मुख से लाओ-लाओ तो कह सकते हैं किन्तु खाओ-खाओ नहीं कह सकते।"

महर्षि ने कहा—"आप लोग ऐसा कोई उपाय सोचो कि इसी दशा में सबका पेट भर जाय। पदार्थ अपने से दूर भी रहे, हाथ बँधे भी रहें और पेट भर जाय।"

उनमें से एक बुद्धिमान मुनि बोले—"एक काम करो दूर रखी अपनी पत्तल में से ग्रास उठाकर अपने मुख में न डालकर अपने पास वाले के मुख में डाल दो। परस्पर में एक स्वयं न

खाकर दूसरे के मुख में ग्रास देगा तो सभी का पेट भर जायगा।

यह उपाय सभी को सुन्दर लगा। अब सभी अपने सामने की पत्तलों में से उठा-उठाकर दूसरे के मुख में डालने लगे। सभी का पेट भर गया।"

तब महर्षि ने कहा—"आपके कल के प्रश्न का यही उत्तर है, समाज का कल्याण तभी होगा जब प्रत्येक व्यक्ति स्वयं न खाकर अपने पास वाले को खिलायेगा।"

हँसकर शौनकजी बोले—"सूतजी! ये ब्राह्मण दूसरों को कहाँ खिलाते हैं ये तो दूसरों का खा ही लेते हैं?"

सूतजी ने कहा—"महाराज! स्थूल भोजन न खिलावें, किन्तु ज्ञान तो खिलाते ही हैं, जिस पर जो वस्तु होगी वही तो वह दूसरों को खिलावेगा। समाज के अन्य लोग अन्न एकत्रित करते हैं, ब्राह्मण ज्ञान विज्ञान का अर्जन करते हैं, परस्पर के सहयोग से समाज चलता है। जहाँ एक ने भी अपने कर्तव्य में प्रमाद किया, वहीं समाज का ढाँचा बिगड़ जाता है। वहीं एक दूसरे से घृणा करते हैं। बुरा-भला कहने लगते हैं।"

शौनकजी ने कहा—"हाँ, सूतजी! आपका कथन सत्य है आज ब्राह्मण अपने कर्तव्य से च्युत हो गये हैं, तभी सर्वत्र इनका अपमान हो रहा है, इन्हें लोग स्वार्थी बताते हैं, इन पर मनमानी लिख देने का दोषारोपण करते हैं। अब आगे आप उद्यापन की विधि सुनाइये।"

सूतजी हँसकर बोले—"महाराज! अब क्या सुनाना रह गया, अब तो सब बात समाप्त हो गयी। सब विधि ब्राह्मण भोजन तक ही है। ब्राह्मण जहाँ पत्तलों से हरये नमः करके उठ पड़े कि सब समाप्त, हाँ भोजन की दक्षिणा तो रह ही गयी। भोजन कराकर ताम्बूल दक्षिणा दे। शक्ति हो तो सुवर्ण का सिंहा-

सन बनवाकर उस पर भागवत की पुस्तक रखकर उसका पूजन करके उसे वक्ता को समर्पित करे। इस प्रकार सप्ताह यज्ञ करने से श्रोता सभी संसारी बन्धनों से छूट जाता है। धर्मार्थी को धर्म, अर्थार्थी को अर्थ, कामना वाले की पूरी कामना और मोक्षार्थी को मोक्ष मिल जाती है। इस विषय में सन्देह करने का कोई उचित कारण ही नहीं।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! इसपर सनकादि मुनियों ने सप्ताह श्रवण की विधि श्रीमद्भागवत का माहात्म्य सुनाकर नारद जी से पूछा—"नारद ! यह हमने तुम्हें भागवती कथा की महिमा सुनायी, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ?"

नारदजी ने कहा—"महाराज ! माहात्म्य तो सुन लिया अब सात दिन आप सप्ताह और सुना दीजिये।"

सनकादि मुनियों ने कहा—"अच्छी बात है, आप दत्त चित्त होकर सप्ताह सुनिये अब हम आपको भागवती कथा का सप्ताह सुनाते हैं।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! नारदजी की प्रार्थना पर सनकादि महर्षियों ने नारदजी को सात दिन तक सविधि भागवत को सप्ताह सुनायो, कथा के अन्त में सबने परम उत्साह और धूमधाम पूर्वक पतित पावन जन मन भावन सुख सरसावन भगवान् पुरुषोत्तम की प्रेम पूर्वक पूजा की। इस अनुष्ठान से नारदजी की मनोकामना पूर्ण हो गयी, भक्ति देवी का म्लान मुख प्रफुल्लित हो गया। उनकी सुन्दरता अत्यधिक बढ़ गयी। पूर्ण चन्द्र के समान उनका मुख मण्डल अलौकिक आभा से अद्भुत अलौकिक और अनुपम प्रतीत होने लगा। उनके पुत्र पूर्ण तरुणावस्था को प्राप्त होकर अश्विनी कुमारों के समान दो कामदेवों के समान दिखाई देने लगे। उनकी अद्भुत शोभा को देखकर नारदजी फूले नहीं समाये उनके रोम-रोम से प्रसन्नता फूट-

फूटकर निकल रही थी अपने मनोरथ को इस प्रकार सहज में सिद्ध होते देखकर उनके हर्ष का ठिकाना नहीं रहा नेत्र आनन्दाश्रुओं से परिपूर्ण हो गये, स्वर गद्गद हो उठा, प्रेम पूर्ण वाणी से दोनों हाथों की अंजलि बाँधकर वे अपने अग्रज सनक, सनन्दन, सनत् कुमार और सनातन चारों भाइयों की स्तुति करने लगे।

आजु हौं धन्य भयो मुनिराज।
*कही कथा कमनीय कृपा करि करयो कृष्ण को काज ॥१॥*
सुन्यो सविधि सप्ताह सुरुचि सुठि सजे सकल सुख साज।
सतगुरु संगति सुखद सराहें सब विधि सकल समाज ॥२॥
भव्य भागवत भवहर भयहर सुनत भक्तिभय भाज।
मिल्यो मुक्ति मारग माया हर मम मन मुदित सुआज ॥३॥

हे तप धन ! हे आनन्द घन ! हे मुनीश्वर गण ! आप लोगों ने श्रीमद्भागवत सप्ताह सुनाकर मुझे कृतार्थ कर दिया। भक्ति ज्ञान तथा वैराग्य की विपत्ति को टाल दिया। मैं तो समझता हूँ इस युग में श्रीमद्भागवत ही सर्वश्रेष्ठ है, इससे शीघ्र ही श्याम सुन्दर वैकुण्ठ विहारी भव भय हारी मुरारी प्राप्त हो सकते हैं।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! इस प्रकार नारदजी ने सप्ताह सुनने के अनन्तर कुमारों की स्तुति की। उस समय एक बड़ी ही अद्भुत आश्चर्य जनक घटना हुई। उस सप्ताह के प्रभाव से वहाँ स्वयं साक्षात् व्यास पुत्र शुक, प्रह्लाद, उद्धव आदि प्रभु के परम प्रिय भक्त तथा स्वयं भगवान् प्रकट हुए। जिससे सभी को अपार आनन्द प्राप्त हुआ। उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

—०—

### छप्पय

सूत कहें सप्ताह सविधि सुनि नारद हरषे।
मुदित ज्ञान वैराग्य भक्ति रस सागर सरसे॥
नारद बिनती करी कुमारनि कृपा बखानी।
तबई तहँ शुकदेव महामुनि आये ज्ञानी॥
वय षोडश वपु अति मधुर, पढ़त भागवत कण्ठ कल।
उठे सभासद मुदित मन, हरष जनावत मुनि सकल॥

# नारदजी के सप्ताह में भक्त और भगवान् का प्राकट्य, महासंकीर्तन के साथ सप्ताह समाप्त

[ २५ ]

स उत्तमश्लोक महन्मुखच्युतो
भवत्पदाम्भोजसुधाकणानिलः ।
स्मृतिं पुनर्विस्मृततत्त्ववर्त्मनाम्
कुयोगिनां नो वितरत्यलं वरैः ॥*

(श्री भा० ४ स्क० २० अ० २५ श्लो०)

छप्पय

सबने शुक मुख सुनी भागवत महिमा भारी ।
बलि उद्धव प्रह्लाद सहित प्रकटे गिरिधारी ॥
है हरषित हरि भक्त करें कीर्तन प्रभु आगे ।
भक्ति ज्ञान वैराग्य प्रेम तें नाचन लागे ॥
देइँ ताल प्रह्लादजी, नारद बीन बजाइँ वर ।
इन्द्र मृदंग बजाइँ शुक, भाव जताइ उठाइ कर ॥

---

* महाराज पृथु भगवान् की स्तुति करते हुए कह रहे हैं—"हे उत्तम श्लोक ! साधु सन्तों महत्पुरुषों के मुखारविन्द से निकली हुई वायु रूपी आपकी कथा और उसमें आपके पाद पद्मों के मकरन्द रूप मिले मधु का कानों मे संसर्ग होते ही तत्त्व मार्ग से पतित योगियों की स्मृति को पुनः जागृत कर देता है । अतः हमें तो यही वरदान दीजिये कि आपके सुयश की कथा को सदा सर्वदा सुनते रहें । इसके अतिरिक्त हमें दूसरा वर नहीं चाहिये ।"

प्रेम के आधिक्य में जब भावावेश होता है तब देहाभिमान विलीन हो जाता है, उस समय छोटे बड़े का भेद-भाव रहता ही नहीं। उस समय सभी एक ही भाँति आनन्द सागर में गोता लगाने लगते हैं सभी एक प्राण एक मन होकर आनन्द में नाचने लगते हैं, कूदने लगते हैं, उछलने लगते हैं, गाने लगते हैं, बजाने लगते हैं, प्रलाप करने लगते हैं, भाव जताने लगते हैं तथा भाँति-भाँति की अलौकिक चेष्टायें करने लगते हैं इसी का नाम है महासंकीर्तन। ऐसा कीर्तन हो तो भगवान् भी अपने को सम्हाल नहीं सकते उन्हें भी स्वयं आना पड़ता है और भक्तों को वरदान देकर उनके अधीन रहना पड़ता है, ऐसा कीर्तन जो करते हैं अथवा कराते हैं वे बड़भागी हैं, वे सम्पूर्ण लोक को पावन बनाते हैं, जगत् के दुखी जीवों को प्रभुपाद पद्मों तक पहुँचाते हैं। जिनके नाम गान का ऐसा प्रभाव है, उन प्रभु को धन्य है जो उस नाम का गान करते हैं, हर्ष में नाचते गाते हैं वे भक्त धन्य हैं, जो भाग्यशाली ऐसे संकीर्तनों का आयोजन करते हैं वे भी धन्याति-धन्य हैं और जो कथा कीर्तन को देखकर प्रसन्न होते हैं, मुदित होते हैं, उनमें तन से, मन से तथा धन से सहयोग देते हैं। वे सहायक भी धन्य-धन्य हैं। और जिनके कानों में बिना प्रयास अनिच्छा से भी ऐसे संकीर्तन की ध्वनि पड़ जाती है वे भी धन्य-धन्य हैं। अग्नि का तो कैसे भी जान में, अनजान में, संसर्ग हो जाय वह तम को, भय को तथा शीत को, निवारण करेंगे ही। यह अग्नि का स्वभाव है गुण है कभी व्यर्थ न होने वाली प्रकृति है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जिस समय नारदजी सनकादि कुमारों की स्तुति कर रहे थे, उसी समय कथा की पूर्णाहुति के काल में ही सबको अत्यन्त ही सुरीला स्वर सुनाई पड़ा, मानों कोई पुंस्कोकिल "निगम कल्पतरोर्गलितं फलं" आदि श्लोकों

का गान कर रहा हो। उस समय मधुमय आनन्दमय प्रेममय आकर्षण युक्त कर्णों को अत्यन्त ही प्रिय लगने वाले शब्द को सुनकर सभी सभा में समुपस्थित श्रोता चौंक पड़े। सभी उत्सुकता पूर्वक उसी ओर देखने लगे, जिधर से यह शब्द सुनायी पड़ रहा था उन्होंने देखा सम्मुख एक अत्यन्त सुन्दर सुकुमार कामदेव को भी अपनी आभा प्रतिभा तथा तेज से लज्जित करने वाले दिगम्बर जटा बखेरे धूलि लपेटे एक षोडश वर्ष की अवस्था वाले अवधूत चले आ रहे हैं। देखते ही सब समझ गये ये तो अरणी आनन्द वर्धन कृष्णद्वैपायन नन्दन आत्म लाभ से परिपूर्ण ज्ञान रूप महार्णव के परिपूर्ण चन्द्र भागवान् शुक हैं।" शुकदेवजी प्रकट हो गये वैष्णव चक्र चूड़ामणि परमहंसावतंस महामुनि शुकदेवजी आ गये इस बात का हल्ला मच गया सहसा सभी सम्भ्रम के साथ शुक के स्वागत के निमित्त खड़े हो गये।

आत्मानन्द में निमग्न भागवतामृत रस के पान से प्रमत्त बने शुकदेवजी मदमत्त गजराज कलभ के सदृश स्वेच्छा से घूमते हुए परमान्द में झूमते हुए सीधे सभा में ही चले आये। नारदजी ने अत्यन्त ही स्नेह और आदर के साथ उन्हें आसन दिया, उनकी प्रेम के सहित पूजा की और स्वागत तथा शिष्टाचार के वचन कहे।

नारदजी की पूजा को शास्त्रीय विधि से स्वीकार करते हुए शुकदेवजी ने प्रेम पूर्ण शब्दों में गाना प्रारम्भ किया।

भागवत फल अति सरस सुहावन।
गुठली नहीं बीज नहिँ छिलको हलको सुख सरसावन ॥१॥ भा०
केवल रसघन मधुर सुपावन अघ-तम-ताप नसावन।
तिलक पुराननि धन भक्तनि मनि, सकल जगत उद्धारन ॥२॥ भा०

बरनित तत्व ज्ञान अति निरमल, प्रबल प्रताप जतावन।
ज्ञान विराग भक्ति अरु निरवृति, प्रवृति प्रकाश प्रकाशन ॥३॥ भा०
सुमिरन श्रवन पठन नित चिंतन, बन्धन सकल छुड़ावन।
रस अति सहज सुधा सुखसर-सम, भवभय भीति भगावन ॥४॥ भा०
नहीं स्वरग वैकुण्ठ लोक-शिव, यह रस मुनिमन भावन।
भावुक भक्त भाव भर पीओ, प्रभुपद प्रीति बढ़ावन ॥५॥ भा०
माँगू भीख सीख सब धारो, ह्वै कें अति निर्किंचन।
मुख करननि जीवनभर पीओ, रस- संजीवन-जीवन ॥६॥ भा०

हे भावुक भक्तो ! मेरी बात मानो। इस भागवत रूप फल को चखो, इसके सुधासम रस का प्रेम पूर्वक पान करो। यह फल किसी साधारण वृक्ष का नहीं, यह कल्पतरु का सरस फल है, कच्चा भी नहीं परिपूर्ण रूप से पका है, इसके किसी अंश में कचाई नहीं खटाई नहीं बासी भी नहीं पुराना भी नहीं, सूखा भी नहीं, टटका है टटका, इसमें गुठली नहीं, छिलका नहीं, बीज हेय पदार्थ नहीं, सभी ग्राह्य है, सभी खाने योग्य है। यह पृथ्वी के नर-नारियों के लिये दुर्लभ था, क्योंकि इसका वृक्ष तो वैकुण्ठ में है, किन्तु छोटे से शुक ने इस पके फल में चोंच मार दी। पका तो था ही झट से पृथ्वी पर आ गिरा, भूलोक के भावुक भक्तों का भाग्य ही था, नहीं तो कहाँ वैकुण्ठ कहाँ भूलोक। यह अमर फल है, कभी चुकने वाला नहीं, इसका रस सर्वथा पेय है, हेय उसमें कोई अंश नहीं। इसे कितना ही पीयो अपच नहीं होती, चित्त ऊबता नहीं, अरुचि होती नहीं। चाहे जितना पीओ चाहे जब तक पियो। अरे, जब ऐसी दुर्लभ वस्तु प्राप्त हो गयी, तो कृपणता क्यों करते हो, पीते जाओ, पीते जाओ, मरण पर्यन्त पीते जाओ। अरे, मरण कहाँ, यह तो अमर रस है, इसको पीने वाला कभी मरता नहीं, रोग, शोक चिन्ता से कभी गिरता नहीं,

चित्त उसका भरता नहीं। इसलिये इस भागवत फल के रस को पान करो।

श्रीमद्भागवत अमर ग्रन्थ है, यह भगवान व्यास की कमनीय कृति है, इसमें कामनारहित निष्काम कर्मों का वर्णन है। कल्याणमय ज्ञातव्य वस्तु का इसमें वर्णन है। भगवान् को पा लेना, हरि को हृदय में बिठा लेना यही इसके पठन का फल है। इसके श्रवण मनन चिन्तन से ताप भय विलीन हो जायँगे, श्रीहरि उस स्वच्छ सुन्दर सरल हृदय में आकर विराज मान हो जायँगे। इसलिये इसमें सब कुछ है, इसे पढ़ लेने पर अन्य किसी ग्रन्थ के पढ़ने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

श्रीमद्भागवत पुराण है ? नहीं, नहीं, समस्त पुराणों में शिरोभूषण है, तिलक है। वैष्णवों का यही परम धन है, सर्वस्व है, परमहंसों द्वारा प्राप्त निर्मल ज्ञान का भी इसमें वर्णन है और ज्ञान वैराग्य पुत्रों के सहित जगन्माता भक्ति की इसमें महिमा गायी है, निवृत्ति मार्ग का इसमें वर्णन है। भक्ति द्वारा पढ़ने सुनने, पाठ करने तथा चिन्तन करने से पुनः संसार का आवागमन नहीं रहता संसृति चक्र से छुटकारा मिल जाता है, जीव मुक्त हो जाता है। न यह रस, स्वर्ग में, न कैलाश में, न वैकुण्ठ में। यह रस यहीं है, पीओ रे, पीओ। चूकना नहीं रे लोगों में ललकार कर कहता हूँ, हठ पूर्वक कहता हूँ, ऊपर हाथ उठाकर कहता हूँ प्रतिज्ञा पूर्वक कहता हूँ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! मेरे गुरुदेव भगवान् शुक इस प्रकार भागवत की महिमा का वर्णन कर ही रहे थे, कि इसी समय विमानों की सुमधुर ध्वनि वायुमंडल में भर गयी। देखा, विमानों के ऊपर विमान चले आ रहे हैं। देखा इन्द्रादि देवताओं तथा बलि, उद्धव और अर्जुन आदि अपने अनन्य भक्त पार्षदों से घिरे श्रीहरि का विमान सप्ताह मंडप में ही उतर रहा है। भग-

महासंकीर्तन के साथ सप्ताह समाप्त

वान् का प्राकट्य देखकर सभी भक्तगण जय-जयकार करने लगे उनके आनन्द की सीमा न रही। देवर्षि नारद ने प्रेम में विह्वल होकर अत्यन्त ही आनन्द के साथ भगवान को एक उच्चासन पर बिठाकर उनकी विधि विधान पूर्वक पूजा की। फिर सभी भक्त भगवान् के सम्मुख प्रेम विभोर होकर कीर्तन करने लगे। उस महासंकीर्तन की दिव्य ध्वनि ब्रह्मलोक तक पहुँच गयी। ब्रह्माजी ने तुरंत अपने वाहन हंस को बुलाया और उड़कर कीर्तनानन्द लेने को कथास्थल में आ पहुँचे। शिवजी समाधि में मग्न थे, पार्वतीजी ने उन्हें झकझोरते हुए कहा—"क्या महाराज! सदा समाधि में ही निमग्न रहोगे, कि कुछ सरसता के सुख को भी अनुभव करोगे। चलो आनन्द वन में भगवन्नाम संकीर्तन का दिव्य महा महोत्सव हो रहा है, चलो उस अभूत पूर्व आनन्द का रसास्वादन करें।"

शंकरजी ने कहा—"अहा! भगवन्नाम संकीर्तन कितना सरल, सुगम, सरस, सहज साधन है, बुलाओ नादिया को चलो चलें।"

इस प्रकार कथा कीर्तन के प्रभाव से वहाँ त्रिदेव, देवता, यक्ष, गन्धर्व, ऋषि, मुनि सब आकर एकत्रित हो गये, बात की बात में वह सम्पूर्ण समाज एक अलौकिक आभा से आभासित हो उठा। उस संकीर्तन में देवराज इन्द्र मृदङ्ग बजाने लगे क्योंकि वे इस विषय के पंडित थे, परम भक्त प्रह्लादजी की गति अति चंचल थी इसलिये वे शास्त्रीय विधि से ताल देने लगे, उद्धवजी ने मंजीरा उठा लिये, नारदजी अपनी वीणा को चटपट उठाकर, शीघ्रता से उनके तारों को मिलाकर उनकी ताल में ताल और स्वर में स्वर मिलाकर झूमते हुए बजाने लगे। कुन्ती नन्दन अर्जुन स्वर में कुशल होने से राग अलापने लगे सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन ये भी व्यासा-

सन का परित्याग करके उठ खड़े हुए थे और संकीर्तन में सम्मिलित हो गये थे, वे भी सबके स्वर में स्वर मिलाकर बीच बीच में बोल उठते थे, जय हो, जय हो, सदा जय हो। महा कवि परम अवधूत, विरक्त चकचूड़ामणि व्यासनन्दन शुकदेवजी तत्क्षण सरस रचना करके बीच में गा गाकर भाव जताने लगे। भक्ति, ज्ञान और वैराग्य ये तीनों माता पुत्र बड़े सुन्दर ढङ्ग से भाव प्रदर्शित करते हुए ठुमुक-ठुमुककर नृत्य करने

लगे। ऐसा लग रहा था, कि कोई संगीत मे परम कुशल नटी और नट नृत्य कर रहे हों। उस समय संकीर्तन का ऐसा अद्भुत अलौकिक समाज एकत्रित हुआ कि न भूतो न भविष्यति सब के सब उस संकीर्तन के आनन्द में तन्मय हो गये, किसी को अपने शरीर की सुधि नहीं रही। सम्मुख भगवान को विराजमान देखकर सभी का उत्साह सहस्रों गुणा बढ़ गया। सभी उस

## महासंकीर्तन के साथ सप्ताह समाप्त

आनन्द सागर में बह गये। सब के सब स्तब्ध से रह गये। जो उस समाज में आ गये उनके भाग्योदय हो गये।"

भगवान् भी अपने ऐसे संकीर्तन को देखकर प्रेम में विह्वल हो गये उन्होंने सभी भक्तों से कहा—"हे कीर्तनानन्द रस में परिप्लुत भक्त वृन्द ! मैं आज के आपके अत्यद्भुत संकीर्तन से परम सन्तुष्ट हूँ। तुम्हारी ऐसी अद्भुत अलौकिक भक्ति को देखकर मैं तुम सबके आधीन हो गया हूँ, अब तुम मुझसे जो भी चाहो इच्छित वर माँग लो। आज तुम जो भी माँगोगे वही दूँगा, जो भी कहोगे वही करूँगा।"

इच्छित वर देने वाले वांछा-कल्पतरु श्रीहरि के ऐसे परमोदार प्रेम में पगे वचन सुनकर सभी का हृदय भर आया सभी प्रेमार्द्र चित्त से हाथ जोड़कर प्रभु से कहने लगे—"भगवन् ! हम आपसे यही वर मागते हैं, कि इस सप्ताह में जैसा अपूर्व आनन्द हुआ वैसे ही सर्वत्र हो, जहाँ भी श्रीमद्भागवत् का सप्ताह हो अपने भक्त पार्षदों सहित वहाँ अवश्यमेव पधारें।"

भगवान् ने तथास्तु कहकर भक्तों के परोपकारमय जन-हितार्थ वरदान का अनुमोदन करते हुए 'ऐसा ही होगा' यह वचन कहा।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! इस प्रकार नारदजी की सप्ताह की समाप्ति पर ऐसा कीर्तन हुआ, सबके देखते-देखते पार्षदों सहित भगवान वहीं अन्तर्धान हो गये। अब रह गये, भगवान् शुक, सनकादि अन्य महर्षिगण उन सब की नारदजी ने विधिवत् उत्तर पूजा की। सबने नारदजी के परोपकार की भूरि-भूरि प्रशंसा की, सराहना की। उसी समय भक्ति ने अपने पुत्र ज्ञान वैराग्य के सहित शुकदेवजी से प्रार्थना की--"मुनिवर ! आपकी भागवत की महिमा बड़ी ही अलौकिक है इसके कारण

मेरे पुत्रों की वृद्धावस्था दूर हुई मुझे भी परमानन्द की प्राप्ति हुई। अब यह बताइये हम लोग नित्य रहें कहाँ ?"

श्री शुकदेवजी ने कुछ देर विचार किया तदनन्तर बोले—"देखो, भक्ति ! तुम कृष्णप्रिया हो। जहाँ श्रीकृष्ण नित्य निवास करें वहीं तुम रहो। इस श्रीमद्भागवत में भगवान् निरन्तर वास करते हैं, वास क्या करते हैं, यह भगवान् का वाङ्मय रूप ही है, अतः तुम अपने ज्ञान वैराग्य इन दो पुत्रों सहित इस श्रीमद्भागवत महापुराण में ही वास करो। जो लोग श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक श्रीमद्भागवत का पाठ करेंगे, भागवती कथाओं का श्रवण मनन करेंगे, उनके हृदय में स्वयं भगवान विराजमान् हो जायँगे।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! इस प्रकार नारद को कृतार्थ करके, भक्ति ज्ञान और वैराग्य को श्रीमद्भागवत में स्थापित करके भगवान् शुक तथा सनकादि महर्षि इच्छानुसार लोकों में चले गये। तभी से श्रीमद्भागवत का महत्त्व बढ़ गया। तभी से संसार में सप्ताह यज्ञ का प्रचलन हुआ।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! ऐतिहासिक तीन सप्ताह हुए। एक तो भगवान् शुक ने राजा परीक्षित् को सुनाया। दूसरा गोकर्ण ने धुन्धुकारी को सुनाया और तीसरा सनकादि महर्षियों ने नारदजी को सुनाया। हम जानना चाहते हैं, इन तीनों में काल का कितना अन्तर है।"

सूतजी बोले—"भगवान् सनक, सनन्दन, सनातन, सनत् कुमार, नारद, शुक तथा दूसरे ऋषि गण ये सब कल्पजीवी हैं। एक कल्प तक ये वैसे ही बने रहते हैं, दूसरे कल्पों में भी ये पैदा हो जाते हैं, ये लोग एक प्रकार से भगवान् का रूप हैं, उन पर युगों का प्रभाव कुछ नहीं पड़ता। युगों का प्रभाव तो स्वर्गीय देवताओं पर भी नहीं पड़ता। युगों की कल्पना तो भूमण्डल पर ही है।

भूमण्डल में भी जम्बूद्वीप में ही, सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में भी नहीं केवल भरत खण्ड में ही इनकी कल्पना है। काल तो नित्य है, अछेद्य है, अविभाजित है। इसके भाग हो ही नहीं सकते। लोग अपने व्यवहार के लिये केवल कल्पना कर लेते हैं। हमारे यहाँ सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापर और कलियुग इन चारों युगों की कल्पना है। यह कलियुग इस कल्प का अट्ठाईसवाँ कलियुग है, इसी कल्प में ऐसे अट्ठाईस कलियुग बीत गये। जब ९९९७२ बार चारों युग और बीत जायँगे तब यह श्वेत वाराह कल्प अर्थात् ब्रह्माजी का एक दिन बीतेगा।"

इस अट्ठाईसवें कलियुग की गणना उसी दिन से की जाती है, जिस दिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इस धराधाम को त्याग कर अपने परमधाम को पधारे। उसके कुछ मास अधिक तीस वर्ष के पश्चात् राजा परीक्षित् को शृङ्गी ऋषि का शाप हुआ। तब उन्होंने भाद्रपद शुक्ला नवमी से भाद्रपद की पूर्णिमा तक भागवत की सप्ताह कथा सुनी। वही सप्ताह की जन्म-तिथि या जयन्ती मानी जाती है। महाराज परीक्षित् के सप्ताह के दो सौ वर्ष पश्चात् गोकर्ण जी ने आषाढ़ शुक्ला नवमी से आषाढ़ पूर्णिमा तक धुन्धुकारी के निमित्त और श्रावण शुक्ला नवमी से श्रावण की पूर्णिमा तक सब के निमित्त दो सप्ताह किये। इसके भी तीस वर्ष बीत जाने पर कार्तिक शुक्ला नवमी से कार्तिकी पूर्णिमा तक आनन्द क्षेत्र में, जिसे अब शुकताल भी कहते हैं, सनकादि महर्षियों ने नारदजी को कथा सुनाई। इस प्रकार नारदजी की सप्ताह भगवान् के स्वधाम पधारने के २६० वर्ष के अनन्तर हुई। इसीलिये यह कलियुग में सभी दोषों को मिटाने वाली मानी जाती है।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! इसीलिये मैं सभी भक्तों से सन्त-महन्तों से भगवद् भक्त वैष्णवों से बार-बार डंके की चोट

के साथ कह रहा हूँ इस कथा रूपी अमृत को पान करो, निरन्तर भागवती कथाओं को सुनो, फिर सुनो बारम्बार श्रवण करो। इससे सब पाप कट जाते हैं, समस्त विघ्न हट जाते हैं श्रीकृष्ण-चन्द्र हृदय में आकर डट जाते हैं श्यामसुन्दर शरीर से सट जाते हैं। भक्ति भगवती की दासी मुक्ति अनायास मिल जाती है, हृदय कमल की कली स्वयमेव खिल जाती है, और जितने भी साधन हैं, समस्त क्लेशकर हैं, भागवती कथा और भगवत् कीर्तन ये ही दो सुलभ सरल सहज साधन हैं। इस विषय का मैं एक दृष्टान्त सुनाता हूँ।"

एक बार यमदूतों ने देखा कोई पापी प्रेमपूर्वक सप्ताह सुन रहा है। यमदूत हाथ में गदा लेकर उस पापी को पाश मे बाँध कर पकड़ने पहुँचे, किन्तु देखा भगवान् का सुदर्शन चक्र उसकी रक्षा कर रहा है। यमदूत बड़े चकराये, उन्होंने सोचा—"हम तो इसे पकड़ने आये, किन्तु यह चक्र तो हमें जाने ही नहीं देता इसके पास तक। दूर से उन्हें विमान पर आते हुए विष्णुदूत दिखायी दिये। उन्होंने सुन रखा था, कि हमसे पहिले के दूत जब पापी अजामिल को लेने गये थे, तब इन्हीं दूतों ने उनकी बड़ी कुटाई की थी। कहीं ये लोग हम पर भी न टूट पड़ें, इसी डर से वे भागते-भागते यमराज के समीप आये।"

उन्हें हाँफते देखकर यमराज ने पूछा—"क्यों भाई! क्या बात है तुम इतने भयभीत और व्यग्र क्यों हो?"

यमदूतों ने कहा—"महाराज! हम एक पापी को लेने गये, किन्तु वह तो भागवत सप्ताह सुन रहा था। एक बड़े भारी प्रकाशमय चक्र ने हमें उस तक जाने भी नहीं दिया और चार शंख, चक्र, गदा और पद्म धारी देवता उसे लेने विमान पर आ रहे थे। अजामिल वाली घटना याद करके हम तो वहाँ से भाग आये। अब बताइये उसे लावें या नहीं।"

महा संकीर्तन के साथ सप्ताह समाप्त

यह सुनकर यमराज अपने आसन से उठे संकेत से दूतों को अपने पास बुलाया और एकान्त में ले गये। एकान्त में भी जाकर उनके कान में शनैः-शनैः कहने लगे—"देखो, सबके सम्मुख कहने की बात नहीं है, सब सुन लेंगे तो मेरे लोक में कोई आवेगा ही नहीं। इसीलिये मैं तुमसे परम गुप्त रहस्य की बात कहता हूँ। जो लोग प्रेम में विभोर होकर उन्मत्त चित्त से भागवती कथाओं को सुनते हों भगवन्नाम संकीर्तन करते हों उनके पास भूलकर भी मत जाना।"

दूतों ने कहा—"महाराज! आप तो प्राणिमात्र के स्वामी हैं, न्याय के लिये तो सभी को आपके सम्मुख लाना ही पड़ेगा।"

यमराज ने कहा—"अरे, तुम समझते नहीं। मैं सभी जीवों को दंड देने में समर्थ हूँ किन्तु जो भगवान् के भक्त हैं भगवान् की कथाओं को सुनते हैं भगवन्नाम संकीर्तन करते हैं उन वैष्णवों का मैं स्वामी नहीं उनकी तो चरणों की मैं धूलि भी नहीं हो सकता। वह विभाग मेरे विभाग से सर्वथा पृथक् है।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! यह सुनकर यमदूत चले गये। तब से जो भागवती कथाओं के श्रवण में उन्मत्त रहते हैं उनके समीप यम के दूत जाते तक नहीं। दूर से देखकर दंडवत् करके लौट आते हैं। इस असार संसार में विषय विष से व्याकुल व्यक्तियों के लिये भागवती कथा से बढ़कर विषहारी सुखकारी कल्याणकारी तथा चित्तहारी मनोहर दूसरी कोई भी ओषधि नहीं है। जहाँ कानों में यह कमनीय कथा घुसी नहीं तहाँ मुक्ति दौड़ी-दौड़ी चली आती है। जो इस भागवती कथा को प्रेमपूर्वक पढ़ता है स्मरण करता है, सुनता-सुनाता है, मनन करता है, दूसरों को समझाता है, इनकी व्याख्या करता है, ये सब वैकुण्ठ के अधिकारी हैं। श्री शुकदेवजी भ्रमर के समान हैं। जैसे पुष्प अच्छे होते हैं सुन्दर लगते हैं किन्तु वे मीठे नहीं होते। भ

उन सब फूलों से सार ला-लाकर मधु एकत्रित करता है। उस शहद को चखो तो परम मधुर होगा। इसी प्रकार सुन्दर सुगन्धित मनहर खिले हुए पुष्पों के समान ये सभी शास्त्र हैं उन सब शास्त्रों से सार-सार निकाल कर भागवत रूप मधुपिंड शुकदेवजी ने तैयार कर दिया है इसे खाओ कितना सुख मिलेगा, यह परम पवित्र शास्त्र है धन, धान्य, यश तथा परलोक में सुख देने वाला है। यह द्वादशस्कन्ध युक्त ग्रन्थ अनुपम तथा अत्यद्भुत है। इसीलिये विधिपूर्वक सुनने वाले और विधिपूर्वक संयम के साथ सुनाने वाला दोनों को ही परम पुण्य प्राप्त होता है उनके लिये सभी पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं मुक्ति तो उन्हें अनायास मिल जाती है। इस कथा से परम सन्तोष होता है अलौकिक आनन्द होता है। सभी दुःख छूट जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी के धाम पधारने के अनन्तर उनकी सोलह सहस्र एक सौ रानियाँ श्री उद्धवजी के मुख से एक महीने में श्रीमद्-भागवत् सुनकर परम सुखी हुई और फिर उन्हें श्रीकृष्ण-चन्द्र जनित विरह नहीं रही वे श्रीकृष्ण के नित्य संयोग सुख का अनुभव करने लगीं।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! आप यह कैसी अलौकिक बात कह रहे हैं। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जब स्वधाम पधारने वाले थे तथा उन्होंने उद्धव को अपनी चरणपादुका प्रदान करके बदरीवन जाने की आज्ञा दे दी थी वे प्रभास क्षेत्र में भगवान् के अंतिम दर्शन करके और दिव्य ज्ञान प्राप्त करके सीधे बदरिकाश्रम चले गये थे। वहीं सदा के लिये भगवान् की आज्ञा से बस गये।"

इधर भगवान् के स्वधामगमन के अनन्तर अर्जुन जी उनकी सोलह सहस्र एक सौ महिषियों को लेकर हस्तिनापुर जा रहे थे। मार्ग में भीलों ने उन्हें लूट लिया। स्त्रियों को लेकर भाग गये। हमने तो सुना उन दुष्टों ने उनकी बड़ी दुर्गति की। अब आप

कहते हैं। उन्होंने उद्धवजी से सप्ताह सुनी। कहाँ बदरीवन में उद्धवजी, कहाँ द्वारका के आस-पास दुर्गति में ग्रस्त वे महिषियाँ कैसे वे सब एकत्रित हुई कहाँ उन्हें उद्धवजी मिले। कृपा करके इस कथा को हमें अवश्य सुनाइये। इसे सुनने को हमें बड़ा कौतूहल हो रहा है। उद्धवजी श्रीमद्भागवत के आचार्य ही हैं। भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र जी के तीन ही तो यह शिष्य हैं। उद्धव, विदुर और मैत्रेय मुनि। उद्धवजी ने कृष्ण पत्नियों को कहाँ पर कथा सुनायी। कृपया इसे हमें बताकर हमारे कुतूहल को शान्त करें।"

सूतजी बोले—"महाराज ! जिनका सम्बन्ध साक्षात् श्रीकृष्ण से हुआ है, जिन्होंने स्वयं अपने शरीर से श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् की सेवा की है, उनकी दुर्गति कौन कर सकता है, वे दुर्गति से सदा के लिये दूर चली गयीं। भगवान् वांछा कल्पतरु हैं, अपने भक्तों की सभी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं। यह प्रसंग बड़ा ही अद्भुत है। इससे भगवान् की, भगवत् भक्तों की तथा भागवती कथा की महिमा समझी जायगी। मैं इस पुण्यप्रद आख्यान को आपको सुनाता हूँ, आप सब सावधान होकर श्रद्धा के साथ श्रवण करें।"

### छप्पय

### ( १ )

उद्धव काँस्य बजाय प्रेम में इत उत झूमें।
सब तन्मय ह्वै गये चहूँदिशि हरिके घूमें॥
कीर्तन सुनि हरि कहें—लेउ वर अब हम जामें।
भक्त कहें—सप्ताह होहि जहँ तहँ प्रभु आमें॥
एवमस्तु कहि हरि गये, मुनि इच्छा पूरन भई।
गये यथा रुचि लोक सब, कथा समापत ह्वै गई॥

( २ )

सूत कहें—सप्ताह महातम मुनिवर ! गायो ।
मासिक महिमा कहूँ कृष्ण महिषी सुख पायो ॥
रानी सोलह सहस कथा सुनिकें उद्धवतें ।
शोक, मोह, दुख छाँड़ि रहें आनन्दित तबतें ॥
शौनकजी शङ्का करी, कहँ उद्धव कहँ प्रिया हरि ।
ऊधो बदरीवन गये, गोप ले गये प्रियाहरि ॥

दो०—सूत कहें—शौनक सुनहु, कथा कहूँ हरि धन्य ।
करौं दुराव न अति रहस, तुम प्रभु भक्त अनन्य ॥

---

# परीक्षित् वज्रनाभ मिलन

## [ २६ ]

द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्गम्
सन्तान बीजं कुरुपाण्डवानाम् ।
जुगोप कुक्षिं गत आत्तचक्रो—
मातुश्च मे यः शरणं गतायाः ॥*
(श्रीभा० १० स्क० १ अ० ६ श्लोक)

### छप्पय

*प्रथम बन्दि गुरु चरन शरन नँद नन्दन जाऊँ ।*
*मासिक कथा महात्म्य भागवत सुखद सुनाऊँ ॥*
*परम धाम प्रभु गये सहस सोलह सौ रानी ।*
*रूप जथारथ आइ बसीं बजकी रजधानी ॥*
*छाया लूटी गोपगन, अन्त बिम्ब महँ मिलि गईं ।*
*उद्धवजी तैं कथा सुनि, परम कृतारथ ह्वै गईं ॥*

---

* महाराज परीक्षित् प्रार्थना कर रहे हैं—"मैं अपनी माता के गर्भ में था कौरव तथा पाण्डवों के वंश का एकमात्र बीज मैं ही शेष रह गया था। द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने मुझे ही लक्ष्य करके हमारे वंश को निर्बीज करने के निमित्त ब्रह्मास्त्र छोड़ा था उससे मेरा गर्भ में ही शरीर दग्ध हो रहा था। मेरी माता भगवान् की शरण गयीं, तब भगवान् ने स्वयं उदर में प्रवेश करके चक्र सुदर्शन से शरीर की रक्षा की। उन्हीं का चरित्र सुनाओ।"

पेट भर लेना दूसरी वस्तु है और स्वाद ले लेकर भोजन करना दूसरी वस्तु है। जो नाना संसारी कार्यों में फँसे रहते हैं वे किसी वस्तु का स्वाद नहीं ले सकते। कितनी भी सुन्दर वस्तु हो वे उसे जैसे-तैसे कण्ठ के नीचे उतार लेंगे। उससे पेट तो भरेगा ही जिह्वा तथा कण्ठ से स्पर्श होने के कारण यत् किंचित स्वाद भी आ जायगा। किन्तु यथार्थ और यथेष्ट स्वाद का वे अनुभव नहीं कर सकते। सुन्दर अधौटा दूध है। उसमें केशर, छोटी इलायची, जायफल, तुलसी, तनिक अदरक ये वस्तुएँ पड़ी हैं मिश्री मिली तनिक सुगन्ध भी पड़ी है। मोटी मलाई के भी टुकड़े हैं ऐसे दूध का भरा पात्र आया आप उठाकर पशु की भाँति पी गये एक स्वाँस में कण्ठ के नीचे उतार कर उदरस्थ कर गये, पेट तो भर ही जायगा गुण भी करेगा ही मिठास और सुगन्ध का भी कुछ अनुभव हुआ ही होगा किन्तु यथार्थ स्वाद तो तभी आता है जब ठहर-ठहरकर घूँट-घूँटकर पिये। चुसकी भर कर तनिक-तनिक देर मुख में रख-रखकर धीर गम्भीर भाव से स्वाद लेते हुए उसे कुछ समय में पान करें। एक साँस में न चढ़ा जायँ। जिसमें शीघ्रता करने को विवशता न हो स्वादपूर्वक पान करते ही रहें यह भी नहीं कि पी लिया फिर पात्र रख दिया फिर बातें करने लगे। स्मरण आया तो फिर एक घूँट ले लिया। इसमें भी व्यवधान पड़ने से शीतल तथा गतरस बन जायगा। अतः दूध को निरन्तर पीवे, शान्ति से शनैः-शनैः पीवे स्वाद ले लेकर पीवे, ठहर-ठहर कर पीवे, तब उससे तुष्टि-पुष्टि भूख निवृत्ति के साथ ही साथ स्वादु स्वादु पदे-पदे का भी अनुभव होगा।

यही बात कथा के सम्बन्ध में है। अब सात दिन में पूरी करनी है पंडितजी भी शीघ्रता कर रहे हैं अपना भी शरीर कृत्य पूरा नहीं हुआ समय हो गया बैठना ही है। इससे विधि पूरी तो हो जाती है, फल तो मिल ही जाता है, किन्तु कथा का स्वाद

नहीं आता, शंकाओं का समाधान नहीं होता, रस नहीं मिलता कथाओं में नूतनता नहीं आती, बार-बार, पूछ-पूछकर उसका रहस्य नहीं खुलता। इसके लिये शुकदेवजी को कोई बहुत खोजने पर भी दूसरा दृष्टान्त ही नहीं मिला उन्होंने राजा परीक्षित को एक ही दृष्टान्त दिया "स्त्रियां विटानामिव साधु वार्ता" जैसे कोई अत्यन्त अनुराग युक्त नायक है उसे अपनी नव नेहवती नायिका की बातों में प्रतिक्षण रस आता है उसके सम्बन्ध में जैसे खोद-खोद कर पूछता है। यही दशा उन भगवत् भक्तों की भी है जिन्होंने अपने मनको, वाणी को, तथा कानों को, कृष्णचन्द्र की कमनीय कथाओं में लगा दिया है। इसी-लिये कथा प्रेमी महानुभाव भागवती कथा को सात दिन में समाप्त करने का आग्रह न करके मासिक या पाक्षिक परायण की प्रशंसा करते हैं। इतने दिनों में उसी लगन से उसी उत्साह तथा उत्सवपूर्वक कथा सुनने में बड़ा सुख मिलता है।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! आपने मुझसे पूछा—"कि उद्धवजी ने श्रीकृष्ण महिषियों को भागवती कथा कहाँ सुनायी और कब सुनायी, सो मैं इसी का उत्तर दे रहा हूँ। उद्धवजी ने व्रज में-रस वृन्दावन में-भगवान् की सोलह सहस्र एक सौ रानियों को यह कथा सुनायी और तब सुनाई जब श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् अपने निज धाम को पधार गये थे और पृथ्वी पर महा-राज परीक्षित् सुख से धर्मपूर्वक राज्य करते थे, तब तक न तो उनको शाप ही हुआ था और न श्रीशुकदेवजी ने उन्हें सप्ताह भागवत ही सुनायी थी।" शौनकजी ने कहा—'सूतजी! यही तो हमारी शङ्का का प्रश्न है, भगवान् के परमधाम पधारने पर तो उद्धवजी बदरीवन चले गये और हमने महाभारत तथा दूसरे पुराण ग्रन्थों में ऐसा सुना है कि भगवान् के परमधाम पधारने पर जो उनकी आठ पटरानियाँ थीं, वे तो सती हो गयीं, शेष जो

सोलह सहस्र एक सौ वर्चा उन्हें अर्जुन हस्तिनापुर को लिये आ रहे थे, सो बीच में ही गोपों ने उन्हें लूट लिया और वे सब उन स्त्रियों को भी उठा ले गये। वे रोती चिल्लाती रहीं किन्तु किसी ने उनकी करुण पुकार पर ध्यान नहीं दिया, उन दुष्टों ने न जाने क्या उनकी दुर्गति की।"

अब आप कह रहे हो, कि उद्धवजी ने उन सबको व्रज में भागवती कथा सुनायी, सो इसकी सङ्गति कैसे बैठेगी, हमारी इसी शंका का पहिले समाधान करें, तब आगे की कथा कहें।"

यह सुनकर सूतजी गम्भीर हो गये और कुछ देर सोचकर बोले—"भगवन्! क्या आप विश्वास करते हैं, कि कल्याण के लिये कार्य करने वालों की या कल्याण के निमित्त किये जाने वाले कार्य की कभी दुर्गति हो सकती है? भगवान् के सजीव साकार चिन्मय विग्रह की बात तो कुछ देर के लिये छोड़ दीजिये। जो लोग अपने मन से—अपनी भावना से ही—भगवान् की एक मनोमयी मूर्ति बना लेते हैं, फिर उस मन गढंत मनोमयी मूर्ति की मानसिक पूजा करते हैं, मन से ही कल्पित जल से उन्हें स्नान कराते हैं, कल्पित ही पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, पुंगी-फल, तथा दक्षिणा आदि चढ़ाते हैं। मूर्ति भी कल्पित और पूजा के सब पदार्थ भी कल्पित फिर भी ऐसी पूजा करने वाले की भी कभी दुर्गति नहीं होती, उसे भी भगवान् अपना लोक देते हैं। तब आप स्वयं ही सोचिये जिन्होंने एक दो वर्ष नहीं ७०-८० वर्ष तक स्वयं साक्षात् सजीव आनन्दघनमूर्ति श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् की कल्पित नहीं—प्रत्यक्ष—सेवा की, कल्पित सामग्रियों से नहीं, प्रत्यक्ष उनके गङ्गा जल से पाद प्रक्षालन किये, सुगन्धित जल से हाथ धुलाये, दिव्य जल से आचमन कराया, महौषधियों तथा दिव्यौषधियों के जल से स्नान कराया, रेशमी वस्त्रों को, यज्ञो-पवीत को, स्वयं अपने हाथों से पहिनाया। कल्पवृक्षों के पुष्पों

को बनी मालाओं को स्वयं उन्हें पहिनाया। अपने करकमलों से घिसा हुआ चन्दन अपने करकमलों से स्वयं उनके श्रीमस्तक पर लगाया। दिव्य धूप स्वयं उनके आगे सुलगायी, केसर कस्तूरी मिश्रित कामधेनु के घृत से दिव्य दीपक जलाकर उनके सम्मुख रखा। नाना व्यञ्जन स्वयं बनाकर उन्हें प्रसाद पवाया। दिव्य मसालों से युक्त ताम्बूल स्वयं लगाकर अपने ही हाथ से उनके मुख में दिया, अधरामृत से सिक्त पान तथा प्रसादी पदार्थ स्वयं पाये, स्वयं अपने मस्तक को उनके चरणकमलों में रगड़ा ऐसी महिषियों की क्या कभी दुर्गति हो सकती है? भगवन्! असंभव, सर्वथा असम्भव, असत्य है, अनर्थ है तथा अनुपयुक्त है।"

भगवान् भक्तों की इच्छा का कभी आघात नहीं करते। भक्त के हृदय में वैसे तो कभी बुरी इच्छा उठती ही नहीं, यदि बुरी भी इच्छा भक्त के हृदय में कदाचित्–किसी कारण वश–किसी जन्म के संस्कार वश उठ जाय, तो भगवान् उसकी भी किसी-न-किसी रूप में पूर्ति कर देते हैं जो भगवान् का भक्त हो गया, जिसने अपना तन, मन, प्राण तथा सर्वस्व श्यामसुन्दर के अरुण वरण चरणारविन्दों में अर्पित कर दिया, उसका देह दिव्य बन जाता है, उसकी समस्त चेष्टायें दिव्य हो जाती हैं, कोई मलिन वासना रहे भी तो उसे स्वप्न शरीर से, छाया शरीर से भगवान् अनुभव कराके उस वासना का भी अन्त करा देते हैं, क्योंकि प्रारब्ध भोग, पूर्व की प्रबल वासनायें भोग के बिना क्षय होती नहीं। यह तो हुई भगवत् भक्तों की बात, किन्तु जो भगवान् की स्वयं साक्षात् शक्ति ही हैं, उन शक्तियों की छाया से भगवान् ऐसी-ऐसी करुण लीलायें दिखाते हैं, जिससे संसारी लोगों को बोध हो कि आपत्ति-विपत्ति सभी शरीरधारियों पर आती है, उसमें साहस को खोना नहीं चाहिये, धैर्य धारण करके उन कर्मानुसार आई हुई विपत्तियों को सह लेना चाहिये।

अब आप ही सोचिये, जगज्जननी, जनकनन्दिनी, भागवती सीता का स्पर्श करने की परदारारत राक्षस रावण की सामर्थ्य थी। वह उन्हें कामुक दृष्टि से देख सकता था, उनके श्रीअङ्ग को गोद में लेकर उड़ सकता था। उस महामाया के सङ्कल्प मात्र से उसके शरीर के सहस्रों खण्ड हो जाते। किन्तु वह उठाकर ले गया, ये जानकी थीं ही नहीं जगज्जननी जानकी की छाया मात्र थी। यथार्थ जानकी को तो मर्यादा पुरुषोत्तम ने अग्नि में स्थापित कर दिया था, ये जो सब लीलायें हुईं सब छाया जानकी के द्वारा हुईं।

हमने पुराणों में पढ़ा है, हमारे गुरुदेव भगवान् शुक को स्त्री पुरुष का भेद नहीं था। वे सदा सोलह वर्ष के युवा ही रहते हैं, नंगी स्त्री नहाती रहे या पुरुष नंगा फिरता रहे, उन्हें कुछ भी भान नहीं, फिर भी लिखा है, उनका विवाह हुआ उनके पुत्र हुए। शुकदेवजी की पुत्री के विवाह का वर्णन है, अब आप सोचें—"क्या परमहंस, चक्रचूड़ामणि, परमवीतराग जिन्हें अपने शरीर तक की सुधि नहीं वे विवाह कैसे करेंगे, उनके सन्तति कैसे सम्भव है, किन्तु भगवान् व्यास की इच्छा थी, मेरा वंश चले, इसीलिये शुकदेव ने अपनी छाया से ही एक ऐसे ही पुरुष को उत्पन्न कर दिया। उसका नाम छायाशुक हुआ। यह जो शुकदेवजी का विवाह और संतानों का जो वर्णन आता है, वह उसी 'छाया-शुक' का ही है। इसी प्रकार गोपगण द्वारका के मार्ग में जो श्रीकृष्ण की पत्नियों को लूट ले गये वे वास्तव में वे नहीं थीं, उनकी छायायें थीं। जैसे सूर्य की पत्नी मूर्ति अपनी छाया छोड़ गयी थी, सूर्यदेव उसे ही अपनी पत्नी माने बैठे थे, उससे भी तीन सन्तानें हुईं'।

पूर्वजन्म में कोई वासना रह जाती है या भगवान् कोई लीला करना चाहते हैं यह सब छाया से ही होता है, यह सब

छाया की माया है। माया का भी तो यही अर्थ है, जो वास्तव में हो नहीं पर यथार्थ-सी प्रतीत हो। ये जो भगवान की सोलह सहस्र एक सौ पत्नियाँ थीं, ये पूर्वजन्म में अप्सरायें थीं, इन्द्र ने नर-नारायण ऋषि की तपस्या भंग कराने के निमित्त इन सबको भेजा था। ये गणना में सब सोलह सहस्र एक सौ थीं। भगवान् को मोहित न कर सकीं, अपने कामुक हाव-भाव कटाक्षों द्वारा उनके मन में विकार उत्पन्न न कर सकीं। इससे इन्हें लज्जा भी लगी, भय भी। ऐसा न हो भगवान हमें शाप दे दें। किन्तु भगवान् ने तो काम को भी जीत लिया था और क्रोध को भी। वे हँस पड़े। तब इनका साहस बढ़ा। इतने देर तक काम की सङ्कल्प पूर्वक चेष्टायें करते-करते इनके रोम-रोम में काम व्याप्त हो गया था। भगवान ने इन्हें प्रसन्न करने को कहा—"मैं तुम्हारे ऊपर क्रुद्ध नहीं हुआ हूँ, तुम मुझसे भय मत करो। यही नहीं, मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिये तुम्हें वरदान भी देना चाहता हूँ, तुम जो चाहो मुझसे वर माँग लो।"

तब इन्होंने साहस करके कहा—"महाराज! आप हमें वर देना चाहते हैं, तो काम का ही वर दीजिये, आप हमारे पति हो जाइये।"

भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है, किन्तु अब तो मैंने तपस्वी का वेष बना रखा है, इस वेष से ऐसा करना तो मर्यादा के-धर्म के-विरुद्ध है। मैं धर्म का ही स्वरूप हूँ। अगले जन्म में तुम मुझे पति रूप में वरण करोगी।"

वे ही अप्सरायें पृथ्वी के भिन्न-भिन्न राजाओं के यहाँ पुत्री रूप में पैदा हुईं। उन्हें भौमासुर अपहरण करके ले गया। पीछे भगवान् उसे मारकर इन्हें अपने यहाँ ले आये। अपनी पत्नी रूप में वरण कर लिया, तब ये भगवान की दिव्य शक्तियाँ बन गयीं। कोई अप्सरा शरीर की वासना शेष रही होगी उसके

लिये भगवान् ने छाया रूप से यह लीला की होगी। वैसे यथार्थ रूप से तो उन्होंने इन सबको पहिले ही ब्रज मंडल में भेज दिया था, क्योंकि भगवान् का ब्रज ही तो परम धाम है, वही तो काष्ठा है। वही फल भूमि है। वहीं उद्धवजी ने इनको भागवती कथा सुनायी।

यही बात उद्धवजी की भी है। भगवान् ने जब उद्धवजी को गोपियों के लिये संदेश देकर ब्रज भेजा, तो वहाँ जाकर उन्होंने गोपियों का श्रीकृष्ण भगवान् के प्रति अनन्य प्रेम देखा, वे उनकी महाभाव रूढ़ महाभाव, मादन, मोहन आदि प्रेम की दशाओं को देखकर अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने गोपियों को अपना प्रेम का गुरु मान लिया और भगवान् से यही प्रार्थना की— "प्रभो! मेरी यही आपके चरणों में भीख है, कि मैं इस ब्रज भूमि में कहीं लता गुल्म बनकर निरन्तर वास करूँ, जिससे इन महाभावा गोपियों की चरण धूल उड़-उड़कर मेरे ऊपर पड़े।" अपने अनन्य भक्त उद्धव की यह इच्छा तो भगवान् को पूर्ण करनी ही थी। भगवान् तो वांछा कल्पतरु हैं। वे तो जो एक बार केवल प्रणाम ही करता है उसी की समस्त इच्छाओं को पूर्ण करते हैं। अतः उद्धवजी को लता गुल्म के रूप में ब्रज में वास दिया। साथ ही उन्हें अपने पाने के साधन का भी प्रचार-प्रसार करना था, इसलिये एक रूप से साधन दिखाने की भावना से अपनी चरण पादुका देकर बदरीवन भेजा।

यही बात भगवान् के सवन्ध में है। भगवान् की छाया है उद्धवजी। छाया तो यथार्थ रूप की ही होती है और वह यथार्थ से पृथक् भी नहीं रहती। यथार्थ-सी ही दीखती है उद्धव जी का रूप, रंग, आकृति, प्रकृति, स्वभाव, व्यवहार, चलन, चितवन, उठन, बोलन, पहराव-उढ़ाव तथा अन्य सभी चेष्टायें श्यामसुन्दर की-सी ही थीं। ये श्यामसुन्दर की ही छाया के रूप

में थे। चैतन्य आनन्द घन की छाया भी चैतन्य आनन्द घन ही है। तभी तो भगवान् ने अपने श्रीमुख से स्वयं कहा है—"उद्धव मुझसे ज्ञान में तनिक भी कम नहीं है, मेरे सदृश ही है।" अतः अपनी छाया रूप से वे बदरीवन में निवास करने लगे और अब भी वे चतुर्भुज भगवत् रूप में विराजमान हैं। उन्हें उद्धव मूर्ति या उत्सव मूर्ति कहते हैं। उद्धव और उत्सव एक ही बात है। उत्सव भगवान् का उद्धव रूप ही है। जहाँ उत्सव होता है वहाँ भगवान् प्रकट हो जाते हैं। इसीलिये भगवान् ने अपना उत्सव रूप उद्धवजी को अर्पित कर दिया है। सभी बड़े-बड़े मन्दिरों में भगवान् के दो श्रीविग्रह होते हैं, एक तो अचल भगवान् की बड़ी मूर्ति एक छोटी उद्धव मूर्ति या उत्सव मूर्ति, वह भगवान् के ही समान मूर्ति होती है। जब कोई उत्सव होता है। तो उन्हीं उद्धव मूर्ति को बाहर ले जाते हैं। जहाँ भी कोई उत्सव होता है वह उद्धव का ही रूप है—"भगवान् की ही छाया, प्रेम से समारोह पूर्वक एक मन के भक्तों के द्वारा उत्सव होता है, तो किसी-किसी को भगवान् का प्रत्यक्ष दर्शन भी हो जाता है। इसीलिये ब्रज में जहाँ उद्धवजी लता गुल्म रूप में रहते हैं—वहाँ उत्सव करने से उद्धवजी साक्षात् रूप से प्रकट हो गये और उन्होंने श्रीकृष्ण महिषियों को मासिक रूप में श्रीमद्भागवत की कथा सुनायी।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! यह तो आपने हमारी शंकाओं का बड़ा सुन्दर समाधान किया। किन्तु महाभाग! हमने तो श्रीमद्भागवत का सप्ताह ही सुना था। क्या इसका मासिक पारायण भी होता है क्या?"

सूतजी ने कहा—"क्यों नहीं महाराज! मासिक भी होता है ऋतु पारायण भी होता है। अयन पारायण भी होता है। वर्ष पारायण भी होता है। पाक्षिक साप्ताहिक सभी पारायण होते हैं।

पहिले तो उद्धवजी ने मासिक ही सुनाया था, साप्ताहिक पारायण की प्रथा तो इसलिये चल गयी कि महाराज परीक्षित् के जीवन की अवधि सात ही दिन की रह गयी थी। इससे शीघ्रता के कारण सात दिन में ही समाप्त करनी पड़ी। वैसे है तो यह विधि अनादि ही।"

शौनकजी ने कहा—"हाँ, तो सूतजी! उद्धवजी ने किस प्रकार कहाँ पर श्रीकृष्ण महिषियों को श्रीमद्भागवत का मासिक पारायण सुनाया, कृपया इस कथा को हमें विस्तार से सुनाइये।"

सूतजी ने कहा—"अच्छी बात है, भगवन्! मैं इस पुण्य प्रसंग को आप सबके सम्मुख सुनाता हूँ, आशा है आप इसे प्रेमपूर्वक सुनेंगे। भगवान् नन्दनन्दन के पाद पद्मों में प्रणाम करके इस दिव्य कथानक को आरम्भ करता हूँ।"

भगवान् स्वधाम पधार गये, अर्जुन शेष सब लोगों को साथ लेकर हस्तिनापुर चले आये। यदुवंश में श्रीकृष्णचन्द्र के वंश में स्त्रियों को छोड़कर पुरुषों में एक वज्र ही शेष रह गये थे। धर्मराज ने जब भगवान् के स्वधाम का समाचार सुना तो वे महाराज परीक्षित् को हस्तिनापुर के राज्य सिंहासन पर बिठाकर तथा वज्र को ब्रज मंडल का राजा बनाकर महायात्रा के लिये हिमालय की ओर चले गये और स्वर्गारोहण में जाकर स्वर्गगामी हुए। इधर महाराज परीक्षित् धर्मपूर्वक सम्पूर्ण भूमंडल का राज्य करने लगे।

एक दिन उन्होंने सोचा—"चलो, ब्रज मंडल में चलकर देखें वज्र कैसे राज्य करता है, आनन्द कन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के लीला स्थलों के दर्शन भी करेंगे और वज्र से तथा उनकी दादियों से भी मिल आवेंगे। यह सोचकर वे साधारण सेवकों के सहित ब्रज मंडल की ओर चल दिये।"

वज्रनाभ भगवान् के प्रपौत्र थे। और परीक्षित् पांडवों के

पौत्र, इस नाते से परीक्षित इनके चाचा लगे। जब वज्रनाभ ने सुना मेरे पिता के तुल्य परम पूजनीय महाराज परीक्षित् मुझसे मिलने आ रहे हैं। तो उन्हें अत्यन्त ही हर्ष हुआ, वे अपने मंत्री तथा सेवकों के सहित नगर से बाहर जाकर उनसे मिले। प्रेम भरित हृदय से उन्होंने अपनी मोटी-मोटी लाल हथेलियों से महाराज परीक्षित् के चरण पकड़े और किरीट मुकुट से युक्त अपना मस्तक उनके चरणों में रख दिया। महाराज परीक्षित् ने भी अत्यन्त ही स्नेह के साथ वज्रनाभ को उठाकर अपनी छाती से चिपटा लिया और आँखों में प्रेमाश्रु भरकर उनका शिर सूँघा।

महाराज परीक्षित् ने भगवान् की गोद में ही बैठकर अपना बाल्यकाल व्यतीत किया था। भगवान् इन्हें बहुत ही अधिक प्यार करते थे। इनका भी चकोर के सदृश चञ्चल चित्त चन्द्र के सदृश प्रकाशमान सुखद शीतल सुन्दर आनन्दघन श्रीकृष्णचन्द्र के चारु आनन में नित्य निरन्तर रमता रहता था। आज उनके प्रपौत्र को देखकर उन्हें भगवान् की छटा स्मरण हो आई। वे प्रेम में विभोर होकर बार-बार वज्र का आलिंगन करने लगे और ऐसा अनुभव करने लगे मानों मैं भगवान् से ही लिपट रहा हूँ।

वज्रनाभ इन्हें अत्यन्त ही सत्कार और सम्मान के सहित अपने घर ले आये। महलों में आते ही महाराज परीक्षित् ने कहा—"वज्र! मुझे तुम मेरी दादियों से समीप ले चलो, मैं उनके चरणों में प्रणाम करूँगा।"

यह सुनकर वज्रनाभ उन्हें अन्तःपुर में ले गये। वहाँ उन्होंने देखा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी की वे प्रेयसी भगवान् के वियोग के कारण, अत्यन्त ही उदास मन से समय बिता रही हैं। कष्ट के साथ कालयापन कर रही हैं। महाराज परीक्षित् ने

जाकर उन सबके पैर छुए, प्रणाम किया और उनके समीप बैठ गये।

परीक्षित् ने पूछा—"माताओ! आप सब प्रसन्न तो हैं ?"
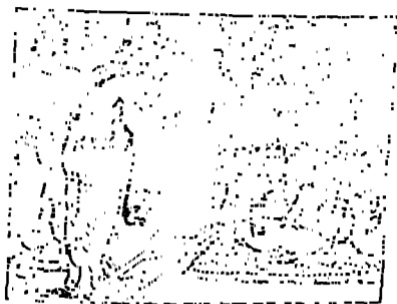
सबकी ओर से रोहिणी देवी ने कहा—"बेटा! प्रसन्नता तो भगवान् के साथ ही साथ चली गयी। अब तो जिस किसी प्रकार समय पूरा कर रही हैं हम सब।"

वज्रनाभ ने कहा—चाचाजी! ये हमारी सभी दादियाँ सदा उदास ही बनी रहती हैं, मैं बहुत सोचता हूँ, इनकी कुछ सेवा करूँ, किन्तु कर नहीं सकता।"

महाराज परीक्षित् ने कहा—"वज्र! देखो, भैया! मैं तो तुम से बहुत दूर हूँ, नहीं तो जैसी ही ये तुम्हारी पूजनीया तथा माननीया हैं, उससे भी अधिक मेरी पूजनीया हैं। भगवान् श्याम सुन्दर हमारे सगे सम्बन्धी थे, सो तो थे ही वे तो हमारे कुल

देवता भी हैं। हमारे कुल का उद्धार तो उन्होंने ही किया है, वे कृपा न करते तो मेरे सब पितामह बच थोड़े ही सकते थे मेरे दूसरे दुर्योधनादि पितामह तो उन्हें सब प्रकार से मरवाने के लिये तुले हुए थे। उन्होंने उन्हें मरवा डालने के बहुत प्रयत्न किये, किन्तु श्यामसुन्दर ने ही उन्हें प्रत्येक स्थान से बचा लिया। वे सब समय उनकी रक्षा में तत्पर रहते थे। इसी प्रकार मेरे पिता को भी पालन-पोषण द्वारका में ही हुआ। भगवान् की गोदी में ही वे बड़े हुए। मेरे तो वे पिता, माता, भाई, गुरु,रक्षक, देवता, इष्ट, प्रभु तथा सर्वस्व वे ही थे। जब मैं माता के उदर में था,तभी गुरु पुत्र अश्वत्थामा ने मुझे मारने के उद्देश्य से कभी भी निष्फल न होने वाले ब्रह्मास्त्र को छोड़ा था जिससे मैं तो मर ही गया था, किन्तु श्यामसुन्दर ने मेरी माता के उदर में घुसकर चक्र सुदर्शन से मेरी रक्षा की। इसलिये मेरे तो वे जीवनदाता ही हैं। उनके उपकारों का बदला मैं सहस्रों जन्मों में भी नहीं चुका सकता। तुम मेरे पुत्र के समान हो। तुम्हारा समस्त उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है। देखो राजा के मुख्य तीन कर्तव्य हैं। प्रजा का पुत्र के समान पालन करना, राजकोष को बढ़ाना और उसकी रक्षा करना तथा सेना को सुसज्जित तथा प्रसन्न रखकर बाहरी शत्रु राजाओं से राज्य की रक्षा करना। तो तुम कोष की तो चिन्ता करो ही नहीं जिस समय जितने भी धन की आवश्यकता होगी सब हस्तिनापुर से आ जायगा। रही शत्रुओं से राज्य की रक्षा की बात सो उसकी भी तुम्हें कोई चिंता नहीं। वैसे तो अपना कोई शत्रु रहा भी नहीं कोई सिर उठावेगा भी तो उसके लिये तो मैं हूँ ही। तुम उस ओर से सर्वथा निश्चिन्त रहो। तुम्हारा तो एक ही कार्य है सर्वात्मभाव से इन माताओं की रक्षा करना इन्हें तुम जैसे भी प्रसन्न रख सको वैसे रखो। इसके अतिरिक्त तुम

जो भी चिन्ता हो जो भी क्लेश हो मुझे बताना। उस सबका प्रबन्ध मैं करूँगा।"

वज्रनाभ ने कहा—"बाबाजी! इस सबका तो मुझे भरोसा ही है जब तक मेरे सिर पर आप बैठे हैं मुझे चिन्ता करने की आवश्यकता ही क्या है। रही शत्रुओं से भय की बात सो मैं भी तो क्षत्रिय ही हूँ मैंने दादाजी (आपके पिताजी) से विधि-पूर्वक धनुर्वेद की शिक्षा पायी है उनका शिष्य होने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उनका शिष्य कहाकर क्या मैं रण से पीछे हट सकता हूँ या शत्रु से भयभीत हो सकता हूँ। आपका वरद हस्त मेरे मस्तक पर सदा बना रहे यही मेरी आकांक्षा है। इन माताओं की सेवा की चेष्टा मैं सदा करता रहता हूँ, किन्तु ये मुझसे कोई सेवा लेती ही नहीं। केवल यमुना स्नान के निमित्त जाती हैं। नहीं तो दिन भर यहीं महलों में बैठी आँसू बहाती रहती हैं मेरी समझ में कुछ आता नहीं फिर आप जैसी आज्ञा देंगे वैसा करूँगा।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! वज्रनाभजी की ऐसी विनय-युक्त क्षत्रियोचित वाणी सुनकर महाराज परीक्षित् परम प्रसन्न हुए। तभी श्रीकृष्ण पत्नियों ने कहा—"बेटा! अब जाकर कुछ विश्राम करो इतनी दूर से आये हो थके होगे।" यह सुनकर महाराज परीक्षित् ने पुनः सबके चरणों में प्रणाम किया और वे वज्रनाभजी के साथ अपने निवास स्थान पर चले गये। अब जैसे वज्रनाभजी ब्रज के सम्बन्ध में प्रश्न करेंगे और उसका उत्तर महर्षि शांडिल्य देंगे उस कथा प्रसंग को मैं आगे कहूँगा। आप सब समाहित चित्त से इस रहस्यमय अत्यद्भुत प्रसंग को श्रवण की कृपा करें।"

### छप्पय

गये श्याम निज धाम परीक्षित् हस्तिनापुर में ।
बने व्रजेश्वर वज्र उठी उतकण्ठा उर में ॥
दोउ मज में मिले वज्र अति स्वागत कीन्हों ।
पूजित है उपदेश वज्र कूँ भूपति दीन्हों ॥
राज, कोष, गृह, अरिदमन, चिन्ता सब मन तैं तजो ।
दादी सोलह सहस जो, सेवा करि इनकूँ भजो ॥

# ब्रज भूमि रहस्य

[ २७ ]

वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिम्

यद् देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ।

गोविन्दवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यम्

प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥*

(श्री भा० १० स्क० २१ अ० १० श्लो०)

छप्पय

*आयसु सिर धरि वज्र कहें—हौं ब्रज को राजा ।*
*किन्तु यहाँ बन विकट न दीखत प्रजा समाजा ॥*
*शंका मेटन हेतु नृपति शांडिल्य बुलाये ।*
*आइ प्रश्न सुनि सुन्यो प्रेम तें बचन सुनाये ॥*
*ब्रज और ब्रज भेद नहिं, रमन राधिका संग करें ।*
*आप्तकाम प्रभु आत्मरत, ब्रज क्रीड़ा हित तनु धरें ॥*

---

* ब्रज भूमि में बैठी व्रजाङ्गनायें बात कर रही हैं, एक कहती है—"हे सखि ! यह जो वृन्दावन है, यह समस्त लोक की कीर्ति को ब्रह्मांड में फैला रहा है। इसके भाग्य तो देखिये। इसे देवकीनन्दन के चरण चिन्हों के पड़ने से कैसी शोभा प्राप्त हो गयी है। घघर घर घरके जब गिरधर वेणु बजाते हैं तो मयूर उन्हें श्याम मेघ समझकर नाचने लगते हैं, उन्हें देखने को गोवर्धन पर्वत पर विचरने वाले सभी जीव-जन्तु निश्चेष्ट होकर चुप चाप खड़े के खड़े ही रह जाते हैं।"

भगवान् का नाम, उनका अपना धाम उनकी लीला और उन अरूप का रूप से ये सब एक ही वस्तु है। क्रीड़ा करने को जब भगवान् की इच्छा होती है, तो अपने चार व्यूह बनाकर चारों में अपने दिव्य तेज प्रकाश करके निज जनों के साथ प्रभु क्रीड़ा करते हैं। प्राणी उनके मनोविनोद के उपकरण मात्र हैं; जिन्हें वरण कर लें-अपना लें-उन्हें अपने लोक में ले जायँ, जिन्हें न करें वे यहाँ चौरासी के चक्कर में घूमते रहें। जिससे भी उनका संसर्ग सम्पर्क हुआ चाहे वह मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्ष, लता, गुल्म, वीरुध-पर्वत, नद, नदी, भूमि अथवा जल स्थल और गगन चारी कोई भी क्यों न हो वही कृतार्थ हो जाता है। इसमें कब किसकी पारी आती है। इसे उनके बिना कोई दूसरा जान नहीं सकता। परिश्रम करने पर भी पहिचान नहीं सकता अतः सर्वात्मभाव से उन्हीं की शरण में जाना इसी का नाम पुरुषार्थ है, इसी के लिये जीव नाना योनियों में भटक रहा है। किंतु अपनी क्रीड़ा में तन्मय हुए श्यामसुन्दर अपनी लीला में लगे लीलाधारी श्याम-बिहारी गिरवरधारी देख नहीं रहे हैं, कभी तो देखेंगे, कभी तो निहारेंगे. कभी तो कटाक्ष की कोर करेंगे, उसी की प्रतीक्षा है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! महाराज परीक्षित् सुखपूर्वक वज्रनाभ का आतिथ्य स्वीकार करते हुए व्रज में रह गये।"

एक दिन उन्होंने कहा—"चाचाजी! मुझे एक शंका है, मैं उसी की चिन्ता निरन्तर करता रहता हूँ, आज्ञा हो तो आपके सम्मुख अपनी शंका रखूँ?"

महाराज परीक्षित् ने परम प्रेम युक्त वाणी से वज्रनाभ को पुचकारते हुए और उनके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"हाँ, कहो बेटे! तुम मुझसे भी अपनी शंका न कहोगे तो और किससे कहोगे। बताओ तुम्हें क्या शंका है?"

वज्र ने कहा—"महाराज ! आप लोगों ने मुझे मथुरा मंडल का राजा बना दिया है। इस पुण्य प्रदेश के राज्य सिंहासन पर मेरा विधिवत् अभिषेक हुआ है, किन्तु मैं वास्तव में अपने घर का ही राजा हूँ, जैसे किसी का नाम राजा रख दिया जाय, उसी प्रकार का राजा हूँ।"

महाराज परीक्षित् ने कहा—"मैं तुम्हारा अभिप्राय समझा नहीं। स्पष्ट करके बताओ।"

वज्रनाभ ने कहा—"महाराज ! और क्या स्पष्ट करूँ। किसी स्त्री से कह दो तुम सौभाग्यवती हो, किन्तु उसके पति न हो, किसी नेता से कहो तुम बड़े योग्य नेता हो, किन्तु उसका एक भी अनुयायी न हो, किसी व्यक्ति से कहो तुम एक अक्षौहिणी सेना के अध्यक्ष बनाये गये, किन्तु उसके पास एक भी सैनिक न हो। ऐसा ही मैं भी राजा हूँ। राजा तो प्रजा का ही होता है, किन्तु मैं देखता हूँ चौरासी कोस के व्रज मण्डल में एक भी मनुष्य नहीं, गाँव नहीं नगर नहीं। जिधर देखो उधर ही घोर वन ही वन दिखायी देता है वन भी किसी सुन्दर फल वाले वृक्षों का नहीं। सर्वत्र करील, हिंस, बबूर छौकरा तथा और भी ऐसे ही काँटेदार वृक्ष हैं। पीलू के वृक्षों की भर मार है। हिंस और करीला ऐसे सघन हो गये हैं, कि उनके बीच से मनुष्य जा नहीं सकता। बीच-बीच में जलाशय है। कहीं-कहीं जल के कुंड भरे हैं। छोटा-सा गोवर्धन पर्वत है। वह भी इन कंटकाकीर्ण झाड़ियों से ढँका है, यमुनाजी हैं इनके ही कारण व्रज प्रतीत होता है, मैं तो चारों ओर घूमा एक भी स्त्री-पुरुष दिखायी नहीं दिया। मथुरा कहाँ है वृन्दावन कहाँ है। ताल वन, खदिरवन, कदँब खण्डी इन स्थानों का कुछ भी पता नहीं। भगवान् की लीला स्थलियों का कोई चिन्ह नहीं। कोई मनुष्य मिले तो उससे पूछा भी जाय। किन्तु आपने जितने लोग मेरे साथ कर दिये थे वे ही

सब हैं; यहाँ एकान्त अरण्य में अकेले पड़े चैन की वंशी बजा रहे हैं। अपने ही राजा हैं, स्वयं ही प्रजा हैं। मैं जानना यह चाहता हूँ कि यहाँ की प्रजा गई कहाँ। हम तो सुनते थे मथुरा की शोभा अनुपम है इतनी विस्तृत नगरी है। बड़े चौड़े राज पथ हैं। यहाँ की प्रजा हृष्ट-पुष्ट और सभी सुख सामग्री से युक्त है। यह सब प्रजा चली कहाँ गयी। उनके वंशज भी तो रहे होंगे। ये सब के सब क्या हुए।"

वज्रनाभ की ऐसी बात सुनकर महाराज परीक्षित् ने कहा—"बेटा! तुमने यह बड़ी विचित्र बात बताई मुझे भी बड़ा आश्चर्य हो रहा है। यहाँ कोई प्राचीन ऋषि-मुनि तो होंगे उनसे ही पूछा जाय।"

वज्र ने कहा—"महाराज मुझे तो किसी भी ऋषि-मुनि का पता नहीं। हमारे कुल के पुरोहित गर्गजी बताये जाते हैं उनके भी मुझे दर्शन नहीं हुए। सुना ऐसा जाता है कि कहीं घोर वन के बीच में नन्दादि गोपों के कुल पुरोहित महर्षि शांडिल्य निवास करते हैं उनसे भी मेरी आज तक भेंट नहीं हुई।"

महाराज परीक्षित् ने कहा—"उन्हीं को किसी प्रकार खोज-कर बुलाया जाय।" यह कहकर उन्होंने दूतों के सहित अपने मन्त्री को महर्षि का पता लगाने और उन्हें सादर लिवा लाने को भेजा। मन्त्री ने वन में जाकर खोज की। संयोग से उन्हें शाण्डिल्य महामुनि की कुटिया मिल गयी। उन्होंने निवेदन किया—"प्रभो! सम्राट परीक्षित् पधारे हैं वे आपका राजमहल में दर्शन चाहते हैं।"

महाराज परीक्षित् का आगमन सुनकर महर्षि शांडिल्य परम प्रमुदित हुए उन्होंने कहा—"पाण्डवों के यश को बढ़ाने वाले परम भगवत् भक्त धर्मात्मा महाराज परीक्षित् के आगमन से मुझे बड़ी प्रसन्नता है। कोई तो बड़े-बड़े साधन करके तब भग-

वत् कृपा प्राप्त करता है उन महाभाग ने तो माता के गर्भ में ही भगवत् साक्षात्कार किया था। चलो मैं उनसे अवश्य मिलूँगा।" यह कहकर मुनिवर शांडिल्य मन्त्री के साथ राजमहल की ओर चल दिये।

महामुनि का आगमन सुनकर दोनों नरपति उन्हें लेने द्वार तक गये तथा उनकी विधिवत् पूजा करके एक सुन्दर श्रेष्ठ उच्चासन पर उन्हें बिठाया।

महर्षि जब वज्रनाभ और परीक्षित् द्वारा की हुई पूजा को स्वीकार करके सुखपूर्वक बैठ गये तो राजा ने उनसे तप की,

आश्रम के वृक्षों की कुशल पूछी तथा मुनि ने भी दोनों महाराजों के भृत्य, आमात्य, कोप, परिवार तथा प्रजाजनों की कुशल पूछी। दोनों ओर से कुशल प्रश्न पूछने के अनन्तर महाराज परीक्षित् ने कहा—"भगवन्! आपने हम दोनों की प्रजा की

कुशल पूछी। मेरी प्रजा तो आपके आशीर्वाद से कुशलपूर्वक है ही किन्तु ये वज्रनाभ कहते हैं—"मेरी तो कोई प्रजा ही नहीं ब्रजमंडल में कोई मनुष्य ही नहीं। सर्वत्र घोर वन ही वन है। मेरी और इनकी शंका यही है कि ब्रजमंल की सम्पूर्ण प्रजा कहाँ चली गयी ? भगवान् के स्वधाम पधारने के कारण सम्पूर्ण ब्रजमंडल जन शून्य क्यों बन गया ?"

इस प्रश्न को सुनते ही महामुनि शांडिल्य गम्भीर हो गये और कुछ देर मौन रह कर उन्होंने कहना आरम्भ किया—"राजन्! महाराज वज्रनाभ का प्रश्न बड़ा ही गम्भीर है इसे मैं तनिक विस्तार के साथ समझाऊँगा आप लोगों को सुनने का सावकाश है न ?"

महाराज परीक्षित् ने कहा—"ब्रह्मन्! यह हमारा बड़ा सौभाग्य है कि यहाँ ब्रजमंडल में आकर आपके दर्शन हुए। आप महाभाग! ब्रजराज श्रीनन्दजी के कुल पुरोहित हैं ब्रज के प्रत्यक्ष देवता हैं। ब्रजमंडल के रहस्य के सम्बन्ध में सुनाने के लिये आपसे प्रामाणिक पुरुष हमें और कहाँ मिलेगा। आप जितने ही विस्तार से इस कथा को सुनावेंगे उतने ही हम लोग प्रसन्न होंगे।"

शांडिल्य मुनि बोले—"पहिले तो तुम लोग ब्रज शब्द का अर्थ समझो। यह शब्द संस्कृत ब्रज् गतौ धातु से बना है वह धातु गति या व्याप्ति अर्थ में प्रयोग की जाती है। ब्रज्यते यत् तद् ब्रज अर्थात् जो व्यापक हो, सर्वत्र समान रूप से व्याप्त हो उसका नाम है ब्रज। सर्वत्र व्यापक तो तीनों गुण से रहित परब्रह्म ही है। इसलिये उसे ब्रज, ब्रह्म अथवा परब्रह्म कहते हैं।"

वज्र ने पूछा—"भगवान्! उस ब्रज या ब्रह्म का स्वरूप क्या है।"

शांडिल्य मुनि बोले—"राजन्! स्वरूप तो उसका कोई है ही

नहीं। उसे तो वाणी और मन का विषय न होने से-अवाङ्मानस गोचर कहा है। फिर वेद विद लोग उसे चैतन्य घन और आनन्द में ही स्थित रहने से सदानन्द स्वरूप कहते हैं उसमें तम अथवा अन्धकार का लेश भी न होने से परम ज्योतिर्मय भी उसकी संज्ञा है उसकी न उत्पत्ति है न विनाश है त्रिकाल मे एक रस रहने से वह अविनाशी भी कहा गया है। जीवन्मुक्त योगीजन उसी में रमण करते हैं, सदा सर्वदा उसी में रहते हैं। वही ब्रह्म जब धाम रूप में परिणित हो जाता है तो उसी की संज्ञा ब्रज हो जाती है। उसी ब्रज में परब्रह्म स्वरूप नन्दनन्दन आनन्द घन यशोदानन्दवर्धन श्रीकृष्णचन्द्र का निवास है अर्थात् धाम रूप में भी वे ही हैं और साक्षात् आनन्द रूप से भी वे ही हैं। श्रीकृष्णचन्द्र के अंग उपांग में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं जिसमें तनिक-सी भी जड़ता का अंश हो। वस्त्र आभूषण शृङ्ग वेणु लकुट तथा अन्य भी जो वस्तुएँ भगवान् के कार्य में आती हैं सभी सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। जैसे चीनी के चैतन्य पुतले के जितने भी उपकरण हों वे सब चीनी से ही निर्मित हों। वहाँ सच्चिदानन्द के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। श्रीकृष्ण का दूसरा नाम है आत्माराम।"

वज्र ने पूछा—"आत्माराम का अर्थ क्या है ?"

शांडिल्य मुनि बोले—"राजन् ! शब्द का अर्थ तो बुद्धि और वाणी का विषय है वे सच्चिदानन्द स्वरूप आत्माराम श्रीकृष्ण तो मन वाणी तथा बुद्धि आदि इन्द्रियों का विषय है नहीं। अतः शब्दों द्वारा उनकी अभिव्यक्ति असम्भव ही है। उसका तो प्रेम रस में सराबोर मधुर रस के उपासक श्रीकृष्ण के कृपापात्र रसिक जन ही अनुभव कर सकते हैं। तथापि आत्मा-राम का अर्थ है जो आत्मा से रमण करे आत्मा के साथ क्रीड़ा करे, अपनी आत्मा के साथ ही घुला मिला रहे।

श्रीकृष्ण की आत्मा हैं श्री राधिकाजी। राधाजी के साथ रमण करने के ही कारण ये राधारमण कहलाते हैं। राधारमण कहो आत्माराम कहो दोनों का एक ही अर्थ है। उस ब्रज की तथा ब्रजेश्वर की अधीश्वरी हैं श्रीराधाजी। राधाजी को प्राप्त कर लेने से ही श्रीकृष्ण आप्तकाम बन जाते हैं।"

वज्रनाभ ने पूछा—"भगवन् आप्तकाम का अभिप्राय क्या है ? क्या भगवान् की भी कोई कामना रहती है क्या ?"

हँसकर शांडिल्य मुनि ने कहा—"क्यों नहीं रहती। जब श्री विग्रह धारण किया है, तो उसमें कामना भी होनी ही चाहिये, जैसे संसार में सभी को कोई न कोई कामना रहती ही है वैसे ही ब्रज में भी सबको कुछ कामना है। उनके स्वरूप में अन्तर है। संसारी लोगों की कामना विषय भोग सम्बन्धी नश्वर क्षणिक और दुखदायी होती है। ब्रज में सबकी कामना दिव्य अविनाशी शाश्वत तथा सदा सर्वदा आनन्द देने वाली होती हैं। जिसकी कामना पूर्ण है, जो चाहता हो वह सबका सब मिल जाय वही—आप्तकाम कहलाता है। श्रीकृष्ण को अपनी लीला के उपकरणों की कामना रहती है। जैसे चराने को गौएँ मिलें, वात्सल्य प्यार के लिये पिता-माता मिलें। सख्य स्नेह के ग्वाल-बाल मिल जायँ, मधुर रस के लिये ब्रजांगनायें मिल जायँ। आनन्द से लीला विहार हो, किशोरावस्था को बिताने की समस्त सामग्रियाँ मिल जायँ, यही श्रीकृष्ण की कामना होती है। ब्रज में वे सब सामग्रियाँ इच्छानुसार प्राप्त हैं। इसीलिये ब्रह्म ब्रज में ही आप्तकाम राधारमण कहलाता है।"

वज्रनाभ ने कहा—"भगवन्! संसारी लोगों की भी तो ये ही सब कामनायें होती हैं घर मिलें, पशु मिले, भाई बन्धु मिलें, पत्नी मिले। इन्हीं एषणाओं में तो सभी फँसे हैं। फिर अन्तर क्या है ?"

शांडिल्य मुनि ने कहा—"राजन्! अन्तर बहुत है। झूठ और सत्य में, यथार्थ और बनावट में, नित्य और अनित्य में, जितना अन्तर है उतना ही अन्तर इन संसारी कामनाओं में, और आप्त-काम की कामनाओं में है। संसारी लोगों की कामनायें प्राकृत हैं, श्रीकृष्ण की कामना दिव्य हैं। वे प्रकृति से परे हैं। उसका वे ही अनुभव करते हैं। वे अनन्त काल से अपनी आत्मा-राधिका में रमण कर रहे हैं, परन्तु वह वाणी का तो विषय है नहीं पत्ती ने आकाश में ही अंडा दिया, आकाश में ही फूटा, बच्चा भी आकाश में ही उड़ गया। पूछने वालों ने केवल आप्त पुरुषों से कानों द्वारा सुना ही। उसका अनुभव तो यहाँ के किसी ने किया ही नहीं। भगवान् अपने परिकर के साथ नित्य ही क्रीड़ा करते रहते हैं। कभी-कभी उन्हें खिलवाड़ सूझती है तो प्रकृति के साथ भी खेलने लगते हैं। उसमें कोई हेतु नहीं, जैसे कभी-कभी राजा मिट्टी का घर बनाने लगता है मिट्टी हल, खेत, क्यारी, बना कर खेलता है। उसके मणि मुक्ताओं के महल हैं, सोने-चाँदी के दिव्य वर्तन हैं आभूषण हैं। खेल के नाना उपकरण हैं किन्तु उनके अन्तःपुर में या तो राजा-रानी या दास-दासी ही रह सकते हैं। किन्तु जब वे मिट्टी के घरोंदों से खेलते हैं तो अपनी इच्छानुसार राजा-रानी दास-दासियों के अतिरिक्त औरों को भी सम्मिलित कर लेते हैं। इसी प्रकार जब भगवान् प्रकृति के साथ क्रीड़ा करने लगते हैं। तब उनकी लीला का अनुभव उनके सम्मत दूसरे लोग भी कर लेते हैं।"

वज्रनाभ ने पूछा—"भगवन्! प्रकृति के साथ भगवान् क्यों खेलने लगते हैं, उस समय क्या होता है?"

शांडिल्य मुनि ने कहा—"राजन्! खेल में क्यों क्या प्रश्न नहीं उठा करता। खेल तो खेल के ही लिये होता है। प्रकृति तो सत्त्व रज और तम इन तीनों की साम्यावस्था को ही कहते हैं।

भगवान् खेलने लगते हैं तब इनकी साम्यता नष्ट होती है। सृष्टि का प्रवाह आरम्भ हो जाता है सृष्टि होती है उसकी स्थिति होती है उसका नाश होता है जो बना है वह बनकर बिगड़ेगा भी। जो पैदा हुआ है, कुछ देर रहकर उसका नाश भी होगा। पैदा होता ही नाश के लिये है। बनने का अर्थ ही है बिगड़ने के लिये जो भगवान् की नित्य लीला है वह तो कभी बनती ही नहीं तो बिगड़ेगी भी नहीं। उसका कभी आदि ही नहीं तो अन्त कैसे होगा। इससे सिद्ध हुआ भगवान् की लीला के दो रूप हैं। एक नाश वाली एक अविनाशी, एक सदा रहने वाली, एक क्षणिक एक वास्तवी दूसरी व्यावहारिकी।"

वज्रनाभ ने पूछा "भगवन्! व्यावहारिकी लीला कौन-सी है, तथा वास्तवी कौन-सी, इन दोनों में क्या भेद है?"

शांडिल्य मुनि ने कहा—"देखो वास्तवी लीला वह होती है, जिसे भगवान अपने ही लोक में अपनी आत्मा राधिका के साथ अपने अन्तरङ्ग जनों के साथ नित्य निरन्तर करते रहते हैं। इसे दूसरा कोई देख नहीं सकता। यह वास्तवी लीला भी मथुरा मंडल की ब्रज भूमि में गुप्त रूप से निरन्तर होती रहती है, इस रहस्य मयी लीला की प्रत्यक्ष अनुभूति नहीं होती, किसी भाग्यशाली को यह कभी कभी ब्रज भूमि में प्रत्यक्ष भी दिखाई देने लगती है।"

व्यावहारिकी लीला वह होती है जो सभी जीवों के सम्मुख होती है। जीवों में भी दो तरह के जीव हैं एक तो पतनशील एक उत्थान शील। जो संसार चक्र में फँसने ही वाले हैं, उन्हें तो लाख प्रयत्न करने पर भी भगवान् सामने अपनी प्रत्यक्ष लीला दिखावें भी तो भी उन्हें अनुभव न होगा। उनका विश्वास न जमेगा। दूसरे उत्थानशील, जिनका शीघ्र ही संसार बन्धन छूटने वाला होता है। वे भगवान् की लीला का अनुभव

श्रीकृष्ण अर्जुन दुर्योधन दोनों के ही सम्मुख प्रत्यक्ष थे, एक उनकी पूजा करता था एक गाली देता था, एक साक्षात् भगवान् मानता था, एक उन्हें प्रपंची हत्या की जड़ तथा छलिया मानता था। दोनों को ही भगवान् ने अपना विश्व रूप दिखाया। एक ने उसकी सराहना की भगवान् से क्षमा माँगी, उनके स्वरूप का बोध हुआ। दूसरे दुर्योधन ने उसे नट का खेल बताया, उस पर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा उसका अहंकार और बढ़ गया।

व्यावहारिकी लीला भी वास्तविक लीला के बिना हो नहीं सकती। जब कोई वस्तु होगी तभी तो उसका अनुकरण किया जायगा। कोई वास्तविक लेख हो तभी तो उसकी प्रतिलिपि की जायगी। असली वस्तु से ही तो नकली बनती है, किन्तु नकली कभी असली नहीं हो सकती। इसी प्रकार व्यावहारिकी लीला का कभी वास्तवी लीला में प्रवेश नहीं। जिस भगवान की लीला को तुम लोग देखते हो यह सब व्यावहारिकी लीला है। पाप, स्वर्ग, नरक, धर्म, अधर्म, अच्छा, बुरा, पृथ्वी से ब्रह्म लोक तक चले जाओ सब भगवान की व्यावहारिकी लीला के अन्तर्गत है। व्यापार व्यवहार में बनिया क्या करता है, उनके बदले गुड़ दे देता है, पैसा के बदले दूसरी वस्तु दे देता है। अर्थात् वस्तुओं का बदला बदली का ही नाम व्यवहार है। तुमने पुण्य कर्म किया बदले में स्वर्ग दे दिया, अत्यधिक पुण्य किया ब्रह्मलोक पहुँच गये। पाप किया नरक में चले गये, अत्यधिक पाप किया घोर नरकों में चले गये। पुण्य-पाप समाप्त हुआ फिर लौटकर पृथ्वी पर आ गये। सांसारिक व्यवहार करते हुए आप चाहें, कि हम भगवान् की वास्तविक लीला का अनुभव कर सकें तो असम्भव है। वैसे है यह सब भगवान् की ही लीला। भूमंडल के समस्त लोकों में इसी व्यावहारिकी लीला का साम्राज्य है।

अज्ञानी लोग नित्य प्रत्यक्ष देखते हुए भी उसकी ओर से अन्धे बने हुए हैं प्रवाह में बहते चले जाते हैं। व्रजभूमि यद्यपि है तो भूमंडल के ही अन्तर्गत किन्तु वह मथुरा का भाग तीन लोक से न्यारा है। वहाँ गुप्त रूप से सदा भगवान् की रहस्यमयी वास्तवी लीला हुआ करती है।

कभी-कभी भगवान् अवतार लेकर वास्तवी और व्यावहारिक लीला के भेद भाव को मिटाकर उसे किसी अंशों में प्रत्यक्ष करके दिखा देते हैं अपने प्रत्याशी भक्तों को इस लीला का प्रत्यक्ष दर्शन कराके उन्हें अपने में सम्मिलित कर लेते हैं। जब बहुत से दिव्य लीला में प्रवेश करने वाले प्रत्याशी एकत्रित हो जाते हैं तब भगवान् का अवतार होता है, वे अपने परिवार के सहित अवनि पर अवतरित होकर क्रीड़ा करते हैं फिर उसका संवरण कर लेते हैं।

इसी प्रकार का समय इस अट्ठाइसवें द्वापर के अन्त मे आया भगवान् का संकेत पाकर उनके अभिप्राय को जानने वाले भक्तों ने ऋषि मुनि तथा देवताओं ने भी भिन्न-भिन्न स्थानों मे अवतार ग्रहण किये। बहुत से रहस्य लीला के अधिकारी व्रज मंडल में एकत्रित हो गये। भगवान् ने अपने अन्तरङ्ग भक्तों के साथ अभी कुछ ही काल पूर्व अवतार ग्रहण किया था और यहाँ व्रज भूमि में भाँति-भाँति की प्रत्यक्ष लीलायें की थीं। राजन्! आप जानते हैं। राजा कहीं किसी पर्व में उत्सव में जाने वाला होता है तो वहाँ उनके आने के पहिले ही तीन प्रकार के लोग जुट जाते हैं। एक तो उस प्रान्त के अधिकारी या अधिकारियों द्वारा नियुक्त उनके प्रतिनिधि, दूसरे राजा का सब प्रबन्ध करने वाले उसको सभी प्रकार का सुख पहुँचाने वाले उसके अंतरङ्ग आदमी तीसरे उसकी दान शीलता उदारता प्रजा प्रियता तथा अन्यान्य गुणों की प्रशंसा सुनकर उससे

प्रेम करने वाले उसके प्रशंसक दर्शनार्थी। इस प्रकार के जब लोग एकत्रित हो जाते हैं तब राजा की सवारी आती है तब सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा जाता है चारों ओर राजा का जय जयकार ही सुनायी देता है। जो राजा से प्रेम नहीं करते या द्वेष रखते हैं उनका या तो वहाँ प्रवेश ही नहीं होने पाता या वे स्वयं ही द्वेष वश इधर आते ही नहीं। इस स्वागत समारोह में तो राजा के अभिमत उनके प्रशंसकों का ही प्राबल्य रहता है।

यही बात भगवान् के अवतार के सम्बन्ध में है भगवान् ने जो इस अट्ठाईसवें द्वापर के अन्त में मथुरा मण्डल में अवतार लिया तो यहाँ ब्रजमंडल में भी तीन ही प्रकार के लोग आये, भगवान् के स्वधाम पधारने पर वे तीनों ही प्रकार के लोग चले गये, अब फिर ब्रज मण्डल में रह ही कौन जायगा। इसीलिये आपको यहाँ कोई मनुष्य दिखायी नहीं देता इसीलिये आपको सर्वत्र घोर वन ही वन दृष्टिगोचर हो रहा है।"

यह सुनकर अत्यन्त ही कुतूहल के साथ महाराज वज्रनाभ ने पूछा—"प्रभो! भगवान् के साथ कौन तीन श्रेणी के भक्त ब्रजमण्डल में आये और वे सब के सब कहाँ-कहाँ चले गये कृपा करके इस सबके रहस्य को समझाइये। आपकी रहस्यमयी बातों को सुनकर मुझे तथा महाराज को बड़ा आनन्द हो रहा है, साथ ही साथ हमारा कुतूहल भी बढ़ रहा है।"

यह सुनकर शांडिल्य मुनि ने कहा—"अच्छी बात है राजन्! मैं आपके प्रश्नों का यथावत् उत्तर देता हूँ, आप एकाग्र-चित्त से श्रवण करें।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! जिस प्रकार शांडिल्य मुनि ने महाराज परीक्षित् तथा वज्रनाभ के सम्मुख भगवान् के तीन

प्रकार के ब्रज सम्बन्धी कृपा पात्र भक्तों का वर्णन किया उसे मैं आगे कहूँगा। आप सावधान होकर श्रवण करें।"

छप्पय

*लीला तिनि की त्रिगुन मयी इक सत्य कहावे।*
*सत्य वास्तवी होइ त्रिगुन व्यवहार बनावे॥*
*ब्रज महँ लीला गुप्त वास्तवी नितही होवै।*
*जब होवे अवतार प्रकट अधिकारी जोवें॥*
*नँद नन्दन ब्रज महँ प्रकटि, नाना सुख भक्तनि दये।*
*पुनि लीला संवरन करि, अन्तरहित सब संग गये॥*

# प्रत्यक्ष व्रजलीला में तीन प्रकार के भक्त

[ २८ ]

गायन्ति ते विशदकर्म गृहेषु देव्यो—
राज्ञां स्वशत्रुवधमात्मविमोक्षणं च ।
गोप्यश्च कुञ्जरपतेर्जनकात्मजायाः
पित्रोश्च लब्धशरणा मुनयो वयं च ॥*

(श्री भा० १० स्क० ७१ अ० ९ श्लो०)

छप्पय

*त्रिविध भक्त लै करहिँ कृष्ण क्रीड़ा या जगमहँ ।*
*अन्तरङ्ग, जिज्ञासु और सुरवर अंशनि महँ ॥*
*अन्तरङ्ग प्रभु सङ्ग रहैं तजि अनत न जावैं ।*
*इच्छुक करि हरि भक्ति दिव्य लीला सुख पावैं ॥*
*करि सेवा सेवक सरिस, सुर अंशनि अंशी मिलहिँ ।*
*केवल कृपा कटाच्छ तैं, प्रभु-लीला दरसन लहहिँ ॥*

---

* उद्धवजी भगवान् से कह रहे हैं—"प्रभो! जरासन्ध के वध से आपके तीनों प्रकार के भक्त प्रसन्न होंगे। जिन राजाओं को उसने बन्दी बनाया है उन्हें आप बन्धन मुक्त कर देंगे तो उनकी स्त्रियाँ अपने घरों में अपने पतियों की बन्धन मुक्ति, शत्रु वध तथा आपकी पवित्र लीलाओं का गान उसी प्रकार करेंगी जैसे शङ्खचूड से छुटकारा पाने पर आपकी प्रेमिका गोपिकायें तथा ग्राह के मुख से गज को छुड़ाने पर और रावण के हाथ से सीताजी को छुड़ाने पर मुनि गण तथा माता-पिता को कारावास से छुड़ाने पर हम यादव गण आपकी कीर्ति का बखान करते हैं।"

भगवान् के तीन रूप हैं एक सर्वान्तर्यामी रूप, दूसरा आनन्द घन सच्चिदानन्द स्वरूप और तीसरा लीलाधारी विनोदी स्वरूप। सर्वान्तर्यामी रूप से तो वे चर-अचर सभी में समान रूप से व्याप्त हैं जैसे आकाश। आप ऐसी किसी भी भौतिक वस्तु की कल्पना नहीं कर सकते जिसका आधार आकाश न हो। आदि में अन्त में मध्य में भीतर बाहर सभी वस्तुएँ आकाश व्याप्त हैं। आकाश के बिना भौतिक वस्तुओं की सत्ता ही नहीं। इसी प्रकार भगवान् भी सबमें सर्वत्र समान भाव से अनुस्यूत हैं। उनकी सत्ता के बिना किसी का अस्तित्व नहीं उनकी इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता। वे ही संसार वृक्ष के बीज हैं, मूल कारण हैं, वे ही उत्पन्न करने वाले हैं, उत्पन्न होने वाले हैं, रक्षक हैं, रक्ष्य हैं। संहारक हैं, संहार्य हैं। भोजन कराने वाले, भोक्ता, भोज्य, कर्त्ता, कर्म, कारण तथा जो भी कुछ है, वे ही हैं। सर्वान्तर्यामी रूप से तो वे हैं ही। सर्वत्र प्राप्त हैं उनकी प्राप्ति के लिये न साधन की आवश्यकता है न प्रयत्न की, न तर्क की, न प्रमाण की, वे तो स्वयं सिद्ध हैं ही।

दूसरा उनका सच्चिदानन्द आप्तकाम रूप है, उस स्थिति में जगत् उनके लिये कुछ नहीं है। जगत् के कार्य में उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रादि देवों को नियुक्त कर दिया है, वे इस प्रपंच को चलाते रहते हैं। स्वयं सच्चिदानन्द आप्तकाम आत्माराम श्रीकृष्ण तो अपनी आत्मा राधा के साथ रमण करते रहते हैं। जैसे कोई सम्राट् है। अपनी साम्राज्ञी के साथ कहीं मनो विनोद के लिये गया। साम्राज्ञी की इच्छा एक क्रीड़ा कानन बनाने की हुई संकल्प मात्र से बन गया। क्षणभर उसमें क्रीड़ा की फिर अपने अन्तःपुर में आ गये। उस कानन में असंख्यों वृक्ष हैं उनमें फल होते हैं नये पौधे लगते हैं पुराने नष्ट होते हैं रक्षक उनकी देखभाल करते हैं। राजा को या रानी

को उससे कोई प्रयोजन नहीं। उन्हें कभी स्मरण भी नहीं आता हमने कोई क्रोड़ा कानन बनवाया था उन्हें तो अपने आनन्द से प्रयोजन। इसी प्रकार राधा-कृष्ण के नित्य विहार में विनोद ही विनोद में यह जगत् पैदा हो गया। हँसी-हँसी में इच्छा हुई हमारे एक पुत्र हो जाय। श्रीकृष्ण ने कहा—"क्या करोगी पुत्र-फुत्र का, पुत्र कोई सुख थोड़े ही देता है। माता-पिता के बीच में व्यर्थ ही तीसरा विघ्न रूप खड़ा हो जाता है। क्यों आनन्द में विक्षेप डालती हो किन्तु कभी-कभी विक्षेप में भी आनन्द आता है कभी-कभी क्रोध करने और लड़ाई झगड़ा करने में ही आनन्दानुभूति होती है। आनन्द की कोई मर्यादा तो है नहीं वह तो सर्वत्र प्रकट हो जाता है कभी-कभी रोने में ही आनन्द आता है। तत्क्षण पुत्र हो गया। पुत्र विकार तो है ही। विकृति में घिनौनापन होता ही है। लड़के को आलस्य आया जभाई ली। उसके मुँह में वन, पर्वत, नद, नदी, चौरासी लाख योनियाँ सात लोक चौदह भुवन दिखायी दिये। राधाजी ने कहा—"कैसा घिनौना पुत्र पैदा हुआ।' भगवान् ने कहा—"देख लिया न उसका आनन्द अब इसे पटक दो। छोड़ो इस झंझट को।" बस दोनों अपने पुनः नित्य विहार में निमग्न हो गये। संसार प्रवाह चलता रहा उन्हें स्मरण भी नहीं। वैसे तो उनके अंश से ही उत्पन्न हुआ। इनकी स्मृति के एक कोने में एकांश में वह स्थित है ही। किन्तु उन्हें इसका ध्यान नहीं।

तीसरा रूप है भगवान् का विनोदी। कभी-कभी रानी को लेकर उन्हें नाटक करने की भी सूझती है। नाटक भी राजा-रानी का। आप पूछोगे राजा रानी तो वे हैं ही फिर नकली नाटक की क्या आवश्यकता। अजी यथार्थ रानी राजा तो हैं ही, किन्तु नाटक करने में एक अपूर्व ही आनन्द आता है, अपना आनन्द तो है ही। दर्शकों को दिखाने में उनकी प्रसन्नता का

देखकर और भी अधिक आनन्द आता है। नाटक दिखाने में दर्शकों के सुख की प्रधानता रहती है। नाटक में तीन प्रकार के लोग होते हैं। एक तो सूत्रधार के साथी जो नाटक में सहयोग दें। नटी, नट तथा विभिन्न पात्र ये सब तो नाटक करने वाले के अपने निजी होते हैं। उन्हें जब जैसा चाहे बना दे। तुरन्त उनका रूप बदल दे। दूसरे दर्शक। दर्शक भी उसमें वे ही आते हैं जिन्हें नाटक देखने की हार्दिक लालसा हो। बहुत से ऐसे शुष्क हृदय नीरस पुरुष होते हैं, वे कह देते हैं—"अजी क्या नाच गाना देखना, नाटक में होता ही क्या है। किसी छोरी को छोरा बना दिया, कोई छोरा छोरी बन के नाचने लगा। कोई मुकुट लगाकर राजा बन गया, कोई भाँड़ की भाँति हँसाने लगा। हम नहीं जाते नाटक देखने।" वे उस आनन्द से सदा वंचित रहते हैं। या दूसरे शब्दों में यों कह लो राजा रानी स्वयं ही नाटक खेलें, तो किसी की इच्छा देखने की न होगी, किन्तु राजा रानी जिसे चाहेंगे, जिसे निमन्त्रित करेंगे-जिसका वरण करेंगे-वही तो देखने आवेगा। तीसरे सेवक वे तो वेतनभोगी होते हैं, राजा जहाँ उनकी नियुक्ति कर दे उसी काम को वे करते हैं। फिर अपने काम को जाकर करने लगते हैं।

यद्यपि है यह नाटक ही, किन्तु इसे काल्पनिक नाटक ही मत समझो क्योंकि इस नाटक को खेलने वाले तो यथार्थ राजा रानी ही हैं। यथार्थ राजा जब बनावटी राजा बनकर आवे और राजा का ही अभिनय करे, तो उसमें और ही अद्भुत आनंद आवेगा। उसे तो विशेष आनन्द क्या आवेगा वह तो भीतर बाहर राजा है ही। दर्शकों को बहुत आनन्द आवेगा। और उसमें भी यथार्थ रानी जब नाटक की रानी बनकर यवनिका के भीतर जो लीला करेगी, उसके अनुमान से दर्शकों को अलौकिक आनन्द आवेगा। यह राजा रानी का नाटक होता है, राजभवन में ही जो राजा के

आवास से पृथक् स्थान नहीं है, किन्तु यथार्थ अन्तःपुर से रंगस्थली का अन्तःपुर पृथक् ही है। उसी अन्तःपुर में यदि हो तो वह नाटक क्या हुआ। यही लीलाधारी की लीला है। यही नट नागर का नाटक है। यही श्रीकृष्ण अवतार का रहस्य है। यद्यपि गोलोक में और मथुरा मण्डल के व्रजधाम में कोई अन्तर नहीं। किन्तु यहाँ श्यामसुन्दर अपनी प्रियतमा के सहित नाटक करने आते हैं। प्रेमी भक्तों को सुख देकर—नाटक खेलकर—फिर अन्तः पुर के आनन्द में निमग्न हो जाते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! शांडिल्य मुनि महाराज परीक्षित् और अनिरुद्धनन्दन महाराज वज्र को समझा रहे हैं—देखो, भाई, यह जो अभी श्रीकृष्ण भगवान् का व्रजमंडल में अवतार हुआ था, उसमें तीन प्रकार के भक्तगण उपस्थित थे। एक तो भगवान् के नित्य अन्तरंग पार्षद जैसे उद्धव, अर्जुन, व्रज के ग्वाल बाल, गोपियाँ तथा अन्य गोपगण आदि। ये भगवान् से कभी पृथक् नहीं होते। भगवान् की प्रत्येक लीला में चाहें व्रजधाम में हों, गोलोक में हों, सभी में समान रूप से सम्मिलित होते हैं। ये भगवान् के एक प्रकार से अंग ही हैं। इन्हें तो ऐसे समझो जैसे राजा की विवाहिता पत्नियाँ।"

दूसरे भक्त वे हैं जो एकमात्र भगवान् को ही प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हैं। उनकी अन्तरङ्ग लीला में अपना प्रवेश चाहते हैं। जिन्होंने न जाने कितने दिनों से भगवान् को पाने के लिये साधना की है। किन्तु साधना से ही तो भगवान् नहीं मिल जाते। कोई सौन्दर्योपासक पति को पाने के लिये काली कलूटी, कानी, भौंड़ी, घिनौनी लड़की इच्छा करे तो वह उसे थोड़े ही वरण कर लेगा। उसकी पत्नी तो वही होगी जो उसे अच्छी लगे, साथ ही उसकी भी उसे पति बनाने की उत्कट अभिलाषा हो। वैसे उत्कट अभिलाषा तो पत्थर को भी पिघला

देती है। उत्कट अभिलाषा ही सबसे बड़ा सौन्दर्य है, किन्तु केवल अभिलाषा से ही काम नहीं चलता। स्वीकार करने वाले की इच्छा ही प्रधान मानी जाती है। पति जिसे भी वरण कर ले। और पति चाहने वाली की ओर स्वाभाविक रूप से आकर्षित हो ही जाता है। अतः दूसरे वे नये भक्त हैं, जिन्होंने भगवान् को प्राप्त तो किया नहीं किन्तु पाने के इच्छुक हैं और भगवान् भी उन्हें अपनाना चाहते हैं। जैसे सगाई स्वीकार की हुई लड़की। बात दोनों ओर से पक्की है, केवल विवाह होना ही शेष है।

तीसरी श्रेणी के भक्त हैं अधिकारारूढ़ देवगण। उनको राजा के नौकर-चाकर की श्रेणी में रख लो। जैसे सम्राट् की ओर से कोई प्रान्ताधीश है,कोई मंडलाधीश है, कोई जनपदों का कार्य देखता है, कोई न्यायाधीश है। राजा को जब आवश्यकता होती है, बुला लेता है, कार्य समाप्त होने पर उन्हें पुनः अपने-अपने पदों पर भेज देता है। इनमें भी जो राजा के अत्यंत प्रिय होते हैं उन्हें ही बुलाता है। इसी प्रकार जब भगवान् को अवतार लेना होता है, कोई लीला रचनी होती है, तो देवताओं को उनकी पत्नियों को भी बुला लेते हैं, भगवान् के पहिले वे अवतीर्ण होकर यहाँ की रंगभूमि को सजा-बजाकर व्यवस्थित कर रखते हैं। भगवान् जहाँ आये वहाँ कार्य आरम्भ हो गया। इस प्रकार ब्रज मंडल में भगवान् के अवतार काल में ये तीन ही श्रेणी के पुरुष यहाँ थे। अन्य संसारी विषयी लोगों का ब्रज मंडल में प्रवेश निषिद्ध था। इसीलिये जितने यादव थे सब देवताओं के अंश से उत्पन्न हुए थे।

इन सबके एकत्रित हो जाने पर भगवान् कृष्णचन्द्र की अवतार लीला आरम्भ हुई। नटनागर का नयनाभिराम नूतन नाटक खेला जाने लगा। जैसे बालक क्रीड़ा के लिये बहुत-सी सामग्री जुटाते हैं, उससे खेलने की वस्तुएँ बनाते हैं। गीली

मिट्टी से घर, खेत, पशु, पक्षी, निर्मित करके कुछ देर खेलते हैं। फिर अपने ही हाथों से सब को 'मनुआ मरि गयो, खेल बिखिर गयो' इस मंत्र को पढ़कर सबको मिटा देते हैं, घर चले जाते हैं। ऐसे ही भगवान् जब कुछ काल तक खेल चुके तो इस खेल को मिटाने की जब इच्छा हुई, तब जितने देवताओं के अंश से यादव उत्पन्न हुए उन्होंने पहिले ही व्रज मंडल से द्वारका भेज दिया था, वहाँ उन्हें ऐसा अभिमान हो गया कि सब कुछ हम ही हैं, भगवान् ने ब्राह्मणों से शाप दिलाकर यदुकुल का संहार करा दिया। जो यादव जिस देवता के अंश से उत्पन्न हुआ था, वह उसी के अंश में मिल गया। यादवों में केवल आप (वज्रनाभ) बच गये। कपट स्त्री बने साम्ब के पेट से जो मूसल निकला, जिसे रितवा कर समुद्र में फिँकवा दिया था, उसी से जो सरपत घास उत्पन्न हुई, उसी से परस्पर में लड़कर सब यादव स्वर्ग सिधार गये। इस प्रकार व्रज मंडल से एक वर्ग तो यों चला गया।

अब रह गये दूसरे प्रकार के भक्त जो भगवान् को चाहते थे और भगवान् जिन्हें चाहते थे। दोनों की आँखें चार हुईं। अब आप जानते ही हैं, चार आँखें होने से तो अनुराग हो ही जाता है, प्रेम की पहिचान ही है चार आँखें हो जाना। जो आँखें इतने दिन से आकुल थीं। जो प्रेमार्णव प्रभु का हृदय अपने भक्तों को पाने के लिये उमड़ रहा था, उन्हें पाकर अब वे छोड़ कैसे सकते थे। जिसकी सगाई हो गई हो और चिरकाल की प्रतीक्षा के अनन्तर भाँवर फिरी हो, वह बहुधा वर के साथ ही पितृगृह को त्यागकर चली जाती है। इसी प्रकार भगवान् ने अपने उन द्वितीय श्रेणी के भक्तों को प्रेमानन्द स्वरूप बनाकर सदा के लिये अपने नित्य अंतरङ्ग भक्तों में सम्मिलित कर लिया। वे भी व्रज धाम से प्रत्यक्ष रूप में विदा हो गये।

अब रह गये प्रथम श्रेणी के भगवान् के अंतरङ्ग नित्य पार्षद सो वे तो जहाँ भगवान् रहते हैं वहीं रहा करते हैं। यद्यपि व्रज मंडल में भगवान् की अंतरङ्ग रासलीला नित्य ही होती है और उनका परिकर भी रहता ही है। किन्तु वह लीला गुप्त रूप से होती है सर्व साधारण उसे देख नहीं सकते। किसी भाग्यशाली को ही जिसे भगवान दिखाना चाहें उसी को उनकी वह लीला दिखायी देती है। क्योंकि नित्य लीला दर्शन के सभी अधिकारी नहीं। जो लोग व्यवहार में फँसे हैं वे व्यवहारिक लीला में स्थित पुरुष नित्य लीला को देख ही नहीं सकते। ये तीन ही श्रेणी के लोग थे वे ही सब भगवान् के स्वधाम पधारने पर अन्तर्हित हो गये तो अब फिर व्रज में रहे कौन दिखायी कौन दे। इसीलिये सम्पूर्ण व्रजमंडल आज घोर वन बना हुआ है। इसमें मनुष्यों की तो बात ही क्या वानर तक दिखायी नहीं देते। तुमने जो मुझसे पूछा उसका उत्तर तुम्हें दे दिया अब तुम और मुझसे क्या पूछना चाहते हो ?"

वज्रनाभ ने कहा—"महाराज ! हम लोग तो भगवान की व्यावहारिकी लीला में स्थित हैं। वास्तवी लीला दर्शन के तो हम अधिकारी ही नहीं व्रज में व्यवहार वाला कोई व्यक्ति रह नहीं सकता। तो फिर मैं ही इस घोर वन में रहकर क्या करूँगा। मैं भी अपना डेरा डण्डा उठाकर चाचाजी के साथ हस्तिनापुर जाता हूँ।"

शांडिल्य मुनि ने कहा—"नहीं यह बात तो तभी तक थी जब तक भगवान् इस धराधाम पर प्रत्यक्ष रूप से विराजमान थे। अब तो भगवान स्वधाम पधार गये। उनकी अन्तरंग लीला भी यहाँ गुप्त रीति से होती है। सर्व साधारण उन्हें देख ही नहीं सकते। अतः अब तो यहाँ व्यावहारिक लोग भी रह सकेंगे। इसलिये अब तुम मेरी आज्ञा से व्रज मण्डल में स्थान

स्थान पर गाँव बसाओ कुण्डों और तालाबों को गहरे कराओ।"

वज्रनाभ ने कहा—"महाराज ! गाँव तो मैं बसाऊँगा किन्तु प्रजाजन कहाँ से लाऊँ बिना नर-नारियों के गाँव कैसे बसेंगे ?"

महामुनि शांडिल्य ने कहा—"अरे भैया ! तुम्हारे ये जो चाचा बैठे हैं ये तो अखिल भूमण्डल के चक्रवर्ती सम्राट हैं ये चाहें जितने हस्तिनापुर से, इन्द्र प्रस्थ से, यहाँ बसाने को नर नारियों को भेज सकते हैं। सहस्रों वैश्यों को यहाँ वाणिज्य व्यापार करने को भेज सकते हैं। तुम इस बात की चिन्ता मत करो सम्पूर्ण व्रज मण्डल में तुम अपना राज्य स्थापित करके श्रीकृष्ण भक्ति का प्रचार-प्रसार करो। मथुरा को तो अपनी प्रधान राजधानी बना लो। और उसकी छः उपराजधानी जनपद बनाओ। वहाँ सैनिकों के पड़ाव डालो। जन सुरक्षा के लिये राज्यकर्मचारी रखो।"

वज्रनाभ ने कहा—"भगवन् ! अपनी उपराजधानियाँ कहाँ बनाऊँ। उनका नाम क्या रखूँ ?"

शांडिल्य मुनि ने कहा—"राजन् ! नाम तो पहिले से ही हैं अब तुम्हें प्रकाशित करना है। ये जो पुराने नगरों के खेड़े टूटे फूटे टीले पड़े हैं उन्हीं पर ग्राम बसाओ। जहाँ तुम्हारा राजमहल है इसके पास ही मधुवन था यहीं मथुरा नाम की बड़ी नगरी बसाओ। यह तो तुम्हारी राजधानी हुई। यमुना पार में एक वृहद् वन (महावन) स्थान है जिस समय श्रीकृष्ण भगवान् का प्राकट्य हुआ उस समय व्रजराज नन्द वहीं निवास करते थे। वहाँ बड़ा वन है। वहाँ भी किला बनवा कर अपनी उपराजधानी बनाओ। गौएँ अधिक रहने से उसका नाम गोकुल भी है। यमुना पल्लीपार का राज्य प्रबन्ध सब महावन से ही होना चाहिये। जहाँ नन्दजी पीछे से ग्राम

बनाकर बस गये थे उस पहाड़ी टीले का नाम नन्दग्राम है वहाँ भी अपना भवन बनवाकर सैनिक रखो। सम्मुख ही पहाड़ी के दूसरे टीले पर गोपराज वृहत्भानु रहते थे उसका नाम वृहद् भानुपुर (बरसाना) है वहाँ भी अपनी राजधानी बनाओ। जिस गोवर्धन को भगवान् ने सात दिनों तक धारण किया था वहाँ भी गोवर्धन नाम से एक ग्राम बसाओ। उससे आगे एक दीर्घपुर (दीर्घ) ग्राम था वहाँ भी अपने महल बनाओ और काम्य वन तथा दूसरे वनों का राज्य शासन वहाँ से हो। इस प्रकार तुम व्रजमण्डल का पुनः उद्धार करो। तुम भगवान् कृष्णचन्द्रजी की चौथी पीढ़ी में हो। तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम सब स्थानों पर श्रीकृष्ण भक्ति का प्रचार करो। यह व्रजधाम संसार में सबसे पवित्र स्थल है। यह भूमि साक्षात् सच्चिदानन्दमयी है। इसे तुम श्रीकृष्ण स्वयं विग्रह ही मानो। इसके कण-कण में भगवान् वासुदेव व्याप्त हैं। सर्वत्र राधा-रमण रम रहे हैं। इसके पवित्र स्थानों को पुनः प्रकाश में लाओ।"

वज्रनाभ ने कहा—"महाराज ! मुझे क्या पता मैं तो अज्ञानी हूँ। मुझे कैसे विदित हो भगवान् ने कौन-सी लीला किस स्थल पर की है ? बिना स्थल जाने मैं उसका उद्धार कैसे कर सकता हूँ।"

महामुनि शांडिल्य ने कहा—"तुम कैसी बच्चों की-सी बात कर रहे हो। भैया ! तुम उसी पावन यदु वंश में जन्में हो जिस वंश को भगवान् वासुदेव ने अपने अवतार से धन्य किया। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हें स्वतः ही उन स्थानों का ज्ञान हो जायगा। भगवान् ने जहाँ जो भी लीला की होगी वहाँ जाकर तुम्हारे अन्तः करण में वह स्वतः ही स्फुरणा हो जायगी। तुम्हें सभी लीला स्थलों का मेरे आशीर्वाद से ज्ञान हो जायगा।

मुसल संहार से भगवान् ने तुम्हें इसी कार्य के लिये बचाकर यहाँ भेजा है कि तुम व्रजभूमि का उद्धार करो संसार में श्रीकृष्ण की भक्ति का और उनके लीला स्थानों का प्रचार-प्रसार करो।"

वज्रनाभ ने कहा—"महाराज ! मुझे क्या-क्या करना चाहिये ?"

शांडिल्य मुनि ने कहा—"देखो, भगवान् ने जिस कुंड जिस सरोवर पर जो लीला की हो उसको खोदवाकर घाट बनवाओ और उसी नाम से उसे विख्यात करो जैसे दावानल कुंड कृष्ण कुंड राधा कुंड आदि जिन नदियों के जिन पहाड़ियों के नाम लुप्त हो गये हैं उनके नामों को प्रसिद्ध करो। जो गुफा कन्दरा रूद्ध हो गयी हों उन्हें फिर से खुदवा कर उनका जीर्णोद्धार करो जो वन कुंज नष्ट हो गये हों उन्हें स्वच्छ कराओ बारह वन बारह उपवन तथा औपवनों की पुनः प्रतिष्ठा करो भगवान् के श्रीविग्रहों की स्थापना करो मंदिर शिवालय बनाओ। विशेष क्या कहें व्रज मंडल को तुम भक्ति का साकार स्वरूप बनाकर दिखादो। इस भूमि का भक्ति भाव से सेवन करो। मैं आशीर्वाद देता हूँ तुम्हारे राज्य में प्रजा बड़ी प्रसन्न होगी। घर-घर दूध दही की नदियाँ बहेंगीं। तुम्हें ही व्रज के पुनः श्रेय का उद्धार प्राप्त होगा तुम्हारे लोक परलोक दोनों ही बन जायँगे।

वज्रनाभ ने कहा—"भगवन् ! व्रज भूमि का कुछ विशेष रहस्य मुझे और बतावें।"

शांडिल्य मुनि ने कहा—"राजन् ! व्रज भूमि का महत्त्व बताने की मुझमें शक्ति नहीं है। इसका रहस्य तो परम भगवत् भक्त भगवान् के ही अभिन्न अंग उद्धवजी तुमसे बतावेंगे।"

चौंककर वज्रनाभ ने कहा—"भगवन् ! आप यह कैसी बात कर रहे हैं। मेरे प्रपितामह के सदृश उद्धवजी मुझे कहाँ मिलेंगे ?

मैंने तो सुना वे अलक्ष्य भाव से बदरीवन मे निवास करते हैं मेरे ऐसे पुण्य कहाँ जो उन भगवत् स्वरूप के दर्शन हों।"

शांडिल्य मुनि ने कहा—"राजन्! ब्रजभूमि के श्रद्धापूर्वक सेवन से भी संभव है। तुम भक्ति भाव से ब्रज मंडल में पड़े रहोगे तो उद्धवजी से तुम्हारा साक्षात्कार अवश्य हो जायगा। यह मेरा आशीर्वाद है। शेष सभी बातें वे ही आपको बतायेंगे उनके सत्संग से तुम अपनी इन प्रपितामहियों के सहित बहुत ही आनन्दित होगे और तुम ब्रज भूमि का तथा ब्रजेश्वर भगवान् वृन्दावन विहारी की लीला का रहस्य जान सकोगे। अब मेरे सन्ध्या वन्दन तथा नित्य कर्म का समय हो गया है तुम दोनों भगवत् भक्तों के स्नेह से बँधकर मैं चला आया हूँ नहीं मैं अपनी कुटी को छोड़कर कहीं जाता आता नहीं।

महाराज परीक्षित् तथा वज्रनाभ ने हाथ जोड़कर अत्यन्त ही विनय के साथ कहा—"भगवन्! आपने बड़ी कृपा की ब्रजमण्डल का रहस्य सुनाकर हमें कृतार्थ किया। आपकी बातें सुनकर तृप्ति तो होती नहीं, किन्तु आपका नित्य कर्म का समय है रोक भी कैसे सकते हैं। आपकी कृपा सदा हम पर इसी प्रकार बनी रहे। भगवन्! हम लोग अज्ञानी हैं, आपके ही सहारे जीवित हैं, आप हमें भूलें नहीं।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! ऐसा कहकर दोनों राजाओं ने महामुनि शाण्डिल्य की पूजा की, द्वार तक उन्हें पहुँचाने आये और सेवक साथ करके उन्हें प्रेमपूर्वक विदा किया।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! महामुनि शांडिल्य के चले जाने के अनन्तर वज्रनाभ ने क्या किया, ब्रजमण्डल का उन्होंने कैसे उद्धार किया? कृपा करके विस्तारपूर्वक हमें इस कथा को सुनाइये, ब्रजमंडल के पुनः उद्धार की कथा सुनने के लिये हमारे अन्तःकरण में अत्यधिक कुतूहल हो रहा है, कृपया अपने वचनों

से इसे शान्त कीजिये और हमें ब्रज रहस्य रस रूपी अमृत का पान कराइये।"

यह सुनकर सूतजी ने कहा—"अच्छी बात है महाराज! अब मैं आपको आगे की कथा सुनाता हूँ समस्त ऋषियों के साथ आप सावधानी के साथ श्रवण करें।"

छप्पय

*गये धाम जब श्याम भक्त ब्रज भये अदरशन।*
*दीखत इत नहिं मनुज भयो चहुँदिशि बन ई बन॥*
*हथिनापुर तें प्रजा लाइ बहु वास बनाओ।*
*नन्द गाम, बरसान, महावन दीघ बसाओ॥*
*कुण्ड सरोवर गिरि गुहा, बन उपवन उद्धार करि।*
*गाम, नदी, लीला थली, प्रकट होहिं पुनि धाम हरि॥*

# कालिन्दी और कृष्ण-कान्ता

( २६ )

भवतीनां वियोगो मे न हि सर्वात्मना क्वचित् ।
यथा भूतानि भूतेषु खं वाय्वग्निर्जलं मही ॥
तथाह च मनःप्राणभूतेन्द्रियगुणाश्रयः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ४७ अ० २६ श्लोक)

छप्पय

*मुनि सिख दै जब गये वज्र बहु बास बनाये ।*
*प्रजा परीक्षित लाइ वैश्य बहु विप्र बसाये ॥*
*नृप हरि बल, गोविन्द देव केशव मन्दिर करि ।*
*कृष्ण भक्ति इत थापि बसैं मज प्रभुपद हिय धरि ॥*
*एक दिवस सोलह सहस, प्रभुपतिनी यमुना गईं ।*
*कालिन्दी निज सौतिकूँ, लखि प्रमुदित पुलकित भईं ॥*

पतिव्रता पत्नियों के लिये संसार में वैधव्य से बढ़कर कोई भी बड़ा दुःख नहीं। जो स्वैरिणी हैं बहुभर्तृका हैं उनकी

---

* विरह में दुखित गोपिकाओं को संदेश पठाते हुए भगवान् कह रहे हैं—"गोपियो ! मेरा तुम्हारा कभी वियोग हो ही नहीं सकता क्योंकि मैं सबका आत्मा हूँ। जिस प्रकार आकाश वायु अग्नि जल और पृथ्वी ये पाँचों भूत सभी पदार्थों में व्याप्त हैं उसी प्रकार मैं भी मन, प्राण, इन्द्रिय पंचभूत तथा गुणों के आश्रय से सर्वत्र व्याप्त हूँ।"

बात तो छोड़ दीजिये नहीं तो धर्म प्राणनारी की शुचिता पवित्रता, सौन्दर्य प्रियता, सुन्दरता, प्रसन्नता तथा समस्त चेष्टायें एकमात्र पति के ही ऊपर अवलम्बित हैं, जैसे पानी न मिलने से हुई फुलवारी हो जाती है, जैसे गौओं के बिना गोशाला हो जाती है। जैसे नीर के बिना नदी हो जाती है, वैसे ही पति के बिना स्त्री बन जाती है, कल तक जो सुन्दरता की साकार सजीव मूर्ति दिखायी देती थी, जो वस्त्राभूषणों से सुसज्जित सोलह शृङ्गार से युक्त साक्षात् रमा-सी प्रतीत होती थी, आज ही वह पति के अभाव में श्रीहीन नारी कंकाल सूखी नदी के सदृश, मुरझाई लता के समान, झुलसी कलिका के समान तथा पाला पड़ी कुमुदिनी के समान प्रतीत होने लगती है। ललाट का तिलक, माँग का सिंदूर, हाथों की चूड़ियाँ तथा अन्यान्य अंगों के आभूषण उतर जाने से तथा मुख की कान्ति म्लान हो जाने से सहसा उसे कोई पहिचान भी नहीं सकता। स्त्रियों के लिये विधाता का यह सबसे बड़ा अत्यन्त ही कठिन घोर शाप है, किन्तु किया क्या जाय, जो जन्मा है वह मरेगा, चाहें स्त्री हो अथवा पुरुष। जिसने शरीर धारण किया है, उसका अन्त होगा ही चाहें उससे प्रेम करने वाले कितने भी क्यों न हों। इसीलिये रुक्मिणीजी ने कहा है–जो स्त्रियाँ त्वचा, दाढ़ी मूँछ, रोम नख से ढके हुए और भीतर जिसके मांस, हड्डी, रक्त, कीड़े, विष्ठा, मूत्र, वात, पित्त, कफ तथा नसनाड़ी से परिपूर्ण शरीर वाले व्यक्ति को ही–जो कि जीते जी ही मृतक के समान है–उसे पति रूप से भजती हैं तथा आपके चरण कमल मकरन्द का आघ्राण नहीं करतीं वे अत्यन्त ही मूढ़मति वाली हैं।" अर्थात् मरणशील को पति न मानकर उसमें जो अमर तत्व है उसी को भगवत् भावना से उपासना करनी चाहिये। आत्मा तो शाश्वत, नित्य, अमर तथा कभी भी मिटने वाला नहीं। वे सर्वान्तर्यामी

ही यथार्थ में पति हैं। जिन्होंने नाशवान पुरुष को पति न बना-कर अविनाशी श्रीकृष्ण को अपना पति बना लिया है, उनका पति से कभी वियोग नहीं होता, जिसका पति से कभी वियोग नहीं उसे शोक, मोह, चिन्ता तथा दुःख भी नहीं हो सकता। प्रिय मिलन में तो सदा सुख ही सुख है। अपने प्रियतम का नित्य संयोग हो, अपना प्राण प्यारा सदा अंक में ही बिठाये रखे उस भाग्यशालिनी के सुख की क्या सीमा हो सकती है ?"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! महामुनि शांडिल्य के चले जाने के अनन्तर महाराज परीक्षित् ने अपने सेवकों तथा मन्त्रियों को आज्ञा दी—"तुम लोग अभी हस्तिनापुर जाओ, कुछ लोग इन्द्रप्रस्थ जाओ। वहाँ से अच्छे-अच्छे वैश्यों से कहें तुम लोगों के घर का एक-एक आदमी अपनी दुकानें लेकर व्रज मण्डल में बसने को चलो। हस्तिनापुर, इन्द्रप्रस्थ और व्रज मण्डल में कोई विशेष अन्तर नहीं, जब चाहें तब अपने स्वजनों से मिलने भेंटने आ जा सकते हैं। वेदज्ञ ब्राह्मणों से भी कहो–वे भी अपने अग्नि-होत्र की सब सामग्री लेकर आवें। नट, नर्तक, गायक, कलाकार, हाथ की कारीगरी का काम करने वाले बढ़ई, रंगरेज, राज, लुहार, सुनार, मनियार, छीपी, धोबी, चमार, मल्लाह, कहार, नाई, तैली, काछी, मुरई, भंगी तथा और भी जो समाज की सेवा करते हों, सबको यहाँ ले आओ। जो प्रेम से आना चाहे उन्हें लाओ। उनके लाने की व्यवस्था राज्य की ओर से हो। बड़ी भारी सेना भी आवे। उसके साथ हाथी, घोड़े, रथ, खच्चर तथा और भी समस्त सामग्रियाँ आवें।"

महाराज परीक्षित् की ऐसी आज्ञा पाते ही सेवक तुरन्त हस्तिनापुर तथा इन्द्रप्रस्थ की ओर चले गये। महाराज परीक्षित् को बड़ी प्रसन्नता थी आज मेरे द्वारा भगवान् के प्रपौत्र की कुछ सेवा हो सकेगी। भगवान् तो मेरे कुल गुरु हैं

इस शरीर की रक्षा इन्होंने ही की थी। यह शरीर उनका ही है उनके ऋण से मैं कभी भी उऋण नहीं हो सकता। वज्रनाभ की प्रसन्नता के लिये मैं सब कुछ करूँगा।" ऐसा सोचकर वे कुछ दिन मथुरा में ही रह गये। उन्होंने सोचा मैं व्रजमण्डल को भली प्रकार से सुन्दर बनाकर उसके नगरों को फिर से बसाकर ही हस्तिनापुर जाऊँगा।"

महाराज की आज्ञा पाते ही इन्द्रप्रस्थ के सहस्रों लखपति, करोड़पति व्यापारी आ-आकर मथुरा तथा आस-पास के नगरों में बसने लगे। भगवान् के मथुरा मण्डल से चले जाने पर जो ब्राह्मण इन्द्रप्रस्थ आदि चले गये थे जो बन्दर अन्यत्र भाग गये थे वे सब भी आ-आकर व्रजवास करने लगे। अब पेड़ों पर बड़े बन्दर दिखायी देने लगे। टोकरी भरकर लड्डू खाने वाले ब्राह्मणों ने भी डेरा जमाया, जो अपनी वेद ध्वनि से पुनः व्रज-मंडल को उद्‌घोषित करने लगे। मथुरा, वृन्दावन, गोकुल, महा-वन, बलदेव, राया, शेषशायी, सी परसों, नन्दगाँव, बरसाना, मांट, छटी करा, चिकसौली इस प्रकार अनेक ग्रामों की रचना हुई। उनमें दुकानें खुल गयीं। झुण्ड-की-झुण्ड गैयाँ आ गयीं। इस प्रकार वनों में पुनः बस्ती हो गयी। जंगल में मंगल होने लगा।

अब महाराज परीक्षित् ने कहा—"शांडिल्य मुनि आज्ञा दे गये हैं। भगवान् की प्राचीन लीलास्थलियों की खोज करो उनका भी उद्धार होना चाहिये वे सभी स्थल लुप्त हो गये हैं। हम व्रज-मण्डल की यात्रा करें और उन सबका फिर से उद्धार करें।"

महाराज वज्रनाभ ने अपने चाचा की सम्मति स्वीकार की और वे दोनों चल दिये। भगवत् कृपा से तथा मुनि के आशी-र्वाद से वज्रनाभ के हृदय में भगवान् की लीलाओं की स्वतः ही स्फुरणा होने लगी, वथा लीला स्थल उन्हें प्रत्यक्ष दिखायी

देने लगे। भगवान् ने अपने सखा गोपों के साथ तथा अपनी प्रियतमा गोपियों के साथ वन उपवनों में घूम-घूमकर जहाँ-जहाँ पर जो-जो भी लीलायें की थीं उन-उन स्थानों में जाकर वज्रनाभ ने उन सबका उद्धार किया। वनों में मधुवन, भद्रवन, लौहवन, श्रीवन, तालवन, बकुलवन, भाण्डीरवन, महावन, खादिर वन, कुमुदवन, काम्यवन, और वृन्दावन इन सब वनों की पुनः प्रतिष्ठा की, इसी प्रकार चमेली वन, कदम्ब वन, केतकी वन आदि उपवनों को भी प्रसिद्ध किया। जितने प्राचीन कुंड थे, जो पट गये थे। उन्हें फिर से खुदवाया। उन पर पक्के घाट बनवाये। सरोवरो का उद्धार किया, बहुत से कूप खुदवाये। भगवान् के नाम से वापी, कूप, तड़ाग, आराम, धर्मशाला, बनवाये, राजपथ बनवाये। उन पर पंक्ति बद्ध वृक्ष लगाये गये। विश्राम स्थल क्रीड़ा स्थल बनवाये। यात्रियों के लिये आराम गृह बनवाये। मुख्य-मुख्य स्थानों में शिवालय बनवाये, चकलेश्वर, भूतेश्वर, गोपेश्वर, नन्दीश्वर, मथुरा, वृन्दावन, नन्दगाँव तथा गोवर्धन में स्थापित किये। भगवान् के बहुत से मन्दिर बनवाये गोवर्धन में हरदेवजी, दाऊजी में बलदेवजी, मथुरा में केशव देवजी और वृन्दावन में गोविन्द देवजी के विशाल-विशाल मन्दिर बनवाकर उनकी स्थापना की। बड़ी धूमधाम से प्रतिष्ठा करके इनके भोग राग के प्रबन्ध के लिये आजीविकायें लगवायीं, बहुत से ग्राम लगा दिये।

सर्वत्र कथा कीर्तन का प्रबन्ध किया। स्थान-स्थान पर कथा वाचक कीर्तनकार रख दिये, वे सर्वत्र जा-जाकर श्रीकृष्ण भक्ति का प्रचार करने लगे। इस प्रकार ब्रजमंडल में पुनः आनन्द होने लगा। पुनः इसकी महिमा बढ़ गयी। वज्रनाभ की इच्छा थी, मेरे राज्य में सभी भगवद् भक्त ही रहें। कोई भी ऐसा न हो जो भगवत् विमुख हो।" राजा के इस भाव की सभी सराहना

करने लगे, और उनका यश सौरभ दिग दिगान्तों में व्याप्त हो गया। महाराज परीक्षित् को भी हर्ष हुआ। राज्य की व्यवस्था समुचित हो गयी। कई स्थानों पर उपराजधानियाँ बन गयीं। वहाँ सैनिकों के शिविर बन गये। दीर्घपुर (डींग) में बहुत बड़ी सेना रहने लगी। इसी प्रकार नन्द गाँव, महाबरसाना, गोवर्धन, महावन और मथुरा में भी छावनियाँ हो गयीं। वज्रनाभ अत्यन्त ही श्रद्धा से अपनी सोलह सहस्र एक सौ परदादियों की सेवा करते थे, किन्तु श्रीकृष्ण विरह के कारण वे उदास ही बनी रहती थीं। इससे कुछ वज्रनाभ भी चिन्तित से रहते थे।

एक दिन की बात है, वे सबकी सब नगर से दूर यमुना स्नान के लिये गयीं। वहाँ जाकर उन्होंने देखा, वहाँ की शोभा अपूर्व है। यमुनाजी से सटा ही, यमुना गर्भ में ही कई बड़े-बड़े तालाब हैं उनमें रंग-बिरंगे कमल खिल रहे थे, यमुनाजी अपनी लहरों के थपेड़े दे-देकर उनसे,किलोल कर रही थीं। हँस रही थीं परम प्रमुदित हो ही रही थीं, मन में सिहा रही थीं इठिला रही थीं, कमल की डंडियों को हिला रही थीं, उन्हें देखकर मुसुकुरा रही थीं, तथा भाँति-भाँति की सुखप्रद क्रीड़ायें कर रही थीं।

यह देखकर श्रीकृष्ण पत्नियों ने अपने मन में सोचा—"देखो ये कालिन्दी भी हमारे कान्त की धर्मपत्नी है। हमारी ही भाँति श्याम सुन्दर इन्हें भी प्यार करते थे। ये भी उन्हें अपना सर्वस्व समझती थीं। किन्तु आज हम देख रही हैं भगवान् के विरह का प्रभाव इन पर कुछ भी नहीं है। ये उतनी ही प्रसन्न हैं, जितनी पहिले भगवान के सम्मुख रहती थीं। यही नहीं हमें तो आज इनकी प्रसन्नता पहिले से भी कई गुनी अधिक प्रतीत-सी होती है। ये हमारी भाँति विरह वेदना से व्याकुल नहीं हैं। ये भगवान् को भूल गयी हों यह भी कभी हो नहीं सकता। क्योंकि जिसने एक बार भगवान् का दर्शन कर लिया। उनके अंग का

स्पर्श कर लिया यह कभी उन्हें भुला नहीं सकता। सो, ये तो उनकी परम प्रेयसी रह चुकी हैं। अवश्य ही इस प्रसन्नता में कोई रहस्य है। हमें इनसे इसका कारण पूछना चाहिये।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! यमुनाजी की ऐसी दशा देखकर कृष्णकान्ताओं को कष्ट नहीं हुआ सौतियाडाह नहीं हुआ किन्तु उनके मन में एक अलौकिक कौतूहल उत्पन्न हुआ और वे अत्यन्त ही आदर पूर्वक जाकर हाथ जोड़कर कहने लगीं—"बहिन! कालिन्दी! जैसी हम भगवान की वल्लभा हैं वैसी ही तुम भी हो, तुम तो हमसे ज्येष्ठा श्रेष्ठ हो, श्याम सुन्दर तुम्हारा अत्यधिक आदर करते थे, सबसे अधिक सम्मान करते थे तुम भी उन्हें प्राणों से अधिक प्यार करती थीं। तुम उनके संग सुख को भूल गयी हो यह भी सम्भव नहीं। किन्तु हम देख रही हैं तुम्हारे ऊपर उनके विरह का कोई प्रभाव नहीं। जिस प्रकार हम उनकी विरह व्यथा से व्यथित तथा व्याकुल बनी हुई हैं जिस प्रकार विरहाग्नि हमें जला रही है जिस प्रकार हम उनके बिना छटपटा रही हैं, बिलबिला रही है, उस प्रकार तुम्हारी दशा नहीं, तुम्हारे ऊपर विरह के कोई चिह्न नहीं। इसका क्या कारण है अवश्य ही कोई गुप्त रहस्य है हम तुम्हारी छोटी बहनें हैं हमसे कोई बात मत छिपाओ हमें इसका रहस्य बताओ हमें सब सच समाचार सुनाओ।"

श्रीकृष्ण पत्नियों के ऐसा प्रश्न करने पर उन्हें यमुनाजी के जल से एक अत्यन्त खिलखिलाहट युक्त हँसी का शब्द सुनाई दिया और हँसती हुई कालिन्दी यमुनाजी के जल से दिव्य रूप में प्रकट हो गयीं। उन्हें इस रूप में देखकर सभी को परम सन्तोष हुआ। कालिन्दी ने कहा—"बहिनो! जय श्रीकृष्ण! कहो क्या पूछ रही थीं?"

सबने कहा—"हम तुम्हारी प्रसन्नता का कारण पूछ रही

थीं। तुम प्रियतम के विरह में हमारी भाँति विकल क्यों नहीं हो ?"

यमुनाजी को इस प्रश्न से परमानन्द हुआ। अपनी बहिनों की विरह में ऐसी दशा देखकर उन्हें दया आ गयी। प्रेम से उनका हृदय पिघल गया, दया से अन्तःकरण द्रवित हो उठा वे अत्यन्त ही स्नेह के साथ बोलीं—"बहिनो! दुःख होता है विरह में अपना प्यारा आँखों से ओझल हो जाय कहीं चला जाय तब दुःख होता है। मेरे प्रियतम तो सदा मेरे पास विराजते हैं फिर मुझे दुःख क्यों हो?"

श्रीकृष्ण पत्नियों ने कहा—"कैसे तुम्हारे पास आते हैं हमें वे दिखाई भी नहीं देते। हमें भी इसका उपाय बता दो हमारे भी विरहताप को बुझा दो हमारे भी सदा के संताप को मिटा दो हमें भी प्रसन्नता का पुनीत प्याला पिला दो हमें भी अपनी ही भाँति सुखी बना दो।"

कालिन्दी ने कहा—"बहिनो? एक कहानी सुनो। एक पतिप्राणा पत्नी थी। उसका पति कुछ काल के लिये परदेश चला गया। परदेश में उसी के नाम वाले किसी दूसरे व्यक्ति की मृत्यु हो गयी उसके किसी सम्बन्धी ने आकर कह दिया—भगवान् की माया है परदेश में तुम्हारे पति का देहान्त हो गया। उसे बड़ा दुःख हुआ किन्तु उसका हृदय कह रहा था मैं विधवा नहीं हो सकती। फिर भी सगे सम्बन्धी ग्राम वासी सब कहते थे इसलिये वह विधवा वेश बनाकर पति के विरह में उदास रहने लगी। संयोग की बात जिस दिन के लिये वह आने को कह गया था, उस दिन तक उसका काम हुआ नहीं। अवधि पर नहीं आया तो उसे भी सन्देह होने लगा वह भी अन्तःकरण से दुखी रहने लगी और मरने की बात सोचने लगी। तभी किसी ने एकान्त में आकर उससे कह दिया—"तेरा पति तो सकुशल है *अमुक तिथि को आवेगा किन्तु तू किसी से कहना नहीं।*" इस समाचार के सुनते ही उसका सम्पूर्ण शोक चला गया।

उसका पति भी आकर उससे मिल गया, किन्तु अब: वह सबके सामने पत्नी से नहीं मिलता था। रहस्य में एकान्त में ही उससे उसका संयोग होता था। जिस प्रकार वह पतिप्राणा केवल भ्रम-वश दुखी हुई थी। उसका पति तो जीवित था उसी प्रकार भगवान् श्याम सुन्दर कहीं चले नहीं गये हैं वे व्रज: में ही हैं वृन्दावन को छोड़कर ये कहीं जाते ही नहीं, किन्तु लोगों को भ्रम हो गया है उसी भ्रम के चक्कर में तुम फँसी हो तुम्हारा भ्रम दूर हो जाय कोई तुम्हें समझा दे तो तुम मेरी भाँति प्रसन्न हो जाओगी तुम्हें भी विरह जनित दुःख न होगा।"

श्रीकृष्ण पत्नियों ने अत्यन्त ही आग्रह पूर्वक कहा—"बहिन! तुम ही हमें इस रहस्य को समझा दो। तुमसे बढ़कर हमारा हितैषी और कौन होगा, तुम हमारी बड़ी हो अतः गुरु स्थानीय हो। तुम ही कृपा करके हमारा दुःख मिटा दो, तुम्हीं हमें प्राणनाथ के नित्य संयोग सुख का स्वाद चखा दो, तुम्हीं हमारे संशयों को मिटा दो।"

कालिन्दी ने कहा—"बहिनो! पहिले तो मैं उसी बात को बताती हूँ कि मुझे दुःख क्यों नहीं होता। मुझे दुःख श्री राधिका जी की नित्य निरन्तर सेवा करते रहने के कारण नहीं होता।"

श्रीकृष्ण पत्नियों ने पूछा—"बहिन! ये राधिका कौन भाग्य-वती हैं इनकी सेवा करने का सुयोग हमें कैसे प्राप्त हो सकेगा।"

कालिन्दी ने कहा—"बहिनो! ये राधिका और कोई नहीं हैं हमारे श्यामसुन्दर का ही नाम राधा है अथवा यों कहो उनकी आत्मा को ही राधा कहते हैं। हमारे प्यारे का एक नाम "आत्माराम" था न? हम लोग आत्माराम आप्तकाम उन्हें कहती थीं न? वह आत्मा ही राधा है, उसमें सदा रसिकशेखर रमण करते रहते हैं, इसलिये उन्हें राधारमण कहते हैं। यह रहस्य मुझे यहाँ आने पर विदित हुआ। श्रीकृष्ण और राधा

दो नहीं हैं, राधा ही कृष्ण हैं, कृष्ण ही राधा हैं, उनमें परस्पर में कुछ भी भेद न होने पर क्रीड़ा के लिये लीला के लिये, रमण के लिये, सुखानुभूति के लिये उन्होंने दो रूप बना लिये हैं सदा एक दूसरे के सम्मुख रहते हैं, क्षण-भर भी उनका वियोग संभव नहीं। वे राधाजी को छोड़कर अन्य किसी से रमण नहीं करते।"

श्रीकृष्ण पत्नियों ने कहा—"बहिन! तुम बड़ी गूढ़ बातें कह रही हो, हमारी बुद्धि के बाहर की बात है, भगवान् ने जो द्वारका में हम सोलह सहस्र एक सौ आठ के साथ जो क्रीड़ायें की थीं वे क्या थीं?"

कालिन्दी जी ने कहा—"वे सब भी सत्य ही थीं, किन्तु श्रीराधा के बिना वे भी कुछ नहीं थीं उन्हीं का यह लीला विस्तार था, मैं कोई सुनी सुनाई बात नहीं कह रही हूँ, प्रत्यक्ष आँखों देखी बात कहती हूँ। श्रीराधिकाजी के शरीर में मैंने रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती और तुम सबको देखा है। श्रीकृष्ण की जितनी भी पत्नियाँ हैं वे सब श्रीराधिकाजी के अंश का विस्तार मात्र ही है। अंशी में जो गुण होता है, वही अंश में होता है। समुद्र के अथाह सागर के जल मे जो गुण है, वह उसके एक कण में भी है। जो अग्नि के समूह में गुण है वही उसकी चिनगारी में भी है। राधाजी को जो नित्य संयोग सुख प्राप्त हैं, वह उनकी अंश भूता तुम पत्नियों को भी प्राप्त है, किन्तु तुम इस बात को भूल गयी हो। ब्रज में भगवान् वंशी बजाकर सबको मोहित करते हैं अपनी ओर खींचते हैं।"

श्रीकृष्ण पत्नियों ने कहा—"वंशी किस वस्तु से बनी है।"

कालिन्दी ने कहा—"श्रीकृष्ण और राधा जो परस्पर में एक दूसरे से अत्यधिक प्रेम करते हैं, वही प्रेम बहकर जम जाता है उस जमे हुए प्रेम का नाम ही वंशी है, वह प्रेम का ही

प्रवाह बहाती है वह प्रेम अनन्त है, उसका अन्त नहीं कभी चुकता नहीं। श्री राधाजी तो अंश रूप से अनेक रूप रख लेतीं हैं, एक होकर बहुत-सी बन जाती हैं, किन्तु चन्द्रावली सदा एक रस रहती हैं, वे कोई रूप नहीं रखतीं।"

श्रीकृष्ण पत्नियों ने पूछा—"ये महाभाग्यवती चन्द्रावली कौन हैं?"

कालिन्दी ने कहा—"श्रीराधा-कृष्ण के चरणारविन्दों के जो नख हैं उनमें से जो चन्द्रमा के समान सुन्दर स्वच्छ निर्मल प्रकाश निकलता है, उनकी सेवा में जो अभिलाषा है उसी का नाम चन्द्रावली है, वह अभिलाषा एक रस रहती है। युगल चरण सेवा की आसक्ति रूप अभिलाषा, लगन ही चन्द्रावली है। तुम लोगों का समावेश मैंने श्रीराधिकाजी के शरीर में देखा है, जब वे नित्य निरन्तर राधिकाजी के साथ रमण करते ही रहते हैं, तुम्हारी अंशी श्रीराधा के सम्मुख ही प्रस्तुत रहते हैं, उन्हें अंक में ही बिठाये रहते हैं, तो फिर तुम्हारा उनसे वियोग कैसे संभव है। यह तो तुम्हारा उसी प्रकार का क्षणिक भ्रम है, जिस प्रकार मथुरागमन के समय गोपिकाओं को भ्रम हुआ था।"

श्रीकृष्ण पत्नियों ने पूछा—"बहिन! गोपिकाओं को कैसे भ्रम हुआ और उसका निवारण कैसे हुआ, कृपया हमें इस बात को सुनाइये।"

कालिन्दी ने कहा—"कंस के कहने से कृष्ण-बलराम को लेने अक्रूरजी आये थे, वे उन्हें रथ पर बिठाकर मथुरा ले गये, किन्तु श्रीकृष्ण तो रस लम्पट हैं वे तो राधाधर सुधापान में इतने आसक्त हैं, कि वृन्दावन को छोड़कर एक पग भी अन्यत्र कहीं नहीं जाते। किन्तु अक्रूर घाट तक लोक दिखावे को गये यमुनाजी में डुबकी मारी स्वयं तो राधाजी के पास आ गये, अपने

अंश भूत चतुर्भुज विष्णु श्रीकृष्ण को मथुरा भेज दिया। इस रहस्य को जब तक गोपियों ने नहीं जाना तब तक वे भी विरह में तड़पती रहीं, तुम्हारी भाँति छटपटाती रहीं। वास्तव में वह विरह न होकर विरहाभास था। जब तक इस गुप्त रहस्य से गोपिकायें अविदित रहीं तब तक रोती रहीं। जब अक्रूरजी ने आकर इस रहस्य को खोल दिया, श्रीकृष्ण की आज्ञा से सब सत्य-सत्य बातें बता दीं तो तब वे इस बात को समझ गयीं। प्रसन्न हो गयीं और सदा श्रीकृष्ण को अपने सम्मुख समझकर उनके अंग संग सुख का अनुभव करने लगीं। यदि तुम्हें भी उद्धवजी के दर्शन हो जायँ, उनके सत्संग का सुअवसर प्राप्त हो जाय, उनके मुख कमल निसृत भगवद्लीलारसामृत का कानों में होकर हृदय में प्रवेश हो जाय, तो तुम्हारी भी समस्त शंकायें समाप्त हो जायँगी। तुम्हारी भी चिन्तायें मिट जायँगी।"

अत्यन्त ही उत्सुकता के साथ श्रीकृष्ण पत्नियों ने पूछा—"बहिन! हमारा ऐसा भाग्य कहाँ? हमें उद्धवजी के कैसे दर्शन हो सकेंगे? सुना है, वे तो बदरीवन में विराजते हैं, नित्य तप में निरत रहते हैं, अलकनन्दा के तट पर अलक्षित भाव से अवस्थित हैं, हम अबलाओं को उनका साक्षात्कार कैसे होगा? तुम्हें तो श्रीराधिकाजी की सेवा सर्व सुख प्राप्त है, प्रियतम का नित्य संयोग उपलब्ध है। आज से हम भी उनकी दासियाँ हुईं। हमें भी उनके सेवा का सुअवसर मिले, तो हम भी धन्य हो जायँगी, किन्तु हमारे सभी संशय तो तभी दूर होंगे, जब उद्धवजी मिल जायँ। वे हमें भगवत् सम्बन्धी कथा सुना दें, इसका यथार्थ रहस्य समझा दें।"

यह सुनकर कालिन्दी ने कहा—"अच्छी बात है बहिनो! मैं तुम्हें उद्धवजी के दर्शनों का उपाय बताती हूँ उसे तुम दत्त-चित्त होकर बड़ी सावधानी के साथ श्रवण करो।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! कालिन्दी जिस प्रकार श्रीकृष्ण पत्नियों को उद्धव मिलन का उपाय बतावेंगी उस प्रसंग को मैं आगे कहूँगा।"

छप्पय

*हम तुम प्रभु की प्रिया विरह दुख व्यापत हमकूँ।*
*तुम अति मन महँ मुदित न व्यापै क्यों दुख तुमकूँ॥*
*हँसि कालिन्दी कहै कृष्ण की आत्मा राधा।*
*रमन सतत तिनि संग करत लखि मोइ न बाधा॥*
*अशी राधा अंश विरह, हम नहीं सम्भव तहाँ।*
*करो विशद यदि महोत्सव, उद्धव मिलि जावैं तहाँ॥*

# उद्धवजी के दर्शनों का साधन

## [ ३० ]

उपगायन् गृणन् नृत्यन् कर्माण्यभिनयन् मम ।
मत्कथाः श्रावयञ्छृण्वन् मुहूर्तं क्षणिको भवेत् ॥*

(श्री भा० ११ स्क० २७ अ० ४४ श्लोक)

छप्पय

*पूछें प्रभु की प्रिया—मिलें उद्धवजी कैसे ।*
*यमुना बोली—सुनो, बताऊँ मिलिहैं जैसे ॥*
*ऊधो धरि इक रूप बदरिका बन महँ बिहरत ।*
*भक्त रूप तें लता गुल्म बनि ब्रज महँ निवसत ॥*
*उत्सव ही तिनि रूप है, उत्सव प्रिय उद्धव सतत ।*
*कुसुम सरोवर पै विशद, उत्सवतें उद्धव मिलत ॥*

हृदय के उत्साह का ही नाम उत्सव है, उत्साह से ही उत्सव अत्युत्तम बनता है, उत्सव से आह्लाद होता है और आह्लाद ही भगवान् का रूप है। जहाँ उत्सव नहीं वहाँ आह्लाद नहीं, आनन्द नहीं। वहाँ आनन्दघन, सच्चिदानन्द स्वरूप प्रभु का

---

* श्री भगवान् उद्धवजी से कहते हैं—"उद्धव मेरा भक्त मुझे मेरी प्रसन्नता के निमित्त मेरे कार्यों का ज्ञान, कथन और अंगों की चेष्टाओं द्वारा अभिनय करता हुआ नृत्य करे, मेरी कथाओं को सुने और सुनावे इस प्रकार प्रेम की चेष्टा करने के अनन्तर क्षण भर को विश्राम ले।"

प्राकट्य कैसे होगा ? उत्सव आशा में और प्राप्ति में मनाया जाता है। घर में पुत्र जन्म होगा, इसके लिये गर्भाधान से ही उत्सव आरम्भ होते हैं, सीमन्तोलन्नन, चौक और कौन-कौन से उत्सव होते हैं। घर में नववधू आने की आशा होते ही, बाजे बजने लगते हैं, घर परिवार के सगे सम्बन्धियों का जमघट होने लगता है। मिठाइयों पर मिठाइयाँ बनने लगती हैं, लिपाई-पुताई तोरण बन्दनवारों से सम्पूर्ण घर को सजाया जाता है, कितना उत्साह रहता है। घर के नर-नारी कितने आनंन्द में विभोर रहते हैं। जिस द्रव्य को पाई-पाई करके बड़े कष्ट से एकत्रित किया था, आज उसका कोई मूल्य नहीं, पानी की भाँति बहाया जा रहा है। बेटे वालों को उत्साह है हमारे घर में नई बहू आवेगी। बेटी वालों को उत्साह है हमारे घर में नया वर आवेगा, हमारी पुत्री को वरण करेगा। मिलन की सम्भावना में कितना उत्सव कितना आनन्द होता है। मिलन बिना उत्सव के बिना उत्साह के होता नहीं। बिना उत्सव का जो मिलन है, वह तो व्यापारी का मिलन है ठगों का मिलन है। ठग का भी तो मिलन है, वे भी तो बड़ी मीठी-मीठी बातें करते हैं, किन्तु उनमें हार्दिक प्रेम नहीं होता, उनकीदृष्टि गठरी की ओर रहती है, कैसे इसे फँसाकर इसकी गठरी को अपनी बना लें। व्यापारी भी बड़ी मीठी-मीठी बातें करता है। ग्राहक आते ही उससे घुलकर बातें करेगा-अजी, इसे आप अपना घर ही समझें। जहाँ उसने माल ले लिया, पैसा दे दिया फिर उसे बैठने भी नहीं देते, बात भी नहीं करते दूसरों की ओर मुड़ जाते हैं। यह मिलन उत्सव विहीन है। मिलन तो वही सुन्दर उत्तम और आनंददायक होता है, जो बड़े उत्साह के साथ महामहोत्सव के फलस्वरूप प्राप्त हो। उत्सव का फल ही मिलन है। सभी तो भगवान् के नाम उत्सवप्रिय तथा नित्योत्सव है। ब्रज में नित्य ही उत्सव होता था। उत्सव ही

भगवान् का सखा है, सुहृद है, मन्त्री है, साथी है, मित्र है, सगा सम्बन्धी है, सर्वस्व है। उसे चाहे उत्सव कहो, उद्धव कहो एक ही बात है। भगवान् के व्रज से आने पर व्रज उत्सव हीन हो गया, तब भगवान् ने तुरन्त उद्धवजी को भेजा और सन्देश दिया—"अरे, गोपिकाओ! यह तुमने क्या किया, उत्सव बन्द क्यों कर दिये, ये ही तो मुझे सबसे अधिक प्रिय हैं उसत्व स्वरूप उद्धवजी के पहुँचते ही वहाँ पुनः उत्सव प्रारम्भ हो गये, फिर सर्वत्र श्याम सुन्दर दिखायी देने लग गये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब श्रीकृष्ण पत्नियों ने यमुनाजी से, उद्धवजी के मिलने का उपाय पूछा तो यमुनाजी कहने लगीं—"बहिनो! उद्धव तो भगवान की प्रतिच्छाया हैं, उनके निजी मन्त्री थे। भगवान् ने जब स्वधाम पधारने का विचार किया तब उन्होंने इन्हें बुलाकर कहा—"देखो उद्धव! मेरी आज्ञा से तुम बदरीवन में चले जाओ और वहीं अपनी साधना पूर्ण करना।"

भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य करके उद्धवजी भगवान् की चरणपादुका सिर पर रखकर चले गये और बदरीवन में ही वास कर रहे हैं। जो वहाँ जाते हैं उन्हें भगवत् मार्ग को सिखाते हैं। बदरीवन तो साधन भूमि है व्रजभूमि साधन का फल है जन्म जन्मातरों तक जो अन्यत्र साधन करते हैं भगवत् कृपा से व्रजवास मिलता है। उद्धवजी ने पहिले भगवान् से व्रजवास माँगा भी था व्रज का यथार्थ माहात्म्य भगवान् का सान्निध्य ही है। स्थूल दृष्टि से भगवान् अन्तर्हित हो चुके हैं अतः भगवान् के अन्तर्धान होने के साथ ही स्थूल दृष्टि से व्रजभूमि भी परे जा चुकी है। फिर भी वे गुप्त रूप से गुल्म लता के रूप में भी उद्धव जी व्रज में ही वास करते होंगे।"

श्रीकृष्ण पत्नियों ने कहा—"बहिन! व्रज तो बहुत बड़ा है

८४ कोश का है वह भी संकलपारे के आकार का तिकोना। इसमें वन ही वन है न जाने उद्धवजी कहाँ होंगे। किस गुल्मलता के रूप में रहते होंगे हमें कोई निश्चित स्थल बताओ।"

यमुना ने कहा—"बहिनो! वैसे तो ब्रज के जितने भी वृक्ष हैं सब के सब तपस्वी ही हैं जिन्होंने असंख्यों वर्षों तक घोर तपस्या करके ब्रजवास की कामना की थी वे ही वृक्ष रूप से यहाँ उत्पन्न हुए किन्तु उद्धवजी तो कुसुम सरोवर में रहते हैं।"

श्रीकृष्ण प्रियाओं ने पूछा—"कुसुम सरोवर कहाँ है भला?"

यमुना बोली—"देखो मथुरा से सात कोश पर गोवर्धन है। जहाँ अभी-अभी गोवर्धन नगर बसाया गया है जहाँ मानसी गंगा है। वहाँ से डेढ़ कोश राधा कुण्ड है। राधा कुण्ड और गोवर्धन के बीच में कुसुम सरोवर है वहाँ सुन्दर स्वच्छ जल वाला सरोवर है उसके चारों ओर सघन झाड़ियाँ हैं, उन पर बेलें चढ़ी रहती हैं वे बेलें फूली रहती हैं। बड़ी-बड़ी प्राचीन झाड़ियों को कुंजें बन गयी हैं। वह भी एक वृन्दावन है। तीन स्थानों को वृन्दावन कहते हैं। एक तो धाम वृन्दावन जो मथुरा के निकट है यहाँ से थोड़ी ही दूर पर। दूसरा रस वृन्दावन यह कुसुम सरोवर है भगवान् की विहारस्थली है अभी तक गुप्त रूप से भगवान् नित्य यहाँ आकर गोपियों के साथ विहार करते हैं। तीसरा काम्यवन है यह भी वृन्दावन कहलाता है। वनवास के समय पांडव भी यहाँ आकर कुछ दिन रहे थे।"

उद्धवजी ने यही वर माँगा था कि गोपियों की पद रज उड़कर मेरे ऊपर सदा पड़ती है ऐसे स्थल में मैं छोटा-सा वृक्ष बनकर रहूँ। यहाँ गोपिकायें नित्य आती हैं इसी स्थूल वृन्दावन में बाँके विहारी का विहार होता है वहीं उद्धवजी के दर्शन हो सकते हैं।"

श्रीकृष्ण प्रियाओं ने पूछा—"वहाँ तो बहुत सी लता गुल्में

होंगे हमें कैसे पता चलेगा किस गुल्म के रूप में उद्धवजी रहते होंगे ? लता वृक्ष का मान लो पता भी चल गया तो वृक्ष रूप से वे हमें कैसे कथा सुनावेंगे ?"

यमुना ने कहा—"नहीं, उपाय किया जाय तो वे प्रत्यक्ष भी दर्शन दे सकते हैं।"

श्रीकृष्ण पत्नियों ने कहा—"उसी उपाय को तो हम जानना चाहती हैं।"

यमुना ने कहा—"देखो उद्धवजी उत्सव प्रिय हैं। या यों कह लो कि उत्सव ही उनका यथार्थ रूप है। भगवान् ने उद्धव को ही अपना उत्सव रूप प्रदान कर दिया है। भगवान् का उत्सव ही उद्धव का अंग है, वे उससे पृथक रहना भी चाहें तो नहीं रह सकते। तुम यदि कुसुम सरोवर जाकर उदार हृदय से धूमधाम के सहित महामहोत्सव मनाओ तो निश्चय ही वहाँ तुम्हें उद्धवजी के दर्शन हो जायँगे।"

श्रीकृष्ण पत्नियों ने पूछा—"कैसा उत्सव मनावें, किस उत्सव से प्रसन्न होंगे ?"

यमुना ने कहा—"उद्धवजी नामोपासक हैं। उन्हें भगवान् का नाम संकीर्तन अत्यन्त ही प्रिय है, जहाँ महानाम संकीर्तन होता है, लोभ लालसा छोड़कर एक मन एक प्राण से जहाँ बहुत से भक्त वृन्द मिलकर प्रेम पूर्वक कीर्तन करें, कीर्तन करते करते प्रेम में विह्वल बन जायँ, तो उसी समय उद्धवजी प्रकट हो जायँगे। तुम वज्रनाभ को लेकर कुसुम सरोवर जाओ। वहाँ निवास करो, शुद्ध चित्त से प्रियतम की आराधना करो, अच्छे अच्छे भगवन्नाम संकीर्तन प्रेमी श्रीकृष्ण लीला रस के लम्पट भक्तों को आदर पूर्वक बुलवाओ। वे सब एक मन एक प्राण से वीणा, वेणु, मृदंग मंजीरा तथा करताल आदि बाजों के साथ सुमधुर स्वर में कीर्तन करें, भगवत् सम्बन्धी कथायें हों, उनके

गुणों का गान किया जाय, लीलाओं का अनुकरण किया जाय। आनन्द में विभोर होकर सभी भक्त नाचें गावें, उच्च स्वर से पुकारें। इस प्रकार जब विराट महामहोत्सव होगा, तब उद्धवजी अवश्य ही प्रकट हो जायँगे, ऐसे उत्सवानन्द को देखकर वे छिपे रह नहीं सकते। वे प्रकट हो गये, तो समझो तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो गया, वे तुम्हें श्रीकृष्ण लीला रहस्य को भली-भाँति समझावेंगे। तुम्हारी सभी शंकाओं का समाधान कर देंगे। अब तुम्हें जाकर उद्धवजी के प्राकट्य का प्रबल प्रयत्न करना चाहिये। कुसुम सरोवर पर महा महोत्सव का ठाठ रचना चाहिये।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! यमुनाजी की इस बात से श्रीकृष्ण पत्नियों को परम प्रसन्नता प्राप्त हुई, वे यमुनाजी की अनुमति लेकर उन्हें सादर प्रणाम करके घर के लिये चल दीं और कालिन्दी भी यमुनाजी के जल से जैसे निकली थीं वैसे ही उसी जल में वहीं सबके देखते-देखते अन्तर्धान हो गयीं।

कृष्ण प्रिया अपने महलों में आयीं, उन्होंने आते ही यमुना और अपना सम्वाद आदि से अन्त तक वज्रनाभ तथा महाराज परीक्षित् को सुना दिया और कहा—"भैया, देखो! तुम लोग सर्व समर्थ हो, धन का यथार्थ उपयोग यही है कि वह भगवत् सम्बन्धी उत्सवों में ही व्यय हो, तुम दोनों शुद्ध अन्तःकरण से खुले हृदय से उदारता पूर्वक उत्सव कराओ। तनिक भी कृपणता मन में मत लाओ। यदि तुम प्रेम पूर्वक अत्यन्त श्रद्धा से इस महामहोत्सव को करोगे, तो निश्चय ही उद्धवजी का साक्षात्कार हो जायगा।"

महाराज परीक्षित् ने कहा—"माताओ! आप चिन्ता न करें, आप जैसी भी आज्ञा देंगी वैसा ही किया जायगा। हमारे पास जो भी कुछ है, श्रीकृष्ण प्रसाद ही तो है, हमारे भंडार में जो भी

कुञ्ज है श्रीकृष्ण का ही तो है। श्रीकृष्ण भंडार में कमी किस वस्तु की हो सकती है। चलो, आज ही कुसुम सरोवर पर चलें।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! महाराज की आज्ञा की देरी थी, कि रथ जुतने लगे, पालकियाँ सजने लगीं। सैनिक घोड़ों पर गद्दी कसने लगे। हाथी चिङ्घाड़ने लगे। बात की बात में सब लोग कुसुम सरोवर की ओर चल दिये। सायंकाल तक सब लोग सरोवर के निकट पहुँच गये। सेवकों ने डेरा डाले। रानियों के लिये वस्त्रों के घर बन गये। परदे लग गये। सरोवर के चारों ओर गोवर्धन, राधाकुण्ड, नारदकुण्ड तक सैनिकों के पड़ाव पड़ गये। बात की बात में वहाँ बड़ा भारी नगर-सा ही बस गया।

बड़े-बड़े कीर्तनकार, कथाकार, लीलानुकरण करने वाले, गायक भगवद्भक्त बुलाये गये। लोगों के हृदय में स्वाभाविक उत्साह था, सभी अपना सर्वस्व अर्पण करके उत्सव को सफल बनाने की चेष्टा कर रहे थे। सभी अन्तःकरण से उसमें सहयोग दे रहे थे, सभी निष्काम भाव से किसी लोभ लालच के बिना, प्रभु प्रीत्यर्थ कार्य कर रहे थे, इन सभी कारणों से उत्सव की शोभा अपूर्व बढ़ गयी। जब सभी के मन में उत्साह होता है, तो कार्य सिद्धि में कोई संदेह नहीं रह जाता। यही उत्सव की सफलता के पूर्व के शुभ चिह्न हैं।

गोवर्धन के निकट के उस वृन्दावन में जिसे लोग सुख स्थल भी कहते हैं, जहाँ वृषभानु नंदिनी, रस प्रभावाह स्यन्दिनी, आनन्दकन्दिनी, श्रीराधिकाजी अपने परम प्रियतम, रसिक चूड़ामणि श्री श्यामसुन्दर के संग में सदा विहार करती हैं, जहाँ की भूमि अत्यन्त ही पावन है, वहाँ पर उत्सव का ऐसा ठाठ जमा कि देवतागण भी विमानों पर चढ़कर उस उत्सव को देखने आगये। जो भी वहाँ आता वही उस आनन्द प्रवाह में बह जाता तथा अपने शरीर की सुधि-बुधि भूलकर श्रीकृष्ण कीर्तन में

तन्मय हो जाता। वह विहार स्थली साक्षात् संकीर्तन की शोभा

से सर्व प्रकार से सम्पन्न हो गयी, तो सभी को ऐसा लगा मानों हम परमानन्द सागर में गोते लगा रहे हैं।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! उस समय कुसुम सरोवर की शोभा अपूर्व थी। नर-नारी उसमें स्नान करते ही तन्मय हो जाते। उसी रंग में रँग जाते। कुसुम सरोवर आनंदरस सरोवर बन गया था। अब जैसे उस महोत्सव में उद्धवजी का प्राकट्य होगा, उस प्रसंग को मैं आगे कहूँगा।"

छप्पय

*आवें भगवत् भक्त कृष्ण गुन नामनि गावें।*
*बीना वेनु मृदङ्ग मजीरा मधुर बजावें॥*
*कथा करें कमनीय कलित कीर्तन करि क्रन्दन।*
*नाम निरन्तर रटें रमन राधा नँद नन्दन॥*
*प्रेम सुबन्धन डोरि तें, खिंचि परगट ह्वै जायँगे।*
*कथा कीरतन रज्जु तें, उद्धवजी बँधि आयँगे॥*

# कीर्तन से कुसुमसरोवर पर उद्धवजी का प्राकट्य

## ( ३१ )

संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः
श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम् ।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषम्
यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः ॥*
(श्रीभा० १२ स्क० १२ अ० ४७ श्लो०)

### छप्पय

*है प्रसन्न प्रभु प्रिया तुरत महलनि महँ आई ।*
*वज्र परीक्षित् निकट आइ सब बात बताई ॥*
*उभय नृपति मन मुदित महोत्सव महा मनायो ।*
*कुसुम सरोवर निकट भक्त मेला लगवायो ॥*
*कथा कृष्ण की कहैं मिलि, सब प्रभु-रस रँग महँ रँगे ।*
*बाजे विविध बजाइ कें, हरि कीर्तन करिवे लगे ॥*

---

* सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! भगवत् भक्त मिलकर जब भगवान् का अनन्त कीर्तन करते हैं, उनकी महिमा का श्रवण करते हैं, तो भगवान् उनके हृदय में प्रविष्ट होकर उनके हृदय के सम्पूर्ण दुःख अथवा अज्ञान को उसी प्रकार दूर कर देते हैं जिस प्रकार सूर्यनारायण अन्धकार को दूर कर देते हैं और प्रचण्ड पवन मेघ मालाओं को छिन्न-भिन्न कर देते हैं ।"

पाँच पंच जहाँ एक मत हो जाते हैं, वहाँ प्रभु प्रकट हो जाते हैं। पाँच पाँडव मिलकर महाभारत के भयंकर युद्ध को जीत लेते हैं। पाँच भूत मिलकर इतने बड़े ब्रह्मांड को बना देते हैं। पंचाग्नि तापकर तपस्वी भवसागर से पार हो जाते हैं, तथा पाँचों इन्द्रियों को वश में करके पंच तन्मात्राओं से उपरत रहकर योगी ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। इसी प्रकार एक मन के पाँच भक्त मिल जायँ तो भगवान् को प्रकट होने में देरी नहीं लगती, किन्तु कठिनता तो यह है, कि एक मन के भक्त मिलते नहीं, विभिन्न लोगों की विभिन्न भावनायें होती हैं, भिन्न-भिन्न संकल्प होते हैं, भिन्न-भिन्न मति होती है। 'मुन्डे-मुन्डे मतिभिन्ना' वाली कहावत चरितार्थ होती है,इसीलिये एकता का बल नहीं मिलता। पाँच तार एक में बट दिये जायँ तो उनका बल कितना बढ़ जाता है। तोड़ने पर भी वे नहीं टूटते। अतः कथा कीर्तन तथा समस्त सामूहिक साधनों में साधकों तथा सेवकों का एक मत होना एक संकल्प होना तथा एकात्मभाव होना परम आवश्यक है, तभी संकल्प की सिद्धि संभव है।

*सूतजी कहते हैं*—"मुनियो! कुसुमसरोवर पर महाराज परीक्षित् तथा वज्रनाभ की सन्निधि में भक्तों का एक बड़ा भारी मेला ही लग गया। दूर-दूर से भगवत् भक्त एकत्रित हुए। सभी को उत्सुकता थी, कि भगवान् के सचिव, सखा, सुहृद्, सहयोगी, सम्बन्धी, सेवक तथा सर्वस्व श्रीउद्धवजी का दर्शन होगा। पहिले के भक्तों ने तो भगवान् को प्रकट करने के लिये साधन किये थे, किन्तु यहाँ कुसुमसरोवर पर तो परम भगवत भक्त को प्रकट करने के लिये साधना हो रही थी। जो वस्तु जिसे प्रिय होती है उसकी प्रसन्नता के लिये वही वस्तु प्रस्तुत की जाती है। उद्धवजी तो कृष्ण कथा तथा कृष्ण कीर्तन के प्रेमी हैं, इसलिये उनकी प्रसन्नता के लिये इन्हीं सब साधनों का आयोजन किया

गया। जिनका कंठ सुरीला था, जिनकी वाणी में करुणा थी, जिनके संगीत में लोच था, वे ही सब भगवान् का गुणानुवाद

गाने लगे, बहुत से भक्त अश्रु बहाने लगे, कोई करुणा बढ़ने से

क्रंदन करने लगे, कोई ढाह मारकर रोने लगे। कोई भाव दिखा-दिखाकर अंग प्रत्यंगों को हिलाने लगे, कोई नाचने लगे, कोई मूर्छित होकर पछाड़ खाकर गिरने लगे, कोई हिलने लगे, कोई लड़खड़ाने लगे, कोई समझाने लगे, कोई ताल देने लगे, इस प्रकार सभी संसार को भूल गये, सभी को देश काल का भान नहीं रहा। सभी कृष्ण रस में सराबोर हो गये, सभी राधारमण के रंग में रंग गये, सभी के हृदय निर्मल बन गये। उन सबकी दृष्टि एक हो गयी, वह सृष्टि ही विचित्र बन गयी, सबके मन की वृत्ति ही बदल गयी।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! जब इस प्रकार सबकी मनोवृत्ति एकात्मता का अनुभव करने लगी, सभी एक मन एक प्राण हो गये तो उन्होंने देखा एक लता कुञ्ज से शनैः-शनैः उद्धवजी निकल रहे हैं। उस समय उनकी शोभा अपूर्व हो रही थी। वे श्रीकृष्ण का ध्यान करते-करते तादात्म्य भाव को प्राप्त हो गये थे। उनकी आकृति-प्रकृति, रङ्ग-रूप, पहिनावा-उढ़ावा चलन-चितवन, बोलन, उठन-बैठन, पादप्रक्षेप की गति तथा सभी कार्य श्रीकृष्ण के ही समान थे। उनके श्रीअंग का रंग जल भरे मेघों के समान, फूली हुई अलसी के समान, मयूर कंठ के समान तथा नीले कमल के समान श्यामवर्ण का था। वे भगवान की प्रसादी सभी आभूषणों को धारण किये हुए थे। उन्हीं का प्रसादी पीला पीताम्बर अस्त-व्यस्त भाव से उनके अंगों पर पड़ा लहरा रहा था। बाल बिखरे हुए थे, हाथ उठे हुए थे, हृदय भरा हुआ था। नेत्र निरन्तर बह रहे थे उनसे प्रेमाश्रुओं का प्रवाह उमड़-घुमड़ रहा था। उनके ओठ हिल रहे थे, कमल के सदृश उभय नयन खिल रहे थे, वायु से काले-काले घुँघराले लच्छेदार बाल खिल रहे थे। उनके मुखारविन्द पर तेज पुञ्ज चमक रहा था। पीताम्बर दमदम दमक रहा था। उनके चरण अटपट-पड़

रहे थे। वे लताओं से शनैः-शनैः निकल रहे थे। भक्तों की जब उद्धवजी पर दृष्टि पड़ी तो सभी अपने को कृतकृत्य समझने लगे, सभी अपने भाग्य की सराहना करने लगे, सभी एकटक भाव से विस्मित होकर चकित-चकित दृष्टि से बारम्बार उनकी शोभा को निहारने लगे। वे सुमधुर स्वर से गा रहे थे गोपीवल्लभ राधारमण ब्रजवल्लभी वल्लभ ऐसे सुमधुर सरस नामों का स्वर के सहित उच्चारण कर रहे थे।

उद्धवजी के आगमन से वह महामहोत्सव सफल हो गया, उसकी शोभा इसी प्रकार और बढ़ गयी जिस प्रकार सुन्दर स्वच्छ जल वाले घाट बँधे सरोवर की शोभा कमलों के खिल जाने से बढ़ जाती है, सुन्दर शोभायुक्त कामिनी की कमनीयता बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से बढ़ जाती है, निशा की शोभा पूर्णचन्द्र के उदय होने से बढ़ जाती है लता की शोभा पुष्पों के खिल जाने से बढ़ जाती है अथवा स्फटिक मणि की बनी अट्टालिका की शोभा चाँदनी के छिटक जाने से बढ़ जाती है।

उद्धवजी के दर्शनों से सभी आनन्द सागर में निमग्न हो गये, किसी को भी देह गेह की सुधि बुधि नहीं रही। उनके चित्त की वृत्ति अलौकिक आनन्द का अनुभव करती हुई दिव्यलोक में पहुँच गयी। वे सब के सब चेतना शून्य से हो गये। आँखें खुली की खुली रह जाने पर भी वे उद्धवजी को भली-भाँति नहीं देख सके। कुछ देर के पश्चात् उनकी मूर्छा दूर हुई चैतन्यता आई, सबने उठकर उद्धवजी की चरण वन्दना की। उनका विधिवत् पूजन किया। उच्चासन उन्हें बैठने को दिया, उन्हें सभी ने श्रीकृष्ण स्वरूप में ही निहारा, उसी भाव से उनकी पूजा भी की।"

सूतजी कह रहे हैं—मुनियो! हरि संकीर्तन का ऐसा सुन्दर समारोह देखकर उद्धवजी अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। उन्होंने महा-

राज परीक्षित् को हृदय से लगा लिया और अत्यन्त ही स्नेह से उनके सिर पर हाथ फेरते हुए कहने लगे—"राजन्! यह बड़े सौभाग्य की बात है, कि तुम्हारा मन श्रीकृष्ण संकीर्तन में लगा हुआ है। क्यों न हो आप तो विष्णुरात हैं भगवान् विष्णु ने ही तुम्हें दिया है, उन्होंने ही तुम्हारी रक्षा की है। पालन किया है। तुमने माता के उदर से ही कृष्ण कृपा प्राप्त की है। तुम्हारा कुल धन्य है। तुम्हारे पूर्वज धन्य हैं और तुम भी धन्य हो, तुम्हारे भाग्य की क्या सराहना की जाय। तुम्हारा तो चित्त सदा चित-चोर श्रीकृष्ण के ही प्रेम में रँगा रहता है।"

अत्यन्त ही विनीत भाव से महाराज परीक्षित् ने कहा—"प्रभो! मैं तो सबसे अधिक अभागी हूँ, मेरे पिता मुझे गर्भ में ही छोड़कर स्वर्ग सिधार गये, मैंने उनका मुख तक नहीं देखा, मेरे पितामह मुझे बालक ही छोड़कर महाप्रस्थान कर गये। मेरे दुर्बल कन्धों पर इतने बड़े भूमंडल का भार लाद गये। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने मुझे ब्रह्मास्त्र से बचाया, पाला पोसा जब तक मैं उनके पूरे दर्शन भी करने योग्य नहीं हुआ, आँख भर के एक बार उनके भली-भाँति दर्शन भी न कर सका, तभी सुना वे निजधाम पधार गये। आपके भी मैंने पहिले कभी इस रूप में दर्शन नहीं पाये। जब मैं बच्चा था, तब आप मुझे गोदी में उठा कर प्यार अवश्य करते थे, ऐसी कुछ याद पड़ती है। किन्तु ये बातें पुरानी हो गयीं मैं भूल गया। मैं तो यहाँ वज्रनाभ को देखने और दादियों के चरण स्पर्श करने आया था, संयोग वश आपके दर्शन हो गये, आपने आज मेरा आलिंगन किया, इससे मैं भाग्यशाली अवश्य बन गया।"

महाराज परीक्षित् को पुचकारते हुए और उनके आँसुओं को अपने पीताम्बर से पोंछते हुए उद्धवजी ने कहा—"बेटा! ऐसी बात नहीं कहते, संसार में तुम ही तो सबसे अधिक

भाग्यशाली हो, जो भगवान् ने तुम्हारे ऊपर इतनी कृपा की।
नौ महिने वे गर्भ में तुम्हारे साथ रहे। इसीलिये तो प्रभु की प्रियतमाओं के चरणों में तुम्हारी इतनी भक्ति है और वज्रनाभ के प्रति इतना प्रेम है। यह स्वाभाविक ही है। तुमने जो वज्रनाभ की प्रसन्नता के लिये व्रज का पुनर्वास तथा महोत्सव आदि का आयोजन किया है, यह तुम्हारे अनुरूप ही है। तुम अपने तन, मन, धन तथा समस्त राज्यपाट वैभव को श्रीकृष्ण का ही समझते हो, यह तुम्हारी विमल बुद्धि का ही प्रमाण है। देखो, भगवान ने हम सभी यादवों को मथुरा से द्वारका भेज दिया था। द्वारका में जाकर सभी ने इहलौकिक लीला समाप्त कर दी। किन्तु ये श्रीकृष्ण पत्नियाँ तथा वज्र सबसे अधिक बड़भागी हैं, कि श्रीकृष्ण ने इन्हें पुनः व्रजवास का सुयोग दिया। तुम व्रज के महत्व को जानते नहीं।"

परीक्षित् ने कहा—"महाराज! जानें कैसे! आप गुरुजन जब बतावेंगे तभी तो जान सकते हैं, कृपा करके हमें कुछ व्रज की महिमा सुनाइये।"

उद्धवजी ने कहा—"देखो, श्रीकृष्ण भगवान् चन्द्र के समान हैं। इसीलिये लोग उन्हें श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं। चन्द्रमा में से उसकी प्रभा निकाल दी जाय, तो प्रभाहीन चन्द्रमा की क्या शोभा होगी? हमारे इन व्रजचन्द्र की प्रभा हैं श्रीराधिकाजी। चन्द्रमा की शोभा आकाश में ही होती है। आकाश न हो तो चन्द्रमा अपनी आभा कहाँ बखेरे? इसलिये आकाश के स्थान में ही यह व्रज मण्डल है। उनकी लीला भूमि वृन्दावन है। जैसे चन्द्रमा अपनी सोलहों कलाओं से सम्पूर्ण लोक को प्रकाशित करता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण की सोलह कलायें सहस्रों असंख्यों रूप रखकर इस भगवत् लीला धाम को प्रकाशित करती हैं। हे पांडव कुल तिलक राजन्! श्रीकृष्णचन्द्र और प्राकृत चन्द्र की

तुलना ही क्या हो सकती है। प्राकृत चन्द्र तो घटता-बढ़ता रहता है, एकरस नहीं रहता, आकाश में सर्वदा दृष्टिगोचर भी नहीं होता, किन्तु इन श्रीकृष्णचन्द्र में तो ह्रास नहीं, वृद्धि नहीं, क्षय नहीं, घटाव-बढ़ाव नहीं, सदा समरस रहते हैं, सदा सर्वदा एक-सा प्रकाशित रहते हैं। व्रज में वे सदा रहते हैं, व्रज उनका शरीर है, जैसे वे अप्राकृतिक, चिन्मय, नित्य तथा निरंजन हैं, वैसे ही उनका शरीर यह वृन्दावन भी चिन्मय तथा नित्य है। व्रज में और श्रीकृष्ण में तत्त्वतः कोई भेद नहीं। इस प्रकार विचार करो तो व्रज में रहने वाले सभी व्रजवासी भगवान् के अंग में ही निवास करते हैं। किसी का स्थान कोई अंग है किसी का कोई।"

परीक्षित ने पूछा—"भगवन्! हमारे ये वज्रनाभ भी व्रज-वासी ही हैं। भगवान् के किस अंग में इनका वास है?"

उद्धवजी ने कहा—"वज्रनाभ का स्थान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के दाहिने श्रीचरण में है।"

परीक्षित ने पूछा—"जब ये श्रीकृष्ण के दाहिने चरण में स्थित हैं, तब तो इन्हें शोक मोह करना ही न चाहिये, किन्तु ये बड़े दुखी रहते हैं।"

शीघ्रता के साथ उद्धवजी ने कहा—"यही तो उन मायेश की माया है, यही तो उन योगेश्वर की योगमाया का प्रभाव है। इस अवतार में भगवान् ने अपनी योगमाया के प्रभाव से सभी को अभिभूत कर दिया है। वज्रनाभ भी इसी के चक्कर में हैं। जैसे दर्पण पर पर्दा पड़ जाय तो मनुष्य अपने रूप को दर्पण होते हुए भी नहीं देख सकता इसी प्रकार ये वज्र भी व्रज में रहते हुए भी अपने स्वरूप को भूले हुए हैं और अपने को दुखी अनुभव करते हैं। जब तक दर्पण पर से पर्दा नहीं उठता तब तक उसमें स्वरूप दर्शन हो नहीं सकता। पर्दा भी उठ जाय और

उस स्थान में प्रकाश न हो तब भी रूप नहीं दीखेगा। प्रकाश स्वरूप तो श्रीकृष्ण ही हैं, जीवों के हृदयों में श्रीकृष्ण का प्रकाश विद्यमान है किन्तु उस पर योगमाया ने पर्दा डाल दिया है। उस पर्दा को श्रीकृष्ण ही हटा सकते हैं।"

परीक्षित् ने पूछा—"प्रभो ! अन्तःकरण के पर्दा को भगवान श्रीकृष्ण कब हटाते हैं ?"

उद्धवजी ने कहा—"अभी इसी अट्ठाईसवें द्वापर के अन्त में भगवान् ने अवतार धारण करके समस्त व्रजवासियों के माया के पर्दे को हटा दिया था। जो यादव देवताओं के अंश थे उन्हें उनके अंशियों में भेज दिया। नित्य पार्षदों को लेकर अपने परिकर के साथ क्रीड़ा करते रहे और जो शरणागतप्रपन्न प्रेमीभक्त थे उन्हें अपने मण्डल में मिला लिया। अज्ञान दूर हो गया तभी तो भगवान् के स्वधाम पधारने के अनन्तर प्रकट रूप से व्रज में कोई रह ही नहीं गया। सर्वत्र वन ही वन हो गया।"

इस पर महाराज परीक्षित् ने पूछा—"तब तो भगवन् ! बिना पुनः भगवान् का अवतार हुए, बिना फिर से अट्ठाईसवाँ द्वापर आये किसी का अज्ञान दूर ही न होगा। किसी को स्वरूप की प्राप्ति ही न होगी, किसी को भगवान का दर्शन ही न होगा ?"

इस पर उद्धवजी ने कहा—"होंगे क्यों नहीं दर्शन ? अवतार के समय के अतिरिक्त भी माया का परदा हटाया जा सकता है किन्तु इसका उपाय दूसरा है वह समय तो चला गया, भगवान तो अन्तर्हित हो गये।"

महाराज परीक्षित् ने कहा—"भगवन ! हमें आप उस दूसरे ही उपाय को बताइये। अवतार काल के अतिरिक्त समय में अज्ञान अन्धकार कैसे दूर हो ?"

उद्धवजी बोले—"इसके लिये भी भगवान ने उपाय बता

दिया है। श्रीमद्‌भागवत में भगवान् ने अपना निजी तेज स्थापित कर दिया है और यह वरदान दिया है कि जो मेरे अवतार काल के अतिरिक्त समय में प्रकाश प्राप्त करना चाहे तो उसे श्रीमद्-भागवत का श्रवण पठन नित्य नियम से करना चाहिये। भागवती कथाओं को सुनना तथा पढ़ना चाहिये।"

उद्धवजी कह रहे हैं—"राजन्! श्रीमद्‌भागवत भगवान् का ही रूप है। जहाँ भगवत् भक्तगण बैठकर प्रेम में विभोर होकर भगवत् सम्बन्धी कथाओं को कहते सुनते हैं वहाँ भगवान् वासुदेव अवश्य ही आ जाते हैं, जहाँ भगवान् के एक श्लोक या आधे श्लोक की भी नित्य नियम से कथा होती है वहाँ गोपीजन वल्लभ राधारमण अवश्य ही अपने परिकर सहित विराजमान हो जाते हैं। राजन्! इस परम पवित्र भारतवर्ष में जन्म लेकर जिन्होंने भागवती कथा का श्रवण पठन मनन नहीं किया उसका जन्म व्यर्थ है।"

महाराज परीक्षित् ने पूछा—"श्रीमद्‌भागवत का श्रवण किन-किन वर्ण के लोगों को करना चाहिये?"

उद्धवजी ने कहा—"इसका श्रवण सभी वर्ण के लोगों को करना चाहिये, ब्राह्मण, क्षत्रिय हों चाहे वैश्य, शूद्र, स्त्री, पुरुष, द्विजबन्धु, अन्त्यज, म्लेच्छ कोई क्यों न हो इसके श्रवण से सभी का मंगल होगा। इसके श्रवण पठन से ब्राह्मण को विद्या प्राप्त होगी, क्षत्रिय सुनें तो उन्हें विजय मिलेगी, वैश्यों को विपुल धन की प्राप्ति होगी, शूद्रों का स्वास्थ्य सुन्दर होगा और भी जो जिस कामना से इस ग्रन्थ को सुनेगा, उसकी वह कामना निश्चय ही सिद्ध होगी। जो श्रीमद्भागवत का श्रवण करता है वह अपने माता-पिता तथा पत्नी तीनों के कुल का उद्धार करता है। श्रीमद्भागवत श्रवण पठन मनन की तथा नित्य नियम से स्वाध्याय करने की रुचि पूर्वजन्म के अनेकों पुण्यों से प्राप्त होती

है। कलिकाल में इसी भागवत शास्त्र के सहारे से भगवान् का प्रकाश मिलता है। भागवती कथाओं से ही अज्ञानान्धकार दूर होता है। भागवत चरित गान से ही प्रभु प्राप्ति होती है। भगवत् भक्ति को प्राप्त करने का भागवत के अतिरिक्त कोई अन्य साधन नहीं। दूर कहाँ जाते हैं, मुझे ही देखिये, भागवत के सेवन से ही मुझे भगवान् का सान्निध्य प्राप्त हुआ। भागवत की ही कृपा से मैं प्रभु का परमप्रिय पात्र बन सका।"

महाराज परीक्षित् ने पूछा—"भगवन्! आपको भागवत की प्राप्ति किनके द्वारा हुई।"

उद्धवजी बोले—"मुझे मेरे गुरु भगवान् बृहस्पति ने भागवत ज्ञान प्रदान किया और मेरे गुरु को महर्षि सांख्यायन ने दिया। भागवत के कई प्रकार के अनुष्ठान हैं।"

परीक्षित् ने पूछा—"महाराज! भागवत के अनुष्ठान कै प्रकार के होते हैं, कितने दिनों में वे सम्पन्न होते हैं?"

उद्धवजी ने कहा—"राजन्! भागवत के साप्ताहिक, मासिक द्विमासिक तथा वार्षिक कई प्रकार के अनुष्ठान हैं। वे सात दिन में, एक मास में, दो मास तथा वर्ष भर में सम्पन्न होते हैं। इस सम्बन्ध की एक प्राचीन कथा है, इससे आपको इस विषय का ज्ञान भी हो जायगा और मेरी भागवत परम्परा को भी समझ जाओगे।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! यह कहकर उद्धवजी ने जो कथा सुनायी और अपनी भागवती परम्परा बतायी, उस प्रसंग को मैं आगे कहूँगा।"

छप्पय

तबई सबने लखे लतनि तैं ऊधो निकसत।
पीताम्बर वनमाल कमल सम लोचन विकसित ॥
कृष्णनाम गुनगान सुनत अतिशय हरषाये।
वज्र परीक्षित् उभय हरषि हिय तैं चिपटाये ॥
कहै—"धन्य तुम धन्य हो, कुरुकुल भूषन भूपवर।
बसैं वज्र व्रज वननि महँ, प्रभु पतिनिनि सिख सीसधर ॥

# सप्ताह-भागवत पारायण-राजस

[ ३२ ]

तथाप्येतर्हि कौरव्य सप्ताहं जीवितावधिः ।
उपकल्पय तत्सर्वं तावद् यत्साम्परायिकम् ॥*
(श्री भा० २ स्क० १ अ० १४ श्लोक)

छप्पय

*कृष्ण सतत ब्रज बसत अनत छिनकूँ नहिं जावैं ।*
*राधा सँग नित रास रचैं रस सुख सरसावैं ॥*
*मजई हरि को रूप अंग सबरे ब्रजवासी ।*
*वाम चरन महँ वज्र योग माया सुधि नासी ॥*
*कृष्ण कृपा तैं नसैं तम, कृष्ण भागवत एक सम ।*
*सुनी देवगुरु कथा हम, मिट्यो मोह अज्ञान तम ॥*

यह सम्पूर्ण संसार त्रिगुणमय है । तीनों गुण ही अखिल जगत् में व्याप्त हैं । गुणातीत तो एकमात्र श्रीहरि ही हैं । श्रीहरि अपने तीन रूप रखकर इस जगत् की उत्पत्ति स्थिति और संहार करते हैं । ब्रह्मा जो उनका रजोगुण का रूप है, उससे सृष्टि की उत्पत्ति करते हैं, विष्णु जो उनके सत्त्वगुण के रूप हैं,

---

* श्रीशुकदेवजी महाराज राजा परीक्षित से कह रहे हैं—"हे कुरुकुल में उत्पन्न राजन् आप घबड़ाते क्यों हैं, अभी तो आपके जीवन के सात दिन शेष हैं । मरना तो आपको सात ही दिनों में है, इस बीच में आप अपने परलोक सुधार का पूर्ण उपाय कर लीजिये ।"

उससे उत्पन्न हुई सृष्टि की रक्षा करते हैं और रुद्र जो उनका तमोगुणी रूप है उससे सृष्टि का नाश करते हैं। जिसकी उत्पत्ति है उसका नाश अवश्यम्भावी है। नाश के बिना उत्पत्ति ही नहीं, उत्पन्न हुए की मृत्यु ध्रुव है। अतः भगवान् की इच्छा के बिना न किसी की उत्पत्ति है, न रक्षा है, और न विनाश ही है, सब श्रीहरि की ही इच्छा से हो रहा है। सभी उन अखिलात्मा के संकेत पर नाच रहे हैं। संसार में ऐसा कोई नहीं है जो इन तीनों गुणों से अछूता हो, आप चाहें अतल, वितल, रसातल, पाताल तक चले जाइये अथवा जनलोक, तपलोक और सत्यलोक तक, सर्वत्र तीनों गुणों का ही विस्तार है। इन तीनों गुणों से भगवत् सम्बन्धी ज्ञान अर्थात् भागवत ही छुड़ा सकती है। भागवत के बिना दूसरा कोई उपाय नहीं। भागवत–ज्ञान–गंगाजी के समान निरन्तर बहता रहता है, जो गंगा की शरण में आता है, उसके समस्त पाप ताप छूट जाते हैं, वह निर्मल परम पावन बनकर प्रभु के पाद पद्मों तक पहुँच जाता है, अतः भागवत-ज्ञान ही इस त्रिगुण संसार से हटाकर त्रिगुणातीत बनाने में समर्थ है। अतः लोक परलोक की समस्त सिद्धियों के लिये भागवत ज्ञान का ही आश्रय लेना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भागवत तत्व भगवत् तत्व के ही सदृश सर्वव्यापक परिपूर्ण तथा असीम है। जैसे हम कहते हैं चरक में आयुर्वेद का मर्म है। इससे यह तो सिद्ध नहीं हुआ कि चरक में जो है वही आयुर्वेद है। आयुर्वेद एक विस्तृत विद्या का नाम है, उस विषय की पुस्तक एक चरक संहिता भी है, ऐसे सहस्रों संहितायें आयुर्वेद की थीं, काल प्रभाव से वे सब लुप्त हो गयीं। अब चरक मुनि की ही संहिता उपलब्ध है। इसी प्रकार व्याकरणादि सभी शास्त्रों के सम्बन्ध में समझना चाहिये। महामुनि पाणिनीय कृत अष्टाध्यायी ही व्याकरण नहीं है।

वैयाकरणों में एक पाणिनीय भी हैं, ऐसे अनेकों विद्वानों के बनाये व्याकरण हैं।

इसी प्रकार भागवत तत्व भी एक गम्भीर गहन विषय है। यह भी अपने में परिपूर्ण एक शास्त्र है। इसकी भी बहुत-सी परम्परायें रही होंगी। जैसे पाणिनीय मुनि ने अपने व्याकरण में प्रायः सभी मुख्य-मुख्य वैयाकरणों का पूजा-सत्कार के निमित्त उल्लेख कर दिया है, और प्रचलित सभी व्याकरणों का सार अपनी अष्टाध्यायी में भर दिया है, उसी प्रकार मेरे गुरू के भी गुरू भगवान् व्यासदेव ने भी अपनी संहिता में सभी भागवती संहिताओं का सार भर दिया है।"

शौनकजी ने पूछा—"तो क्या सूतजी ! भागवती संहिता भी अनेक हैं क्या ? हम तो समझते थे यह श्रीवेदव्यास कृत एक ही श्रीमद्भागवत संहिता है।"

सूतजी कहते हैं—"हाँ, भगवन् ! इस समय तो यही एक संहिता उपलब्ध है और इसमें प्रायः सभी सम्प्रदायों का सार आ गया है, वैसे श्रीभागवत की भी सम्प्रदाय भेद से अनेक सम्प्रदायें थीं। जैसे पहिले वेदों की ऋचायें बहुत थीं। वे इतनी बढ़ गयीं कि साधारण लोग उन्हें पढ़ नहीं सकते थे। इसलिये भगवान् व्यासदेव ने एक वेद की चार संहितायें बना दीं। उनमें से मुख्य-मुख्य ऋचायें रख लीं, शेष सब छाँट दीं। वर्तमान समय में जो वेद की चार संहितायें उपलब्ध हैं, उनका व्यास-विभाग हमारे परम गुरु भगवान् कृष्णद्वैपायन ने ही किया है। जितनी संहिता उपलब्ध हैं, वेद उतना ही है। अब भी सभी शाखायें उपलब्ध नहीं हैं, किन्तु जितना भी उपलब्ध है, मानव ज्ञान के लिये उतना ही पर्याप्त है। इसी प्रकार भागवत की भी दो सम्प्रदायें हैं, इनमें भी अनेकों शाखायें रही होंगी। उन सबका सार लेकर मेरे गुरुदेव ने इस पारमहंस्य संहिता की रचना की।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! श्रीमद्भागवत की मुख्य दो सम्प्रदायें कौन-कौन-सी हैं?"

सूतजी बोले—"महाराज! एक तो शेष सम्प्रदाय है, दूसरी शेषशायी सम्प्रदाय है। एक सम्प्रदाय के प्रवर्तक क्षीरशायी भगवान् लक्ष्मीनारायण हैं और दूसरी सम्प्रदाय के प्रवर्तक पाताल में जो भगवान् की सहस्रोंफण वाली—संकर्षण मूर्ति है वे हैं। तत्व तो एक ही है, किन्तु सांप्रदायिक परम्परा से कुछ भेद हो जाता है। जो वास्तव में भेद नहीं।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! हमें इन दोनों सम्प्रदायों की पहिले परम्परा बता दीजिये तब आगे बढ़िये।"

सूतजी बोले—"देखिये, भगवन्! भागवत-तत्व का ज्ञान सभी को नहीं होता, अनेकों जन्मों तक साधना करते-करते जब मनुष्य पूर्ण सिद्ध हो जाता है, तब श्रीमद्भागवत-तत्व की प्राप्ति होती है। भागवत-तत्व का प्रचार, प्रसार तथा प्रकाश भी सभी नहीं कर सकते। इसमें भी भगवान् की प्रत्यक्ष कृपा की आवश्यकता है। पहिले भागवती परम्परा पृथक् थी। किन्तु इस अट्ठाईसवें द्वापर के अन्त में सभी अवतारों के अवतारी परात् पर प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रजी प्रकट हुए। उन्होंने दोनों को एक कर दिया। भगवान् श्रीकृष्ण के तीन प्रधान कृपा पात्र शिष्य हैं। पहिले उद्धवजी, दूसरे विदुरजी और तीसरे मैत्रेयजी। इन्हीं के द्वारा इस समय भागवत का प्रचार-प्रसार हुआ। शेषशायी सम्प्रदाय की परम्परा तो ऐसे है। श्री भगवान् के नाभि कमल से भगवान् ब्रह्माजी हुए। श्रीमन्नारायण ने भागवत तत्व ब्रह्माजी को दिया। ब्रह्माजी ने नारदजी को बताया। नारदजी से व्यासजी ने पाया। व्यासजी ने शुकदेवजी को पढ़ाया। शुकदेवजी से मैंने पाया और मैंने आपको सुनाया। व्यास पुत्र मेरे गुरु परमहंस शुकदेव

के ही नाम से यह संहिता प्रचलित है, इसीलिये इसे पारमहंस्य संहिता कहते हैं।

दूसरी शेष सम्प्रदाय इस प्रकार है। अनन्त संकर्षण भगवान् ने सनक, सनन्दन, सनातन और सनत् कुमार को इसे पढ़ाया। महामुनि सनत् कुमार के शिष्य हुए परम व्रतशील सांख्यायन मुनि। सांख्यायन मुनि ने इसका विस्तार किया। उनके दो प्रधान शिष्य हुए एक तो बृहस्पतिजी दूसरे व्यासजी के पिता पराशर मुनि। पराशर मुनि के शिष्य तो हुए मैत्रेय मुनि और बृहस्पतिजी के शिष्य हुए उद्धवजी। विदुरजी व्यासजी के पुत्र ही थे। इस प्रकार ये तीनों फिर आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र के शिष्य हो गये। मैत्रेय मुनि और उद्धवजी ने प्रभास क्षेत्र में भगवान् के स्वधाम पधारने के पूर्व उनके श्रीमुख से भागवत तत्व सुना ही था। और वहीं भगवान् ने मैत्रेय मुनि को आज्ञा भी दे दी थी, कि मेरा परम भक्त उद्धव मेरे इस अन्तिम ज्ञान से वञ्चित न रह जाय, इसे तुम उसको अवश्य सुना देना। सो, व्रज में विदुरजी की भेंट उद्धवजी से हुई और हरिद्वार में उन्होंने यह ज्ञान मैत्रेय मुनि से सुना। इन दोनों सम्प्रदायों का सम्पूर्ण सार पारमहंस्य संहिता में विद्यमान है। उद्धवजी ने वज्रनाभ को भागवत सुनायी और शुकदेवजी ने महाराज परीक्षित् को सुनायी। उद्धवजी ने एक महीने में कुसुमसरोवर पर सुनायी और राजा परीक्षित् की जीवन अवधि ही सात दिन की थी, इसलिये शुकदेवजी ने उन्हें सात ही दिन में सुनायी। इसीलिये सप्ताह को राजस पारायण कहा है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! भागवत सप्ताह की तो आपने बड़ी भारी प्रशंसा की, उसे ही सबसे बढ़कर साधन बताया। अब आप इसे राजस पारायण कह रहे हैं।"

हँसकर सूतजी ने कहा—"महाराज! प्रशंसा तो मैं अब

भी करता हूँ, सर्वश्रेष्ठ साधन तो अब भी बताता हूँ, किन्तु जब पारायणों का तारतम्य करना होगा तब तो उनकी सात्विक, राजस और तामस संज्ञा बतानी होगी। भगवन्! ये गृहस्थी सदा संसारी चिन्ताओं में व्यस्त रहते हैं। इनके पास दीर्घकाल तक अनुष्ठान करने का न समय है, न इतने दिनों तक दीक्षा लेकर कठिन नियमों का पालन ही कर सकते हैं। इसीलिये गृहस्थों के लिये सप्ताह यज्ञ का विधान है, गृहस्थियों की तो बात ही क्या है, ब्रह्मा बाबा को भी सृष्टि की चिन्ता रहती है इसलिये वे भी भागवत का साप्ताहिक ही पारायण करते हैं। वे तो सभी के जनक हैं।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! ब्रह्माजी सप्ताह पारायण क्यों करते हैं? इस प्रसंग को हमें सुनाइये।"

सूतजी बोले—"हाँ, सुनिये महाराज! इस सम्बन्ध की एक कथा है। जो कुसुमसरोवर के उत्सव में प्रकट होकर उद्धवजी ने वज्रनाभ तथा राजा परीक्षित् को सुनायी थी। उद्धवजी ने कहा—"राजन्! मेरे गुरु बृहस्पति ने जो एक आख्या सुनायी थी, उसे ही मैं आपको सुनाता हूँ, इससे भागवत के सम्प्रदाय का भी ज्ञान होगा और उसके सात्विक, राजस, तामस भेद भी जाने जा सकेंगे। मेरे गुरु ने कहा था उद्धव! इस माया प्रपञ्च के आदि बीज श्रीकृष्ण ही हैं। श्रीकृष्ण से ही समस्त सृष्टि सम्भव है। किन्तु श्रीकृष्ण स्वयं कुछ करते-धरते नहीं। जैसे पुत्रों को राज्य-भार सौंपकर पिता वन में जाकर निश्चिन्त होकर तपस्या करते हैं। ऐसे ही श्रीकृष्ण भी सृष्टि का सम्पूर्ण भार अपने पुत्रों ब्रह्मा, विष्णु, महेश पर छोड़कर वृन्दावन में विहारिणी श्री राधाजी के साथ नित्य विहार करते रहते हैं। राग और भोग ही उनके दो कार्य हैं। वृन्दावन में विहार करने से ही वे वृन्दावन विहारी और राधाजी के साथ निरन्तर रमण करने से वे राधारमण

कहाते हैं, फिर भी सृष्टि उन्हीं के संकल्प से तो होती है। उनके संकल्प के बिना तो पत्ता भी नहीं हिल सकता।

एक बार उन मायातीत परम पुरुष परात्पर प्रभु श्रीकृष्ण ने सृष्टि का संकल्प किया। संकल्प करते ही तुरन्त उनके श्री विग्रह से तीन दिव्य पुरुष प्रकट हुए। अर्थात् तीनों गुणों के प्रतिनिधि स्वरूप उनके ही रूप थे। रजोगुण की जिनमें प्रधानता थी उनका नाम ब्रह्मा हुआ। सत्वगुण का जिनमें प्राबल्य था उनका नाम विष्णु हुआ और तमोगुण की प्रधानता से तीसरे पुरुष रुद्र कहाये। ब्रह्माजी ने पूछा—"महाराज ! मेरे लिये क्या आज्ञा है ?" भगवान् ने कहा—"भैया तुम सृष्टि करो।"

इसी प्रकार विष्णु को पालन करने का कार्य और रुद्रदेव को संहार का कार्य सौंपा गया। भगवान् के नाभिकमल से प्रकट होने के कारण ब्रह्माजी का नाम पद्मसंभव, पद्मयोनि हुआ।

पद्मयोनि ब्रह्माजी ने कहा—"प्रभो ! आपने मुझे सृष्टि करने का कार्य सौंपा है वह तो शिरोधार्य है, किन्तु मुझे एक बड़ी भारी शंका है ?"

भगवान ने कहा—"कौन-सी शंका है, उसे भी बताओ।"

ब्रह्माजी ने कहा—"प्रभो ! सृष्टि करने में तो मुझे कोई आपत्ति नहीं, आप तो जल में अर्थात् निर्मलता में, मधुरता में सोते रहते हैं। स्वच्छता और मधुरता आपका शयन का अयन है, इसीलिये आप नारायण नाम से विख्यात हैं। किन्तु मुझे सौंप रहे हैं सृष्टि वृद्धि का राजसी काम। काम तो कोई बुरा है ही नहीं। फिर जिसकी आप आज्ञा दें, जिससे आप कराना चाहें, उसमें बुरे-भले का भेद ही नहीं हो सकता। निरंतर आपकी स्मृति बनी रहे तो नरक-स्वर्ग, सुख-दुख, भला-बुरा, ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा, सभी समान हैं। आप मुझे कोई ऐसा उपाय बतावें कि हम

रजोगुण के अपने कर्तव्य कार्य को करते हुए भी आपकी स्मृति निरन्तर बनी रहे।"

भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है। हम तुम्हें एक ऐसी ओषधि देते हैं कि अपने कर्तव्य को करते हुए तुम उसमें लिप्त न हो।"

उद्धवजी कह रहे हैं—"सो राजन्! भगवान ने उन्हें श्रीमद्-भागवत का उपदेश देकर कहा देखिये, ब्रह्माजी! आप इस भागवत को न भूलें, इसका श्रद्धा से सदा सेवन करते रहेंगे तो सृष्टि करते हुए भी आपको कोई बाधा न होगी।"

ब्रह्माजी ने अपने चारों मस्तकों को भगवान् के चरणों पर रखते हुए कहा—"भगवन्! आपने बड़ी कृपा की। मैं इस भागवत का सदा सेवन करूँगा।" यह कहकर भगवान् ब्रह्मा अपने सृष्टि के कार्य में लग गये।"

उद्धवजी कह रहे हैं—"राजन्! ब्रह्माजी ने देखा इस ब्रह्मांड में सात प्रकृतियों के सात आवरण हैं, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंतत्व और महत्तत्व। अतः इन सातों आवरणों को भंग करने की इच्छा से उन्होंने भागवत का सप्ताह पारायण किया। इस सप्ताह के प्रभाव से उन्हें संसारी माया तनिक भी व्याप्त नहीं होती। न कभी उनका मन विचलित होता है, वे निरन्तर भगवत् स्मरण पूर्वक बारम्बार सृष्टि भी करते रहते हैं और उससे पृथक भी बने रहते हैं, जब भी उन्हें अवकाश मिलता है, सप्ताह यज्ञ की विधि से अत्यन्त विस्तार पूर्वक समग्र सामग्री एकत्रित करके भागवत सप्ताह कर लेते हैं। इससे उन्हें नूतन स्फूर्ति मिल जाती है, पुनः! अपने कार्य में जुट जाते हैं।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! इसीलिये सप्ताह यज्ञ को श्रेष्ठ कहा है। जब भी अवकाश मिले तुरन्त सप्ताह पारायण

कर लेना चाहिये। विशेष कर गृहस्थियों के लिये तो सप्ताह यज्ञ का ही विधान है।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! आपने सप्ताह को तो राजसी पारायण बताया। इसका अर्थ यह नहीं है कि इससे रजोगुण बढ़ता है, किन्तु रजोगुणी कार्य करते हुए भी भगवत स्मृति बनी रहती है, भगवान् को भूलते नहीं। अब कृपा करके हमें यह भी बताइये कि सात्विक पारायण कौन-सा है और इसका सर्वप्रथम अनुष्ठान किसने किया ?"

सूतजी कहते हैं—"भगवन् ! सत्वप्रधान देव तो श्रीविष्णु ही हैं, सात्विक पारायण तो वे ही करते रहते हैं। जिस प्रकार बृहस्पतिजी ने उद्धवजी को बताया और उद्धवजी ने कुसुमसरोवर पर प्रभु पत्नियों के समक्ष परीक्षित् तथा वज्रनाभ को सुनाया, उसी प्रसंग को मैं आपको सुनाता हूँ। आप सावधान होकर श्रवण करने की कृपा करें।"

छप्पय

*संकरसन सन सुनी भागवत सनत कुमर ने।*
*तिनि सांख्यायन दई पाइ तिनितें सुरगुरु ने॥*
*सुरगुरु मोकूँ दई कथा इक सुघर बनाई।*
*करयो कृष्ण संकल्प सृष्टि होवे सुखदाई॥*
*ब्रह्मा, विष्णु, महेश प्रभु, भये प्रकट तनतें तुरत।*
*रचना आयसु अज दई, पूछे अज—रज कस तरत॥*

## ऋतु अथवा मास पारायण-सात्त्विक

( ३३ )

देवता मुनयः सिद्धाः पितरो मनवो नृपाः।
यच्छन्ति कामान् गृणतः शृण्वतो यस्य कीर्तनात् ॥*
(श्री भा० १२ स्क० १२ अ० ६१ श्लो०)

छप्पय

*कृष्ण भागवत दई कह्यो सेवन नित करि हैं।*
*तो करतव करि करम, रजोगुन तैं तुम तरि हैं॥*
*प्रभु आयसु सिर धारि, कर्यो सप्ताह परायन।*
*रचना करि रज सहित, तऊ भूले न नरायन॥*
*कह्यो—विष्णु! पालन करो, प्रश्न करयो सत विजय हित।*
*तिनहु भागवत हरि दई, कह्यो लगाओ चित सतत॥*

संसार के सभी प्राणी गुणों की डोर में बँधे हैं। सभी प्रकृति या स्वभाव से विवश होकर कार्य करते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति रजोगुण के बिना हो नहीं सकती। चिन्ता और अहंता ये रजोगुण के धाम हैं। मुझे ऐसा करना है। यदि ऐसा हो गया तो

---

* सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! इस श्रीमद्भागवत के सुनने से, कीर्तन करने से, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता गण, मुनि, सिद्ध, पितर, मनु तथा अन्य राजागण कहने सुनने वाले दोनों के सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण कर देते हैं, उनके सभी इच्छित पदार्थों को दे देते हैं।"

इसका क्या परिणाम होगा, ये ही अहंता और चिंता के भाव रजोगुण का लक्षण हैं, शीघ्र से शीघ्र कार्य हो और बहुत से बहुत हो। इसी चिंता में पड़कर ब्रह्माजी सृष्टि करते हैं, कि शीघ्र से शीघ्र प्रजा की वृद्धि कैसे हो। ब्रह्माजी की बात छोड़ दीजिये, प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में ही नहीं प्रति दिन, प्रति क्षण सात्विकी, रजोगुणी तथा तमोगुणी भाव आते हैं, प्रत्येक व्यक्ति को ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश बनना पड़ता है। जब कोई संतानों को या किसी भी वस्तु को बनाता है, तब वह ब्रह्मा का कार्य रहता है, बनाकर उसका पालन करता है, विष्णु का कार्य करता है, जब क्रोध करके या अन्य और किसी कारण से उसे नष्ट करना चाहता है, बनी वस्तु को मिटा देता है वह रुद्र बन जाता है। पहिले मनुष्य पेड़ों से छाल ले आते थे, शीत तथा लज्जा निवारण कर लेते थे, अहंता बढ़ी, वस्त्र अच्छा सुन्दर होना चाहिये। कपास पैदा करने लगे। उसका हाथ से वस्त्र बनाया, पहिना, किन्तु चिन्ता का तो अंत नहीं इससे भी अच्छा बने, इससे भी शीघ्र बने। इसके लिये चरखा बना करघा बना। इतने पर भी संतोष न हुआ, कल कारखाने बने, कलों का यन्त्रों का युग आ गया। क्षण भर में अधिक से अधिक, सुन्दर वस्त्र तैयार हो। यही बात सबके विषय में समझ लो, यात्रा के लिये भगवान् ने पैर दिये थे, जहाँ चाहो चले जाओ। किन्तु रजोगुणी लोगों ने सोचा शीघ्र से शीघ्र कम समय में दूर से दूर स्थान पर पहुँच जायँ। अपने पैरों से संभव न हो सका तो बैलों और घोड़ों के पैरों से भगने लगे, वे भी सजीव प्राणी थे, मर्यादा में ही दौड़ सकते थे, उन्हें श्रम क्लम होता था, तब निर्जीव घोड़ा निर्जीव गाड़ी वाष्प तैल की सहायता से बनायी, फिर वायुयान बनाया, इतने पर भी संतोष नहीं। यह रजोगुण कहाँ ले जाकर पटक देगा, प्राणी को पता नहीं! यह भौतिक

वस्तुओं के प्रति यह शीघ्रता तथा चिन्ता हमें अधिकाधिक परमार्थ से दूर ले जाती है।

परमार्थ पथ में भी जो राजसी स्वभाव के लोग हैं, शीघ्रता करते हैं। शीघ्र-शीघ्र उल्टी सीधी पूजा कर लेंगे, जैसे तैसे माला फेर लेंगे। उन्हें सब काम शीघ्रता से चाहिये और अधिक फल देने वाला चाहिये। पूरी भागवत का पारायण सात ही दिनों में हो जाय, इससे जितना चाहिये उतना आनन्द आता नहीं, किन्तु मानसिक सन्तोष हो जाता है—"अच्छा है, इस झंझट में फँसे रहने पर एक शुभ काम तो हमसे बन ही गया।"

सात्विक कार्य में तत्परता और लगन तो रहती है, साथ ही गंभीरता भी होती है। सात्विक प्रकृति के लोग न बहुत चिन्ता करते हैं न अत्यन्त शीघ्रता ही। धीर गंभीर भाव से उस कार्य को प्रेम पूर्वक सम्पन्न करेंगे। उनके पारमार्थिक कार्य भी बहुत तड़क-भड़क दिखावे और प्रदर्शन से रहित होते हैं। उनमें यह भाव नहीं होता कि जैसे तैसे इस कार्य से शीघ्र ही पिंड छूट जाय, वे ठिकाने से ठोस कार्य करते हैं और उन्हें उसमें रस भी विशेष आता है इसीलिये जहाँ तक हो, पारमार्थिक कार्यों को घरबार की चिन्ता छोड़कर, अहंता ममता को कम करके, शीघ्रता की ओर दृष्टि न रखकर आनन्द आवे, इस भावना से सात्विक ही कार्य करना चाहिये। सात्विक कार्यों में अत्यधिक आनन्द आता है।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! बृहस्पतिजी ने जो अपने शिष्य उद्धवजी को कथा सुनायी थी, उसी को उद्धवजी वज्रनाभ और परीक्षित् को सुना रहे हैं।

जब भगवान् ने ब्रह्माजी को भागवत देकर विदा कर दिया और वे उसका सप्ताह विधि से पारायण करने लगे तब श्रीकृष्ण भगवान् ने अपने ही अपर स्वरूप विष्णु भगवान् से कहा—

"विष्णो! तुम ब्रह्माजी द्वारा की हुई सृष्टि का पालन करो। सृष्टि में विघात करने वाले जो असुर हों उनका विनाश करो। नाना अवतार लेकर शिष्टों का पालन और दुष्टों का दमन करो।"

भगवान् विष्णु ने कहा—"देव! आप मुझे बड़ा कठिन कार्य सौंप रहे हैं। सृष्टि को हानि पहुँचाने के लिये असुर तो उत्पन्न होंगे ही, मुझे उनसे निरन्तर लड़ना पड़ेगा। मार धाड़ करनी पड़ेगी, नाना ऊँच नीच योनियों में अवतार लेना पड़ेगा। पालन का कार्य है तो सत्व गुण का। कार्य फिर भी सत्व गुण हो रजोगुण अथवा तमोगुण ये सब हैं तो बन्धन के ही हेतु, इसलिये आप मुझे इतना कठिन कार्य क्यों सौंप रहे हैं?"

श्रीकृष्ण ने कहा—"देखो जी, विष्णु देव! यह सृष्टि तो आनन्द के लिये क्रीड़ा के लिये है। इसे अज्ञ जन दुःख रूप अनुभव करते हैं। तुम इतने कार्य करना—

१—संसार में दो मार्ग हैं, प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग। प्रवृत्ति मार्ग तो वैदिक कर्मों के अनुष्ठान द्वारा सम्पन्न होता है और निवृत्ति मार्ग ज्ञान के द्वारा। तीसरा उपासना या भक्ति मार्ग है। आप इन सभी मार्गों की मर्यादा बाँधे रखो, सभी इन मार्गों का अधिकारानुसार अनुसरण करें।

२—यह सृष्टि धर्म पर ही स्थित है। जब-जब पृथ्वी पर धर्म घट जाय और अधर्म की वृद्धि हो जाय तो तुम समय-समय पर नाना अवतार धारण कर धर्म की स्थापना किया करो।

३—जो सकाम कर्म करने वाले हों, भोगों की इच्छा से नाना प्रकार के यज्ञ याग करते हों, उनको उनके भावों और विधि के अनुसार यज्ञ अनुष्ठानों का फल दिया करो।

४—जो लोग मुमुक्षु हों, मुक्ति की इच्छा से-संसार बन्धनों से छूटने की भावना से-साधन करते हों उन्हें आप सालोक्य,

सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और कैवल्य ये पाँच प्रकार की मुक्ति दिया करें।

ये सभी कार्य सृष्टि रक्षा के लिये आवश्यक हैं, आप इन सब को करने में समर्थ हैं, अतः प्रजा पालन के प्रतिष्ठित पद को आप सम्हालें और सृष्टि विस्तार कार्य में प्रेम पूर्वक योग दें।"

भगवान् विष्णु ने कहा—"प्रभो! यह सब तो सत्य है, इन सब कार्यों को तो मैं कर लूँगा, भोगेच्छु को भोग तथा मोक्ष की इच्छा रखने वालों को मुक्ति तो मैं प्रदान करता ही रहूँगा। किन्तु एक भक्त आपके और भी अटपटे स्वभाव के होते हैं, जो भोगों की तो बात ही क्या देने पर भी पाँच प्रकार की मुक्ति को भी नहीं चाहते। उनसे मैं कैसे सुलझूँगा? उनको क्या देकर प्रसन्न करूँगा?"

श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा—"उनके लिये भी मैं उपाय करूँगा, उनके सन्तोष के लिये भी तुम्हें अमूल्य वस्तु दूँगा।"

विष्णु भगवान् बोले—"महाराज! एक बात और रह गयी। आप हमें इतने उत्तरदायित्व पूर्ण पद पर प्रतिष्ठित तो करते हैं, किन्तु काजर की कोठरी में कैसो हू सुजान चला जाय, कहीं न कहीं कालिख तो लग ही जाती है, इस परम-सात्विक कार्य को करते रहते हुए भी अपनी रक्षा कैसे कर सकूँगा और मेरी बगल में बैठी हुई ये मेरी बहू रानी-मेरी आद्या शक्ति-लक्ष्मीजी की भी रक्षा कैसे होगी, इसका भी उपाय बताइये। इस सत्त्व गुण में भी हम निर्लिप्त बने रहें, इसकी भी समुचित व्यवस्था कर दीजिये।"

श्रीकृष्ण भगवान् बोले—"विष्णुजी! आप इसकी तनिक भी चिन्ता न करें। यह लीजिये 'भागवत शास्त्र' इसका आप नियमित पाठ किया करें। इसके पाठ से आपके समस्त मनोरथ

पूर्ण हो जायँगे। आपके मन में कोई भी चिन्ता न रहेगी और दुर्घट से दुर्घट कार्य सहज में हो जायँगे।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी से आज्ञा लेकर भगवान् विष्णु अपने पद पर प्रतिष्ठित हो गये और भागवती कथा को नित्य नियम से पढ़ने सुनने लगे, इससे इन्हें प्रजा पालन में तनिक भी श्रम नहीं करना पड़ता। सब कार्य आप से आप हो जाते हैं, दूसरे लोग जिसे आपत्ति समझते हैं, वह उनके लिये वरदान सिद्ध होता है। एक बार भगवान् का सिर कट गया था, भागवत ज्ञान के कारण उससे भी लोक का कल्याण ही हुआ, वह भी प्रजा पालन में सहायक ही हुआ।"

यह सुनकर आश्चर्य के साथ शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! विष्णु भगवान् का सिर किसने काट लिया, यह तो आप बड़ी ही अद्भुत बात सुना रहे हैं। कभी भी पराजित न होने वाले अपराजित विष्णु के सिर काटने का साहस किसका हुआ? कृपा करके इस कथा को हमें सुनाकर तब आगे का प्रसंग कहिये।"

हँसकर सूतजी ने कहा—"महाराज! आप इतना आश्चर्य क्यों कर रहे हैं, किसी ने उनका सिर काटा थोड़े ही था, वह तो उन्होंने अपने आप अपना सिर धड़ से पृथक कर दिया। खेल करने को ऐसा नाटक रचा। यह सब मायेश की माया है, लीला धारी की लीला है। खिलाड़ी का खेल है। सुनिये, मैं आपको इस कथा को अत्यन्त ही संक्षेप में सुनाता हूँ।

एक बार एक बड़ा ही बली असुर उत्पन्न हुआ उसका नाम था हयग्रीव। घोड़े की भाँति इसका मुख था। उसने लखों वर्ष तक घोर तपस्या की। ऐसा विकट तप किया कि महा माया जगदम्बा का सिंहासन हिल उठा। उसने शक्ति की ही आराधना की थी। उसके तप के कारण भगवती प्रसन्न हुई और उसके सम्मुख प्रकट होकर वर माँगने को कहा।

मुनिवर ! ये असुर लोग इस शरीर से ही ममता रखते हैं, वे इसे ही सब कुछ समझ कर इसको नित्य बनाना चाहते हैं, जो स्वभाव से अनित्य, नाशवान्, परिणाम शील तथा क्षयिष्णु है वह अजर अमर कैसे हो सकता है ? किन्तु अधर्म को धर्ममान कर कार्य करना यही तो आसुरी भाव है। इस भाव से की हुई तामस तपस्या भी तामसी गति देती है। किन्तु तपस्या का फल तो सदा शुभ ही होता है, जैसे भाव से की जाय, उसी भाव से भगवान् के दर्शन होते हैं। लड़ने की भावना से-विजय की इच्छा से-यह तप होता है, उनसे भगवान् आकर लड़ते हैं और मार कर उन्हें गति देते हैं। उस असुर ने भी भगवती से यही वर माँगा—"देवि ! मैं अजर अमर हो जाऊँ, किसी से भी न मरूँ।"

देवि ने कहा—"भैया ! जिसका जन्म है उसकी मृत्यु अवश्य है। तुम कोई ऐसा वर माँगलो, जिससे किसी प्रकार तुम्हें मृत्यु की संभावना ही न हो।"

उसने सोचा—"मेरा घोड़ा का सा मुख है, ऐसा संसार में दूसरा कौन होगा। मैंने तो आज तक ऐसा कोई प्राणी देखा नहीं। यही सोचकर उसने कहा—"अच्छा, और किसी से मेरी मृत्यु न हो, यदि हो भी तो मेरी ही आकृति के मेरे ही नाम के व्यक्ति से हो।"

यह सुनकर देवी ने कहा—"अच्छा, ऐसा ही होगा। यह कह कर वे अन्तर्धान हो गयीं। अब तो वह वरदान के मद में भरकर सर्वत्र मन मानी करने लगा। अपने को अजर अमर अपराजित मानकर प्रजा को पीड़ा देने लगा।

भगवान् विष्णु ने जब सुना दक्षिण में असुर बहुत उपद्रव कर रहे हैं, तो वे उनसे लड़ने गये। सहस्रों वर्षों तक युद्ध करते रहे, किन्तु बलवान असुर पराजित नहीं हुए। इतने दिन लड़ते-

लड़ते विष्णु भगवान् भी श्रमित हो गये थे, उन्होंने सोचा—"तनिक कहीं एकान्त में चल कर निद्रा ले लें, अपने श्रम को मिटा लें, तब फिर युद्ध करेंगे।"

यह सोचकर वे रामेश्वर के आगे धनुष्कोटि स्थान में आकर अपने धनुष की आड़ लगाकर लेट गये। श्रमित तो थे ही। पड़ते ही गहरी निद्रा आ गयी और सुख पूर्वक सो गये। इधर इन्द्रादि देवों ने कोई यज्ञ करना चाहा, उसमें भाग लेने के लिये भगवान् को निमन्त्रित करने बैकुंठ गये। वहाँ भगवान् को न देखकर उन्होंने लक्ष्मीजी से पूछा—"माताजी! भगवान् कहाँ गये हैं?"

लक्ष्मीजी ने कहा—"भैया! उन पर दूसरा काम ही क्या है। नित्य लड़ाई झगड़ा करना और बहुरूपियों की भाँति नये-नये विचित्र-विचित्र रूप बनाना। अब मुझे तो पता है नहीं कहाँ गये। यहाँ से अपना दिव्य शारंग धनुष लेकर सुसज्जित होकर कहीं गये थे। किसी से लड़ाई झगड़ा कर रहे होंगे। तुम लोग जाकर खोज करो। मुझे भी सूचना दे देना।"

सब देवता यह सुनकर ब्रह्माजी के पास गये, ब्रह्माजी शिवजी के पास गये। अब वह अन्वेषण मंडल भगवान् की खोज में पर्यटन करने लगा। खोजते-खोजते समुद्र के किनारे देखा, भगवान् धनुष का तकिया लगाकर आनन्द से योगनिद्रा में पड़े घुर्राटे भर रहे हैं। देवताओं ने आपस में उच्च स्वर से बातें आरम्भ कर दीं, कि भगवान् हल्ला सुनकर जाग पड़ें। किन्तु भगवान् इतने थके थे, कि टस से मस नहीं हुए। सब देवताओं ने ब्रह्माजी से कहा—"महाराज! आप ही भगवान् को जगाइये।" ब्रह्माजी ने शिवजी पर बात टाल दी। अब सब शिवजी के पीछे पड़े। शिवजी ने कहा—"थके आदमी को गहरी निद्रा से जगाने

पर ब्रह्महत्या का पाप लगता है। मैं अपने सिर पाप क्यों लूँ, मैं भैया ! नहीं जगा सकता।"

अब सब फिर ब्रह्माबाबा के चारों मुखों की ओर देखने लगे। ब्रह्माजी ने कहा—"अच्छा देखो, मैं एक उपाय करता हूँ, संभव है कुछ सफलीभूत हो जाय।" यह कहकर उन्होंने दीमकों को उत्पन्न किया और उनसे कहा—"तुम भगवान् की निद्रा भंग करो।"

दीमकों ने कहा—"महाराज ! सब काम स्वार्थ से होता है। हमारा क्या स्वार्थ सधेगा। हम क्यों देव की निद्रा भंग करके पाप और अपयश की भागिनी बनें।"

ब्रह्माजी ने उन्हें लालच देते हुए कहा—"अरे, इसमें कौन-सा पाप है, परोपकार का कार्य है, देवताओं का काम है, तुम्हें भी यज्ञ में भाग मिल जायगा। अग्नि से बचा भूमि पर पड़ा हवि तुम्हें भी खाने को मिल जाया करेगा।"

प्राणी भोजन के लालच में पड़कर न जाने क्या-क्या पाप कर डालता है, दीमक भी जाकर भगवान् के श्रीअंग पर रेंगने लगीं। किन्तु भगवान् वैसे ही निद्रा का मीठा-मीठा सुख लेते रहे। अब दीमक वहाँ भी अपना भोजन खोजने लगीं। धनुष तो अभेद्यबान् का बना था। उसकी ज्या डोरी खाने योग्य थी। दीमक उसे ही खाने लगीं। खाते-खाते जब डोरी टूटी तो धनुष घोर शब्द करता हुआ छूटकर आकाश में उड़ा। उसके साथ ही भगवान् का सिर भी धड़ से पृथक् होकर न जाने कहाँ उड़ गया। भगवान् उठकर खड़े हुए। हाथ से टटोला धड़ पर सिर नहीं। देवता हाय-हाय करने लगे, ब्रह्माजी रोने लगे। ऐसी रोवा-रार मची सर्वत्र कोलाहल मच गया। लक्ष्मीजी को भी समाचार मिला। वे तो सब इनकी लीला जानती ही थीं कि ये कभी सूअर बन जाते हैं, कछुआ, मछली, कभी आधे पुरुष आधे सिंह।

अब भी कोई नाटक रचना चाहते होंगे, किन्तु सबको रोते देखकर वे भी हाय-हाय करने लगीं।

ब्रह्माजी ने हड़बड़ाहट के साथ कहा—"शीघ्रता से कहीं खोजकर भगवान् का सिर लाओ, मैं अभी इसे धड़ पर जमाता हूँ।" यह सुनकर पवन देव दौड़े, सूर्य, चन्द्रमा, अश्विनीकुमार सभी ने खोज की। सिर का पता नहीं। लक्ष्मीजी के पिता समुद्र ने कहीं चुराकर उसे ऐसा छिपा दिया कि किसी को पता ही न चला। उसी समय दैवयोग से एक घोड़ा वहाँ आ गया। ब्रह्माजी ने तुरन्त उस घोड़े का सिर काटकर भगवान् के धड़ पर जमा दिया। अब भगवान् घोड़े की भाँति सिर हिलाने लगे।

अब तक तो लक्ष्मीजी झूठ-मूठ रो रही थीं, भगवान् को सिर हिलाते देखकर वे अपनी हँसी रोक न सकीं और हँसते-हँसते हाथ जोड़कर बोलीं—"भले बने हो नाथ।"

भगवान् ने तुरन्त इधर-उधर देखा, देवता स्तुति कर रहे थे, उनकी ओर दृष्टि भी नहीं डाली। हाथ में धनुष लिया, उसकी डोरी चढ़ाई और चल दिये देवताओं के शत्रु हयग्रीव दैत्य के समीप। वहाँ जाकर उसे युद्ध में मारा। मारकर तुरन्त वैकुण्ठ में आकर अपनी विजय का समाचार लक्ष्मीजी को सुनाया। लक्ष्मी ने अपनी साड़ी मुख में ठूँसते हुए कहा—"जय हो बहुरूपिया भर्तार की। देवता जी! कभी मेरा मुख घोड़ी का मत बना देना।"

भगवान् ने हँसकर कहा—"देवि! यह तो मेरी लीला है, खेल है, क्रीड़ा है, मनोविनोद है।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! इतना युद्ध, लड़ाई, झगड़ा करने पर भी भगवान को इसका तनिक भी आभास नहीं होता। इतने विभिन्न विचित्र रूप रखने पर भी उनके यथार्थ स्वरूप में,

पूर्ण ज्ञान-विज्ञान में लेश मात्र की भी विकृति नहीं होती, यह भागवती कथा—"के पारायण का ही प्रभाव है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! भगवान् के यहाँ कौन कथा कहता है, कौन सुनता है, कितने दिन का पारायण होता है?"

यह सुनकर सूतजी ने कहा—"महाराज! सच्ची बात बताऊँ श्रोता वक्ता जब दोनों ही एक मन प्राण के होते हैं, तभी कथा में अत्यधिक आनन्द आता है। कथा में रस तो श्रोता वक्ताओं का अनुराग ही निर्माण करता है। यों कथा कहनी पड़े तब तो जो आ जाय उसी को सुनानी पड़ती है। जिनका कथा कहने का ही काम है, जैसे मेरा है उन्हें तो कोई मन से सुने या बिना मन से कहनी ही पड़ती है, अपना कर्तव्य पालन करना ही पड़ता है। कर्तव्य में कठोरता होती है, प्रेम में, अनुराग में, स्नेह में, प्यार में, दुलार में सरसता होती है, आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ता है। वह कथा क्या है, ब्रह्मानन्द अमृत का अपूर्व अद्भुत सागर है।"

इस पर शौनकजी ने कहा—"तो क्या सूतजी! हम आपकी कथा को प्रेम से नहीं सुनते? हमें तो आपकी कथा में बड़ा आनन्द आता है।"

सूतजी ने कहा—"नहीं महाराज! मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि आप प्रेम से नहीं सुनते। आप सब भी बड़े अनुराग से सुनते हैं, मैं भी कोई व्यवसायी कथावाचक की भाँति कथा नहीं कहता। किन्तु भगवन्! सरसता का अनुराग एक अपूर्व ही वस्तु है। आप तो ठहरे बाबाजी, अब आपको क्या बतावें। भगवन्! यदि पति पत्नी में प्रगाढ़ प्रेम भरित हृदय से पति अपनी पत्नी को कथा सुनावे तो उस रस के सम्मुख सभी रस तुच्छ हैं। यदि कहीं पत्नी वक्ता बन के बैठ जाय और पति को श्रोता बनाकर भागवती कथा सुनावे तब तो अहा! क्या

पूछना है, उस कोकिल कंठ कान्ता की कमनीय कथा के आनन्द की। यह सौभाग्य तो विष्णु भगवान् को ही प्राप्त है। भगवान् नित्य नियम से मासिक पारायण करते हैं। एक महीने में स्वयं कथा कहते हैं, लक्ष्मीजी श्रद्धा पूर्वक सुनती हैं। किन्तु जब भगवान् लक्ष्मीजी से कथा कहने को कहते हैं, उन्हें वक्ता बनाकर स्वयं श्रोता बनकर सुनते हैं, तब उसमें एक ऋतु अर्थात् दो महीने लगते हैं। लक्ष्मीजी की कथा के सम्मुख भगवान् की कथा फीकी पड़ जाती है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! लक्ष्मीजी को उसी कथा में दो महीने क्यों लग जाते हैं? भगवान् विष्णु से बढ़कर आनन्द-प्रद उनकी कथा क्यों होती है?"

हँसते हुए सूतजी ने कहा—"भगवन्! आपने तो कभी गृहस्थी की नहीं, बालकपन से ही बाबाजी बन गये हो। यदि गृहस्थ में कुछ दिन भी रहे होते तो आप फिर यह प्रश्न ही न करते। गृहस्थी को संसार का जितना ऊँच-नीच अनुभव होता है वह बिना स्वयं गृहस्थी बने किसी दूसरे को होना असंभव है। महाराज! कितना भी समृद्ध, कितना भी साधन सम्पन्न गृहस्थी क्यों न हो उसे प्रतिक्षण कोई न कोई चिन्ता लगी ही रहती है। माला फेरेगा, तो चिन्ता, भोजन करेगा तो चिन्ता। यह प्रतिष्ठा का पद, कर्तव्य का उत्तरदायित्व ऐसा होता है, कि इच्छा न रहने पर भी उसकी चिन्ता करनी पड़ती है। पति को घर के बाहर की चिन्ता रहती है और पत्नी को घर के भीतर की चिन्ता होती है, इसीलिये उसका नाम गृहिणी है। दोनों के क्षेत्र पृथक् रहने पर भी हृदय एक ही रहता है, गृहिणी पति के बिना पूछे बाहर के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करती और पति बिना पत्नी की अनुमति के घर के कार्यों को नहीं पूछता। वह घर के कामों से सदा निश्चिन्त बना रहता है, बुद्धिमती पत्नी पति को घर की

चिन्ताओं से सदा मुक्त बनाये रखती है। वह सोचती है ये तो बाहर की अपने पद प्रतिष्ठा, अधिकार की ही चिन्ता में मग्न रहते हैं, घर में आकर इन्हें अधिक से अधिक सुख पहुँचाना चाहिये, जिससे बाहर की चिन्ताओं को भूल जायँ। इसी प्रकार सत्पति सोचता है, इसे घर में ही बहुत कार्य हैं, सबके भोजन का प्रबन्ध करना, बाल-बच्चों की रेख-देख, आय-व्यय लेखा-जोखा, अतिथि आगतो स्वागत सत्कार इसी में व्यस्त रहती है, इसे हम बाहरी झंझटों को सुनाकर और चिन्ता मग्न क्यों करें। इसीलिये वह बाहर के झगड़े चिन्ता सम्बन्धी बातों को भर सक सुनाता नहीं। प्रसन्नता की ही बातों को सुनाकर उसे प्रसन्न बनाये रखना चाहता है। पुरुष का कार्य क्षेत्र विस्तृत है, वह अपना दायित्व अधिक समझता है, इसीलिये उसे पत्नी की अपेक्षा चिंता अधिक रहती है। स्त्री का कार्य क्षेत्र सीमित है। उसे तो अपने पति को स्वस्थ प्रसन्न रखना है। पति स्वस्थ प्रसन्न होंगे, तो धन भी आवेगा, सन्तानें भी होंगी, वे भी सुखी रहेंगी, घर भी भरा पूरा आनन्द उत्साह से परिपूर्ण रहेगा।

भगवान् विष्णु तो एक अधिकारारूढ़ हैं। यद्यपि वे सर्व समर्थ हैं। फिर भी उन्हें जगत् के पालन की चिन्ता करनी पड़ती है। इसलिये वे एक महीने में अपनी कथा समाप्त कर देते हैं, किन्तु लक्ष्मीजी को तो ऐसी कोई चिन्ता है नहीं, उन्हें तो अपने परमेश्वर पति को ही प्रसन्न करना है, जब वे अपने सुरीले कोकिल कंठ से कथा कहती हैं, और अपने पति को सर्वदा सम्मुख बैठे देखती हैं, तो उनका उत्साह और भी अधिक बढ़ जाता है, पूरी व्याख्या के साथ कहती हैं, उस समय कथा की सुन्दरता के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या, राम रस भरकर छलकने लगता है। भगवान् भी चाहते हैं सदा ये ही बाँचा करें, किन्तु वे अपने पति के मुख से भी सुनना चाहती हैं। अतः मासिक पारायण

सात्त्विक और ऋतु पारायण दो मास का पारायण—परम सात्त्विक माना गया है।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! यह मैंने सात्त्विक ऋतु तथा मासिक पारायण का माहात्म्य आपसे कहा, अब वार्षिक तामस पारायण का माहात्म्य जैसे अपने गुरु के मुख से सुनकर उद्धवजी ने कहा था उसे आपसे कहता हूँ। आप सब सावधानी के साथ श्रवण करें।"

छप्पय

*पाइ भागवत विष्णु करें सब जग को पालन।*
*वक्ता बनि के स्वयं मासभर करें परायन॥*
*श्रोता लक्ष्मी बनें कथा हरि बाँचि सुनावें।*
*वक्ता लक्ष्मी होहिँ कथा ऋतमहँ सब गावें॥*
*हरि पालन चिन्ता निरत, लक्ष्मी खट पट तें रहित।*
*तातें तिनकी कथा में, अतिशय रस आनँद बहत॥*

# वर्ष—भागवत पारायण-तामस

## [ ३४ ]

निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयम्
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥*
(श्री भा० १ स्क० १ प० ३ श्लोक)

छप्पय

कहें रुद्रतें कृष्ण—करो संहार दयानिधि ।
बोले शिव—संहार करूँ तम तरूँ कवन विधि ॥
दई भागवत कह्यो जाइ श्रद्धातें सेवें ।
विजय तमोगुन करें, प्रलय जग को कर देवें ॥
पारायन हर बरष भर, करयो मुक्ति पदवी लही ।
उद्धव जी ते देव गुरु, कथा अलौकिक यह कही ॥

ऊपर से देखने में तमोगुण और सत्वगुण में कुछ अन्तर नहीं होता। योग निद्रा और तमोगुणी निद्रा साधारणतया एक

* व्यासजी कह रहे हैं—"हे भावुक भक्तो ! श्रीमद्भागवत अमृत रस वाला अत्यन्त मीठा पका फल है। यह वेद रूपी कल्पवृक्ष पर लगा था, शुकदेव रूप तोता के मुख से (चोंच मारने से) पृथ्वी पर गिर पड़ा है, कथा रूपी अमृत रस से परिपूर्ण है। ऐसे दिव्य हरि कथा रूप अमृत रस को तुम लोग पीते रहो, पीते रहो, मरण पर्यन्त पीते रहो।"

सी ही दिखाई देती है। सत्वगुणी भी सांसारिक झंझटों से दूर रहकर सत्व प्रधान भगवान् की आराधना में तल्लीन रहता है और तमोगुणी भी आलस्य प्रमाद में पड़ा रहता है। सत्वगुण युक्त प्राणी भी किसी कार्य को शीघ्रता से अधिक की लालच में पड़कर उतावले पन से नहीं करता और तमोगुणी तो उससे भी अधिक दीर्घसूत्री होता है, किन्तु दोनों की आन्तरिक स्थिति में आकाश पाताल का अन्तर होता है। एक के भीतर प्रकाश है, दूसरे के भीतर अन्धकार। एक ज्ञान के कारण विरत है, दूसरा तमोगुण के प्रभाव से कर्तव्य विमुख है। एक में रजोगुणी चंचलता नहीं, दूसरे में प्रमाद आलस्य वश कार्य करने की स्फूर्ति नहीं। एक कार्य को सोच समझकर गंभीरता से करता है, दूसरा करना चाहिये इसलिये थोड़ा-सा कर लो, कल फिर देखा जायगा। इस कारण से विलम्ब करता है। इसीलिये कहा है, कि तमोगुणी को सीधे सत्वगुण का अनुकरण न करना चाहिये। पहिले उसे रजोगुण का अनुसरण करना चाहिये, फिर सत्व का सेवन करना चाहिये। जिसमें कार्य करने की क्षमता होगी, स्फूर्ति होगी, वही तो शनैः-शनैः रजोगुणी वृत्ति को छोड़कर सत्व की साधना में समर्थ हो सकता है।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! देवगुरु बृहस्पति से सुनी कथा को उद्धवजी जैसे राजा परीक्षित् तथा वज्रनाभ को कुसुम-सरोवर पर सुना रहे हैं उसी प्रसंग को मैं आपसे कह रहा हूँ। जब ब्रह्मा और विष्णु भगवान् श्रीकृष्ण से भागवत-तत्व लेकर चले गये तो भगवान् ने रुद्रदेव से कहा—"हे सदाशिव! तुम इस सम्पूर्ण सृष्टि का संहार करो।"

रुद्र ने कहा—"देव! आप यह क्या आज्ञा दे रहे हैं। विष वृक्ष भी लगाकर बुद्धिमान उसको अपने हाथों से नहीं काटते।

आप इस इतने बड़े जगत् की रचना करके उसके नाश की आज्ञा मुझे क्यों दे रहे हैं ?"

भगवान् ने कहा—"यह संसार खेल है। क्रीड़ा के लिये मैं इसे बनवाता हूँ। जैसे बनाना खेल है वैसे ही इसका बिगाड़ना भी खेल है। बच्चे बड़े प्रेम से बड़े आग्रह से खिलौना लेते हैं, कोई माँगता है तो नहीं देते,सावधानी से रक्षा करते हैं। कुछ देर उससे खेलते रहते हैं फिर उसे पत्थर पर पटक देते हैं। फट्ट करके वह फूट जाता है, तो हँस पड़ते हैं। उस समय उसे लेना भी खेल था, कुछ देर उसकी रक्षा करना भी खेल था और पत्थर पर पटक कर फोड़ देना भी खेल ही है। इसलिये संहार करने में कोई अनर्थ भी नहीं। तुम्हें कोई दोष भी न देगा, तुम्हारी अपकीर्ति भी न होगी, तुम्हें कोई अमंगलकारी भी न कहेगा। प्रत्युत तुम्हारे नाम मङ्गलमय, शंकर, शिव, भोलेनाथ, सदाशिव तथा देवाधिदेव महादेव ऐसे प्रसिद्ध होंगे।"

रुद्रदेव ने पूछा—"किस प्रकार सृष्टि का संहार करना पड़ेगा, प्रभो!"

भगवान् ने कहा—"संहार में क्या है, उठाया पटक दिया, संहार हो गया। नित्य ही असंख्यों प्राणी मरते हैं, उसे नित्य संहार कहते हैं। ब्रह्माजी का दिन बीत जाने पर—चारों युग एक-एक सहस्र बार बीतने पर—जब ब्रह्माजी त्रिलोक को लीन करके सो जाते हैं, उसे नैमित्तिक संहार कहते हैं। जब ब्रह्माजी के सौ वर्ष हो जाते हैं, यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भगवान् के उदर में समा जाता है, तीनों गुण समान होकर प्रकृति में विलीन हो जाते हैं उसे प्राकृत संहार कहते हैं। जब जीव ब्रह्म में विलीन हो जाता है यह संसार रहता ही नहीं, उस ब्रह्मज्ञान की पूर्णावस्था का नाम आत्यंतिक संहार है। इन्हीं चार प्रकारों से तुम संहार करो।"

रुद्रदेव ने कहा—"भगवन्! नित्य, नैमित्तिक और प्राकृत संहार तो मैं कर ही सकता हूँ, किन्तु आत्यंतिक प्रलय तो प्रकृति के परे की बात है। और मुझे आपने प्रकृति के कार्य में लगाया है, सो भी तमोगुण का अधिष्ठातृ देव बनाया है। तब मैं आत्यन्तिक संहार करने में समर्थ कैसे हो सकता हूँ, उसकी मुझमें शक्ति नहीं है। प्रथम तो मुझे मोक्ष प्रदान की शक्ति दीजिये और यह उपाय बताइये कि तमोगुण का कार्य करते हुए भी मैं तमोगुण पर विजय कैसे प्राप्त कर सकूँ?"

भगवान् ने हँसकर कहा—"यह कौन-सी बड़ी बात है। आप यह श्रीमद्भागवत का उपदेश ग्रहण कर लें। इसका नित्य नियम से पारायण किया करें आपके समस्त मनोरथ पूर्ण हो जायँगे। तमोगुण आपका स्पर्श भी न कर सकेगा।" यह कहकर भगवान् ने रुद्रदेव को श्रीमद्भागवत का उपदेश दिया। उसे ग्रहण करके रुद्र संहार कार्य में प्रवृत्त हो गये। उन्होंने पूरे एक वर्ष तक पारायण किया, इसी से उन्होंने तमोगुण पर विजय प्राप्त कर ली। तभी से वे वार्षिक पारायण करने लगे।"

सूतजी ने कहा—"मुनियो! इस प्रकार उद्धवजी ने राजा परीक्षित और वज्रनाभ को इतिहास सुनाकर कहा—"सो, राजेन्द्र! मेरे गुरुदेव भगवान् बृहस्पति ने मुझसे श्रीमद्भागवत शास्त्र की बड़ी प्रशंसा की। उसके सात्विक, राजसिक और तामसिक भेद भी बताये। तब मैंने उनसे प्रार्थना की—"भगवन्! आप मुझे भी भागवत्-तत्व का उपदेश दें।"

मेरे गुरु ने कहा—"वत्स! तुम्हारा कल्याण हो, तुम निष्ठावान और श्रद्धालु हो, तुम भागवत शास्त्र को ग्रहण करने में समर्थ हो, तुम्हें मैं अवश्य भागवत का उपदेश दूँगा।" यह कहकर उन कृपालु मुनि ने मुझे भागवत का उपदेश दिया। हमारे बाबा गुरु भगवान् सांख्यायन के दो शिष्य थे, एक तो मेरे गुरु

बृहस्पतिजी दूसरे व्यासजी के पिता पराशर मुनि। पराशर मुनि के समीप तो मैत्रेय मुनि ने भागवत पढ़ी और देवगुरु के चरणों में बैठकर मैंने भागवत-तत्व का उपदेश ग्रहण किया। जब मैं उपदेश ले चुका तो मुझे मेरे गुरु ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया—तुम्हें श्रीकृष्ण का सख्य सम्बन्ध प्राप्त हो, तुम भगवान् के प्रियतम सखा हो।" गुरु का आशीर्वाद प्राप्त करके मैं अपने स्थान पर आया और नित्य नियम से भागवत का पारायण करने लगा।"

परीक्षित् ने पूछा—"देव! आपने कौन-से पारायण को स्वीकार किया, सप्ताह, मासिक ऋतु अथवा वर्ष भर में कौन-सा आपको प्रिय लगा?"

उद्धवजी ने कहा—"भैया! मैं वैष्णव हूँ। मुझे तो विष्णु स्वामी का मार्ग ही अत्यन्त प्रिय लगा। इसलिये मैं नित्य नियम से एक मास में भागवत का पारायण करने लगा। भागवत की कृपा से तथा गुरुदेव के आशीर्वाद से भगवान् वासुदेव ने मुझे अपना लिया। उन्होंने मेरे ऊपर अपना सम्पूर्ण स्नेह उड़ेल दिया। उन्होंने मुझे इतना सम्मान दिया जितना किसी अन्य मुझ जैसे अयोग्य को दुर्लभ है। उन्होंने मुझे अपना सखा ही नहीं बनाया, मन्त्री, सम्मति दाता, सुहृद् सम्बन्धी और सब कुछ बना लिया। प्रत्येक बात में वे मेरी सम्मति लेते। मेरे पूछे बिना कोई कार्य नहीं करते थे श्रीमद्भागवत रस का आस्वादन करके मैं तृप्त हो गया, कृत कृत्य हो गया। फिर भगवान् ने मुझे भागवत उपदेश का चमत्कार दिखाने व्रज में भेजा।"

महाराज परीक्षित् ने पूछा—"महाराज! मथुरा से व्रज में गोपियों के पास भगवान् ने किस निमित्त भेजा था। वहाँ आप ने क्या चमत्कार देखा?"

उद्धवजी ने कहा—"भगवान् ने मुझे भेजा तो था गुरु बना

कर। गोपियों को भागवत की शिक्षा-दीक्षा देने के निमित्त, किन्तु मैं लौटा उनका शिष्य बन के। भगवान् ने कहा था—"उद्धव! ब्रज की गोपाङ्गनायें, मेरे विरह में भ्रमवश व्याकुल हो रही हैं, वास्तव में तो मैं कभी उनसे पृथक् होता नहीं। तुम उन्हें नन्द गाँव में जाकर भागवत तत्त्व समझा आओ। उन्हें भागवत पढ़ा आओ, जिससे उनका विरह दूर हो जाय।"

स्वामी की आज्ञा मानकर मैं ब्रज गया, भगवान् ने जैसा भागवत उपदेश मुझे दिया था, वह मैंने उनके सम्मुख सुना दिया। उसे सुनते ही वे शोक सन्ताप तथा विरह दुःख से रहित हो गयीं। यह चमत्कार मैंने ब्रज में प्रत्यक्ष देखा। फिर भी मैं भागवत के गूढ़ रहस्य को नहीं समझा था। उस रहस्य को तो उन्होंने महा प्रयाण के समय पीपर वृक्ष के नीचे बैठकर समझाया था। तभी मेरी बुद्धि में उस तत्व का दृढ़ निश्चय हुआ। उसी का फल है, कि एक रूप से सदा बदरीवन में निवास करने पर भी मैं यहाँ ब्रज में लता गुल्म रूप में नारद कुण्ड के समीप कुसुमसरोवर पर निवास करता हूँ, और ब्रजवास का आनन्द लूटते हुए, ब्रज विहारी की लीला माधुरी का चिंतन स्मरण और दर्शन करता रहता हूँ।"

महाराज परीक्षित् ने कहा—"भगवन्! यहाँ सब इतने भक्त एकत्रित हुए हैं, इन सबको कृष्ण प्रेम प्राप्त हो, इनके भी मनोरथ सिद्ध हों, ऐसा कोई सुगम सरस उपाय आप बतावें।"

उद्धवजी ने कहा—"राजेन्द्र! भगवत् भक्तों को श्रीमद् भागवत के ही सेवन से श्रीकृष्ण तत्व प्राप्त हो सकता है। भागवत के अतिरिक्त भक्तों को भगवत प्राप्ति का अन्य उपाय है ही नहीं।"

परीक्षित् ने कहा—"देव! हम सबका अहोभाग्य जो आपने दर्शन दिये, हमें भागवत माहात्म्य सुनाया, अब कृपा करके आप

सभी के कल्याण के निमित्त हमें भागवत सुनाइये। भागवत के गूढ़ तत्व को समझाइये। हमें मुक्ति मार्ग दर्शाइये और श्रीकृष्ण प्रीति दृढ़ाइये।"

यह सुनकर उद्धवजी ने कहा—"राजन्! यह सब तो मैं करूँगा ही, आपके कहने से मैं सभी भक्तों को भागवत सुनाऊँगा, किन्तु इस कार्य में आपको भी मेरी सहायता करनी होगी, आपको भी मेरी एक बात माननी होगी, तब मैं कथा आरम्भ करूँगा।"

परीक्षित् ने कहा—"भगवन्! आप जो भी आज्ञा देंगे उसका मैं पालन करूँगा, आप भागवत कथा आरम्भ करें।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! परीक्षित् को आज्ञा देकर जैसे उद्धवजी ने कथा आरम्भ की उस प्रसङ्ग को मैं आगे कहूँगा।"

छप्पय

*बोले उद्धव— भूप, भागवत मम गुरु दीन्हीं।*
*सिर धरि दंड प्रनाम करी परिकम्मा कीन्हीं॥*
*पारायन करि मास श्याम को सखा कहायो।*
*सचिव सुहृद सम्बन्धि कृष्ण कहिकें अपनायो॥*
*कथा कहूँ कलि कतरनी, भक्त लहहिँ सुख कृष्ण रस।*
*करें परीक्षित् कलि दमन, पावैं जग महँ विपुल यश॥*

# राजा परीक्षित् द्वारा कलिदमन, उद्धवजी द्वारा कथारम्भ

( ३५ )

निजग्राहौजसा वीरः कलिं दिग्विजये क्वचित् ।
नृपलिङ्गधरं शूद्रं घ्नन्तं गोमिथुनं पदा ॥*
(श्री भा० १ स्क० १६ अ० ४ श्लोक)

छप्पय

*गये धाम जब स्याम आइ कलि विघन मचावै ।*
*विजय दशहुँ दिशि करहु तुरत कलि वश है जावै ॥*
*कहैं परीक्षित् देव! कथा मोतैं न छुड़ावैं ।*
*उद्धव बोले—"तुमहिं आइ शुकदेव सुनावैं ॥*
*उद्धव आयसु सिर धरी, गये भूप कलिदमन हित ।*
*राज वज्र प्रतिबाहु सुत, दयो, कथामहँ भये रत ॥*

कथा श्रवण में आनन्द तभी आता है जब चित्त स्थिर हो, बाहरी कोई बाधा न हो, चित्त चंचल न हो, मन में किसी बात की चिन्ता न हो यह सोचकर कथा सुने कि अब तो हमें संसार को छोड़ना ही है। तभी यथार्थ कथा का फल मिलता है, चित्त

---

* सूतजी कह रहे हैं—"मुनिवर! दिग्विजय करते समय राजा परीक्षित् ने अपने बल से कलियुग का दमन किया। वह कलि शूद्र राजा का वेष बनाये हुए था और गौ तथा बैल दोनों के ऊपर पैर से आघात कर रहा था।"

दुविधा में फँसा है, मन में घर, द्वार, कुटुम्ब, परिवार, वाणिज्य, व्यापार, राज्य-पाट तथा भाँति-भाँति की चिन्तायें लगी हैं तो वह कथा सुनना तो एक विधि का पालन मात्र है, मन को सन्तोष देना है, चित्त को भुलावा देना है कि हमने कथा सुन ली। कथा का प्रभाव तो मन पर पड़ेगा। मन स्वच्छ होगा चिन्ता रहित होगा तभी कथा के रंग में रँगेगा। यदि उसमें बहुत-सा मैल भरा है, रंग को पकड़ता ही नहीं तो कहीं तनिक फीका-सा रंग लग जायगा। यथार्थ रँग आवेगा नहीं। रङ्ग चोखा चढ़े इसके लिये पहिले कपड़े को मल रहित बनाना चाहिये, फिर उसको हर्रा और फिटकिरी डाले हुए पानी में डुबोना चाहिये, तब रंग चढ़ाया जाय तो वह रंग स्थाई होगा, खिल उठेगा, वस्त्र चमकने लगेगा। आप चाहें कि न तो धोना पड़े, न हर्रा फिटकिरी लगानी पड़े रंग चोखा चढ़ जाय, तो कठिन है, असम्भव है। इसलिये श्रोता वक्ता दोनों को निश्चिन्त होकर, सभी घर बार के कार्यों से उपरत होकर श्रद्धा प्रेम और विश्वास के साथ भगवत भक्तों के बीच में बैठकर निर्लोभ सुयोग्य वक्ता से कथा सुननी चाहिये। बाहरी विघ्नबाधाओं की रोक का भी यथाशक्ति पहिले से ही प्रबन्ध कर लेना चाहिये, इससे बीच में विघ्नों की संभावना न रहे, क्योंकि अच्छे कार्यों में बहुत से विघ्न आ जाते हैं, अतः अपनी शक्ति तथा बुद्धि बल के अनुसार चिन्ता और विघ्न बाधाओं को हटाकर तब कथा सुने तो उसे कथा का वास्तविक लाभ मिलता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! वज्र तथा महाराज परीक्षित् के सम्मुख उद्धवजी ने अपनी गुरु परम्परा बताकर कथा का माहात्म्य कहा और स्वयं कथा सुनाने की इच्छा प्रकट की। महाराज परीक्षित् से उन्होंने कहा—"राजन्! मैं कथा तो सुनाऊँगा, किन्तु आपको भी मेरा एक कार्य करना पड़ेगा।"

महाराज परीक्षित् बोले—"देव! आप तो मेरे पितामह हैं,

यह शरीर आपका ही है इसमें पूछने की कौन-सी बात है। आप इससे जो चाहें सो कार्य लें।"

उद्धवजी ने कहा—"राजेन्द्र! क्यों नहीं, ये वचन आपकी कुल की परम्परा के ही अनुकूल हैं, आप उस भरतवंश तथा पांडव वंश में उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने अकेले ही इस सम्पूर्ण भूमंडल पर विजय प्राप्त की है, आप उन धर्मराज महाराज युधिष्ठिर के पौत्र हैं जो धर्म के साक्षात् अवतार ही थे। राजन्! जब से भगवान् वासुदेव इस भूमण्डल से निजधाम में पधारे हैं तभी से कलियुग ने यहाँ अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया है। कलियुग धर्म कर्म का, शुभ कार्यों का शत्रु है, वह जब सुनेगा, कि कुसुमसरोवर पर भागवती कथा हो रही है, तो वह अवश्य ही यहाँ आकर विघ्न डालेगा।"

महाराज परीक्षित् ने दृढ़ता के साथ कहा—"महाराज! आप चिन्ता न करें। उस दुष्ट की ऐसी की तैसी। मैं तो हूँ ही, उसे यहाँ घुसने नहीं दूँगा।"

उद्धवजी ने कहा—"राजन्! यह बात नहीं। अग्नि जहाँ से लगे, तुरन्त वहीं से उसे बुझाने की चेष्टा करनी चाहिये। आप सोचें, कि हमारे घर के सम्मुख आवेगी, तभी बुझावेंगे, तब तो बड़ी कठिनता हो जायगी। इस समय दिग्विजय करें और कलियुग जहाँ भी मिल जाय, वहीं उसका दमन करें।"

परीक्षित् ने पूछा—"भगवन्! हम कैसे समझें यहाँ कलियुग है?"

उद्धवजी ने कहा—"राजन्! इसकी मोटी पहिचान यह है—"जो राजा के योग्य न हो, आचार विचारहीन हो, और वह राज्य शासन सम्हाले। राजाओं का बाना पहिन ले और जहाँ गौ बैलों का सत्कार न हो, उन पर प्रहार होता हो, उनका वध होता हो

वहीं कलियुग है। ऐसा अन्याय आप जहाँ देखें समझ लें यहाँ कलियुग छिपा है, उसका दमन करें।"

प्रसन्नता प्रकट करते हुए महाराज परीक्षित् बोले—"महाराज! यह कार्य तो आपने मेरे अनुरूप ही बताया। बहुत दिनों से मेरे हाथ खुजा रहे थे, मुझे कोई युद्ध करने को मिला भी नहीं था। अब मैं कलियुग का दमन करके अपने हाथों की खुजलाहट मिटाऊँगा, पृथ्वी पर धर्म का डंका बजाऊँगा, अधर्म को मारकर भगाऊँगा। प्रजा को दुख और शोक से रहित बनाऊँगा, किन्तु प्रभो! एक मुझे बड़ी भारी हानि होगी?"

उद्धवजी ने कहा—"वह कौन-सी हानि?"

राजा बोले—"महाराज! यही कि मैं श्रीमद्भागवत कथा से वञ्चित रह जाऊँगा। शास्त्रकारों का कथन है, अनधिकारी को ज्ञान न दे। अयोग्य को कथा न सुनावे। कहीं आप मुझे अनधिकारी समझकर इसी बहाने से यहाँ से भगाने की तो युक्ति नहीं निकाल रहे हैं? प्रभो! यद्यपि मैं अनधिकारी हूँ, किन्तु हूँ तो आपका बच्चा ही। माता-पिता बालक के सभी अपराधों को क्षमा कर देते हैं, उसकी अयोग्यता अशिष्टता की ओर ध्यान नहीं देते। बिना पूछे भी उसे उपदेश देते रहते हैं। नाथ! मुझे कथा से वञ्चित न करें, मैंने भी आपके चरणों की शरण ली है, मेरे ऊपर भी कृपा कीजिये, मुझे इस मधुरातिमधुर कथा रस से वञ्चित न कीजिये।"

उद्धवजी ने कहा—"राजन्! भागवती कथा के आप ही [illegible] एक मात्र अधिकारी हैं, आपके ही द्वारा तो संसार में [illegible] का प्रचार-प्रसार होगा। आजकल लोग भगवद् भक्ति से [illegible] होकर नाना क्लेशों को भोग रहे हैं। आपके द्वारा यह [illegible] होकर सर्वत्र फैलेगी, तब संतप्त हृदयों को शान्ति [illegible] संसार में मंगल होगा। [illegible]

आपको स्वयं परमहंस चक्र चूड़ामणि भगवान् शुकदेवजी आकर पूरी भागवत संहिता सुनायेंगे। उसी की कलिकाल में प्राधान्यता रहेगी। मैं तो कृष्ण किंकर हूँ, किन्तु तुम्हें तो नन्द नन्दन के साक्षात् अभिन्न रूप श्रीशुकदेवजी कथा सुनावेंगे। उसे सुनकर भगवान् वृन्दावनचंद्र व्रजेश्वर के नित्यधाम को प्राप्त होंगे। आपके पश्चात् इस धराधाम पर उसी श्रीमद्भागवत की प्रतिष्ठा होगी। आप ऐसी नौका पर पार जायँगे कि स्वयं तो वह पार हो ही जायँगे, किन्तु पीछे से उस दृढ़ नौका पर सभी पथिक पार होते रहेंगे। अनन्तकाल तक आपका यश संसार में व्याप्त रहेगा, अतः आप कोई सन्देह न करें। प्रसन्नता पूर्वक कलियुग को निग्रह करने को पधारें। कलियुग पर विजय प्राप्त करके धर्म की स्थापना करें।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! अब महाराज परीक्षित् क्या करते, उद्धवजी की आज्ञा उन्होंने विवश होकर शिरोधार्य की। उन्होंने उद्धवजी की पूजा की, प्रणाम किया और परिक्रमा करके उनकी आज्ञा से दिग्विजय तथा कलियुग का निग्रह करने के निमित्त कुसुमसरोवर से चले गये।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! महाराज परीक्षित् के चले जाने के अनन्तर महाराज वज्रनाभ ने क्या किया? उद्धवजी ने उन्हें कितने दिनों में कथा सुनायी?"

सूतजी बोले—महाराज! दिग्विजय के निमित्त जब महाराज परीक्षित् चले गये तब वज्रनाभ ने मथुरा में जाकर अपने सभी मंत्री तथा प्रजाजनों की अनुमति लेकर अपने सुयोग्य पुत्र प्रतिबाहु को व्रज मंडल के राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त किया। उन्हें विधिवत् राज्य पाट देकर स्वयं भी सांसारिक चिन्ताओं से निर्मुक्त होकर वे अपनी सभी माताओं के साथ पुनः कुसुम सरोवर आ गये और वहाँ रहकर उद्धवजी से श्रीमद्भागवत की

कथा श्रवण करने लगे। भगवान् के परम भक्त उद्धवजी ने एक महीने तक श्रीमद्भागवत रस की वह धारा बहायी कि सभी उस रस सागर में निमग्न हो गये। उस समय सभी के हृदय में श्रीकृष्ण प्रेम प्रकाशित हो गया और सभी को अपने स्वरूप का यथार्थ बोध हो गया।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! यथार्थ स्वरूप का बोध कैसा ?"

सूतजी बोले—"महाराज! पहिले उद्धवजी ने बताया था कि समस्त ब्रजवासी श्रीकृष्ण के अङ्ग में विद्यमान हैं, सो, जब उन्हें आनन्द कन्द श्रीकृष्णचन्द्रजी की सच्चिदानन्दमयी लीलाओं का प्रत्यक्ष सर्वत्र दर्शन होने लगा, तो वज्रनाभ ने प्रत्यक्ष देखा मैं तो श्रीकृष्ण के दाहिने चरण में स्थित हूँ। अब तो उनका श्रीकृष्ण-जन्य वियोग कपूर की भाँति उड़ गया, वे परमानन्द में निमग्न होकर भगवान् के पद पद्म में अत्यन्त सुशोभित होने लगे।

कुसुमसरोवर की लता कुञ्जों में रास की रजनी छिटकने लगी, उस वन की शोभा अलौकिक हो गयी। उस रास रजनी में राधारमण रूपी राकेश हँसने लगे, ब्रजाङ्गनाओं के साथ रास विलास करने लगे। श्रीकृष्णचन्द्र की प्रभा रूप में श्रीराधिका और कला अंशारूप में सखियाँ तथा राजमहिषी दिखाई देने लगीं अब तो रोहिणी आदि प्रभु पत्नियाँ अपने को नित्य रास में स्थित पाकर तथा सदा सर्वदा सच्चिदानन्द घनश्याम सुन्दर के सान्निध्य का अनुभव करके विरह वेदना से सर्वथा निर्मुक्त बन गयीं। वे भगवान् के परमधाम में प्रविष्ट हो गयीं।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! वज्रनाभ और प्रभु पत्नियों के अतिरिक्त अन्य भी जो श्रोतागण थे उनकी क्या गति हुई ?"

सूतजी बोले—"भगवान् की अंतरङ्ग लीला के दर्शन सभी को नहीं होते, जिनको भगवान् की लीला के दर्शन हो जाते हैं वे व्यावहारिक बाह्य जगत् से सदा सर्वदा के लिये छूट जाते

हैं। तभी तो ब्रज में श्रीकृष्ण भगवान् के समय के जितने भक्त थे वे सब ब्रज से अंतर्हित हो गये। इसी प्रकार समस्त चिन्ताओं से निर्मुक्त होकर एकाग्र चित्त से प्रेम पूर्वक जिन्होंने भागवत का उद्धवजी के मुख से रस वृन्दावन धाम में श्रवण किया वे सबके सब भक्त भगवान् की नित्य अन्तरङ्ग लीला में सम्मिलित हो गये। उनका व्यावहारिक जगत से सम्बंध सदा के लिये छिन्न भिन्न हो गया। जैसे नित्य विहारी सदा गोप गोपी तथा गौओं को साथ लिये दिव्य वृन्दावन, गोवर्धन, कुसुमसरोवर, गोपी-स्थल तथा काम्यवन आदि वनों में विहार करते रहते हैं वैसे ही वे श्रोतागण भी उन्हीं के परिकर में सम्मिलित होकर अनन्त अनुपम आनन्द का अनुभव करने लगे। इसीलिये तो कहा है श्रीकृष्ण में और श्रीमद्भागवत में कोई अन्तर नहीं, जो गति श्रीकृष्ण के सेवन से प्राप्त होती है वही श्रीमद्भागवत के सेवन से मिल जाती है। जो भक्त भगवान् की अन्तरङ्ग लीला में सम्मिलित हुए हैं उनके तथा वृन्दावन में विहार करने वाले वृन्दावन विहारी के श्रीकृष्ण प्रेम में मग्न भावुक भक्तों को कभी कभी अब भी ब्रज में दर्शन हो जाते हैं। भगवान् और भागवत के इस पुण्यप्रद माहात्म्य को, उनकी महिमा की कथा को जो लोग श्रद्धा पूर्वक सुनेंगे, कहेंगे, जन साधारण को सुनावेंगे, उनके सभी शोक संताप सदा के लिये मिट जावेंगे और उन्हें भगवान् के साक्षात् दर्शन भी हो जायँगे।"

यह सुनकर शौनकजी ने कहा—"सूतजी! भगवान् ने आप को हमारे कल्याण के ही निमित्त भेजा है। हम परमात्मा से यही मनाते रहते हैं कि आप युग-युग जीवें, आपकी बड़ी आयु हो, भगवान् आपका मंगल करें। आप इसी प्रकार हमें रसीली रस भरी कथा सदा सुनाते रहें। इसी प्रकार हमारे समय का परम सदुपयोग कराते रहें। अब कृपा करके हमें आप श्रीमद्-

भागवत के स्वरूप का ज्ञान कराइये और भी जो इसके सम्बन्ध की बातें हों वे सब भी हमें सुनाइये।"

सूतजी ने कहा—"महाराज! आप सबके आशीर्वाद से और भगवान् वेदव्यास की कृपा से ही मैं कुछ कहने में समर्थ हुआ हूँ, नहीं तो मेरी इतनी न तो विशाल बुद्धि ही है, न विद्या, तप, कुल, कर्म तथा आचार आदि का ही बल है। आप लोग जो हृदय में प्रेरणा कर देते हैं वह मैं कह देता हूँ। जैसे माता बच्चे को स्वयं ही तो सिखाती है इसका नाम हाथ है, इसे पैर कहते हैं, इसका नाम मुख है। फिर स्वयं ही पूछती है मुख कहाँ है? हाथ किसका नाम है। यही आप कर रहे हैं। सब जान बूझकर आप लोक कल्याण के निमित्त ऐसे प्रश्न पूछते हैं। स्वरूप के अतिरिक्त और आप क्या सुनना चाहते हैं?"

शौनकजी ने कहा—"पहिले तो आप हमें श्रीमद्भागवत के लक्षण बतावें। भागवत कहते किसे हैं? फिर उसके सुनने की विधि कहें, श्रीमद्भागवत का वक्ता कैसा हो, श्रोताओं के लक्षण बताइये। और भी जो बातें आप जो बता सकें वे बताइये।"

सूतजी ने कहा—"भगवन्! ये सब बातें तो मैं कई बार बता चुका हूँ, किन्तु आपकी सुनते-सुनते तृप्ति ही नहीं होती, एक ही बात को अनेकों ढंग से सुनना चाहते हैं। जिससे लोगों में दृढ़ता आ जाय। अच्छी बात है, अबके मैं आपके प्रश्नों का दूसरे ढंग से उत्तर देता हूँ।"

छप्पय

*मास दिवस तक कथा सुनी सब संशय नासे।*
*रास रजनि राकेश राधिका रमन प्रकासे॥*
*सबनि सरूप प्रबोध भयो नित लीला प्रविसे।*
*श्रीहारिक जग त्यागि अंग हरि के घनि बिकसे॥*
*गोवरधन, उपवन, सघन, सुमन-कुंज बन बन फिरत।*
*दीखत माधुर्क जननि हरि, परिकर संग बिहरत सतत॥*

# श्रीमद्भागवत और उसके श्रोता वक्ता

[ ३६ ]

नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय साक्षिणे।
य इदं कृपया कस्मै व्याचचक्षे मुमुक्षवे॥*
(श्री भा० १२ स्क० १३ अ० २० श्लो०)

छप्पय

*शौनक बोले—जियो सूत नित कथा सुनाओ।*
*श्रोता, वक्ता, रूप भागवत विधिहिँ बताओ॥*
*सूत कहैं—विज्ञान ज्ञान हरि भक्ति दृढ़ावै।*
*भगवत रस माधुर्य भागवत विप्र! कहावै॥*
*विधि हरि हर ही पार लहि, ग्रहन सार समरथ भये।*
*शुक नृप को सम्वाद सुनि, कहि पढ़ि बहु जन तरि गये॥*

प्रत्येक शुभ कार्य की सिद्धि के लिये पाँच बातें अत्यन्त आवश्यक हैं। (१) कराने वाले का भाव विशुद्ध हो, (२) उस कार्य के करने के साधन शुद्ध हों, (३) करने वाले का भाव शुद्ध हो (४) उसके करने की विधि शुद्ध हो और (५) जहाँ वह कार्य किया जाय वह स्थल भी उस भाव के अनुकूल हो, तभी उसकी सिद्धि में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह जाता। इनमें से एक

---

*सूतजी कह रहे हैं—" इस श्रीमद्भागवत का उपदेश कृपा करके जिन्होंने मोक्ष की इच्छा रखने वाले ब्रह्माजी को दिया उन सर्वसाक्षी भगवान् वासुदेव को प्रणाम है।"

भी प्रतिकूल हुआ तो उसकी सिद्धि में उतनी ही देरी लग जायगी। इसीलिये तो प्रत्येक अनुष्ठान में कर्ता और कराने वाले के लक्षण विधि विधान का ब्योरा, सामग्रियों की स्वच्छता की सावधानी तथा स्थल संशोधन की आवश्यकता पर अत्यधिक बल दिया जाता है। यदि करने वाले का भाव ही शुद्ध नहीं तो वह ऊपर से दिखाने को कितना भी पवित्र कार्य क्यों न करे, इसका फल वैसा ही होगा, जैसी उसकी भावना होगी। कर्ता का भाव शुद्ध भी रहा किन्तु उसके साधन अशुद्ध हुए, तो साधनों की अशुद्धता का प्रभाव भी कर्ता के ऊपर पड़ेगा ही। यदि कर्ता के भाव भी शुद्ध हैं, साधन सामग्री भी शुद्ध हैं, किन्तु कराने वाले का भाव दूषित है, वह किसी लोभ लालच में फँसकर कुछ से कुछ करा देता है, तो उस कर्म का भी जैसा चाहिए वैसा फल न होगा। विधि की विपरीतता तथा स्थल की अशुद्धता का भी प्रभाव कर्म की सिद्धि पर पड़ता है। इसीलिये तो बारम्बार इन बातों को पूछा बताया जाता है। सभी कर्मों में अन्तःकरण की शुद्धि अत्यन्तावश्यक है। वह हो गयी तो सिद्धि मिल गयी। वह नहीं हुई तो कर्म का फल तो अवश्य ही होगा, व्यर्थ तो कोई कार्य हो नहीं सकता, किन्तु पूर्ण फल तो पाँचों की शुद्धता में ही संभव है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! आपने मुझसे श्रीमद्भागवत का स्वरूप पूछा, सो मैं उसे सैकड़ों बार बता चुका हूँ। जो भगवान का स्वरूप है वही सच्चिदानन्दमय भागवत का भी स्वरूप है दोनों में अणु मात्र भी अन्तर नहीं। फिर आप पूछते हैं कि भागवत कहते किसे हैं, तो भागवत कोई सीमित वस्तु नहीं उसकी कोई एक परिभाषा नहीं है। वह कोई एक निश्चित ग्रन्थ नहीं। वह तो एक भाव है।

जिसके हृदय में स्वतः ही भगवान् की भक्ति है, जिनक

अन्तःकरण स्वभावतः भावुकता से भरा हुआ है, उन भक्तों के मन में मनमोहन की जो माधुरी पान की लालसा छिपी हुई है, उसे जो भी शब्द व्यक्त कर दे वही भागवत है। अथवा भगवान के दिव्य माधुर्य रस का जो अधिकाधिक आस्वादन करा सके वही वचन भागवत है। अथवा ज्ञान, विज्ञान और भक्ति का जिनसे प्रकाश होता है ऐसे साधन चतुष्टय जिस वाक्य से प्रकाशित हो सकें, उस वाक्य का नाम भागवत है। जो वाक्य अज्ञान का नाश कर सके ज्ञान का प्रकाश कर सके, माया का मर्दन कर सके, अन्तःकरण के तम को छिन्न-भिन्न कर सके, उसी को तुम भागवत जानो। श्रीमद्भागवत का अन्त नहीं, उसकी परिधि नहीं, सीमा नहीं, नाश नहीं, विनाश नहीं, ऐसी भागवत की सीमा निर्धारण कौन कर सकता है। कौन कह सकता है कि इतने का ही नाम भागवत है।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! आप तो चक्कर में डालने वाली बातें कह देते हैं। जब भागवत अनन्त अक्षर तथा अपार है तो उसका सेवन सम्भव कैसे हो सकता है?"

सूतजी बोले—"महाराज! भगवान् भी तो अनन्त हैं, उनका भी तो कोई पार नहीं पा सकता। फिर भी लोग उनकी मनोमयी मूर्ति बनाकर मानसिक द्रव्यों से पूजा करते ही हैं। किन्तु मनोमयी मूर्ति की मानसिक पूजा सभी नहीं कर सकते, इसलिये जन साधारण के लिये उनकी स्थूल मूर्ति बनाते हैं, उन्हें एक सीमित मन्दिर में स्थापित करते हैं, कुछ सीमित सामग्रियों से सेवा सुश्रूषा भी करते हैं, उस सेवा द्वारा भी उन्हीं असीम अनंत अच्युत को पा जाते हैं।"

इसी प्रकार जब भगवान् ने स्थूल सृष्टि करने का संकल्प किया, तब भगवान् महाविष्णु ने ब्रह्माजी को चतुःश्लोकी भागवत का उपदेश दिया। उस अमूर्त भागवत का चार श्लोकों में

सूक्ष्मरूप बना। उसी का ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने सेवन किया। उसी से उन सबने अपने अभीष्ट को प्राप्त किया। उन चार अमृत महासागरों में डुबकी लगाकर वे अपनी प्राप्य वस्तु को प्राप्त कर सके। किन्तु सभी तो ब्रह्मा, विष्णु नहीं बन सकते। सभी तो चार श्लोकों से प्राप्य वस्तु को प्राप्त नहीं कर सकते। उन्हीं परिमित बुद्धि वालों के निमित्त भगवान् वेदव्यास ने वर्तमान काल में उपलब्ध होने वाली २४ सहस्र श्लोकों वाली श्रीमद्भागवत की रचना की। संसाररूपी अगम अथाह सागर में कलि रूप प्रबल ग्राह ने जिन प्राणियों को ग्रस लिया है, उनके लिये श्रीमद्भागवत ही एक आश्रय है, छुड़ाने का अमोघ साधन है।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! आपकी बड़ी आयु हो, आप हमारे प्रश्नों का बारंबार बहुत ही सुन्दर उत्तर देते हैं,एक ही प्रश्न को हम लोग अनेक बार पूछते हैं और आप नयी नयी युक्तियाँ देकर उनका बिना व्यग्रता दिखाये नया ही नया उत्तर देते जाते हैं। एक बार तो आपने श्रोताओं के चार भेद बताये थे। अब फिर हम श्रीमद्भागवत के श्रोताओं के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं, कि उसके श्रोता कैसे होने चाहिये? कृपया उनके भेदों का वर्णन कीजिये।"

सूतजी ने कहा—"भगवन्! शास्त्रकारों ने श्रोताओं के अनेक भेद बताये हैं, किन्तु श्रोताओं के मुख्य दो ही भेद हैं। एक उत्तम श्रोता दूसरे अधम। अब उत्तम और अधम इनके भी चार-चार भेद हैं।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! उत्तम श्रोता के चार भेद कौन कौन से हैं?"

सूतजी ने कहा—"महाराज! उत्तम श्रोता के चार भेद हैं—चातक, हंस, शुक और मीन।"

शौनकजी ने पूछा,—"सूतजी ! कृपया इनकी व्याख्या भी करते जाइये, चातक श्रोता किसे कहते हैं ?"

सूतजी ने कहा—"भगवन् ! चातक का प्रण होता है, कि वह मेघ से बरसते हुए स्वाति के ही जल को पीवेगा। दूसरे चाहें जितने जल क्यों न भरे रहें उनको चोंच से छूवेगा नहीं। किसी चातक के सम्बन्ध में सुना जाता है, कि वह आकाश की ओर टकटकी लगाये पेड़ पर कई दिनों तक मेघ की आशा से बैठा रहा, किन्तु पानी नहीं बरसा। नीचे अथाह जल भरा था, मरते समय उसने अपने पुत्र को उपदेश दिया—"देख, बेटा! मेरा शरीर निर्जीव होकर जब जल में गिर पड़े तो तू मेरी चोंच को ऊपर उठा देना, कहीं मेरे मृतक शरीर की चोंच का भी स्पर्श अन्य जल से न होने पावे।"

इस प्रकार जो चातक के सदृश श्रोता होते हैं, वे सभी संसारी कथाओं को छोड़कर केवल श्रीकृष्ण कथा में स्पृहा रखते हैं, अन्य विषय सम्बन्धी कथाओं को कभी भूलकर भी कानों के भीतर नहीं जाने देते।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! हंस श्रोता कैसे होते हैं ?"

सूतजी बोले – "भगवन् ! हंस के मुख में कोई ऐसा रस होता है, कि दूध और पानी मिलाकर रख दो, वह दूध-दूध पी लेगा, पानी को छोड़ देगा। इस नीर क्षीर पृथक करने वाली बुद्धि के श्रोताओं की संज्ञा हंस श्रोता बतायी गयी है, ऐसे श्रोता अनेक शास्त्रों को सुन तो लेते हैं, चातक श्रोता की भाँति सर्वथा एक निष्ठ तो नहीं होते किन्तु सब कुछ सुनकर भी ग्रहण उसका सार ही करते हैं। उन सारग्राही श्रोताओं को ही हंस कहा है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! "शुक" श्रोता कौन कहलाते हैं ?"

सूतजी बोले—"भगवन् ! जैसे सुशिक्षित शुक तोता उसका

शिक्षक उसे जो भी "सीताराम राधेश्याम" पढ़ाता है उसे ज्यों-का-त्यों ही सुनाकर शिक्षक को तथा अन्यान्य आस-पास के श्रोताओं को आनन्दित करता है उसी प्रकार उत्तम शुक श्रोता कथा वाचक के मुख से जो भी सुनता है उसे सुललित भाषा में सुनाकर सभी को प्रसन्न रखता है उसी का नाम शुक श्रोता है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! मीन श्रोता के लक्षण और बताइये।"

सूतजी बोले—"भगवन् ! मीन के पलक नहीं होते। वह सदा सर्वदा अपलक भाव से अपने इष्ट जल को ही निहारती रहती है। क्षीरसागर की मीन सदा दुग्ध का ही पान करके उसी में अपनी दृष्टि को गड़ाये रखती है कभी व्यवधान नहीं पड़ने देती। इसी प्रकार मीन सदृश श्रोता सदा टकटकी लगाये अपलक भाव से वक्ता के मुख की ही ओर देखता रहता है। बीच में बोलकर बाधा नहीं पहुँचाता। मौन भाव से निरन्तर कथा रस का आस्वादन करता रहता है। वही मीन श्रोता कहलाता है।"

शौनकजी ने फिर पूछा—"सूतजी ! यह तो चातक, हंस, शुक और मीन चार उत्तम श्रोता हो गये। अब आपने चार अधम श्रोता बताये थे, कृपया उनकी भी व्याख्या कीजिये।"

सूतजी बोले—"महाराज ! अधम श्रोता भी चार ही प्रकार के होते हैं, उनके नाम हैं वृक, भूरुण्ड, वृष और ऊँट। अब इनकी भी व्याख्या सुनिये। "वृक" को ही ले लीजिये। वृक कहते हैं भेड़िया को। वनों में कोई सुन्दर मधुर वेणु बजाता है तो कानों को प्रिय लगने वाले उस राग को मृग एकाग्र चित्त होकर तन्मयता के साथ सुनते रहते हैं किन्तु बीच-बीच में भेड़िया भयंकर शब्द करके उनके श्रवण में विघ्न डालता है। रस में तल्लीन हुए मृगों को चौंका देता है। इसी प्रकार जो कथा के बीच में

कर्कश शब्द करके कथा के रस को भंग कर देता है श्रोताओं की एकाग्रता को नष्ट कर देता है, वह अधम थूक श्रोता कहलाता है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! भूरुण्ड श्रोता कौन कहलाते हैं ?"

सूतजी बोले—"भगवन् ! हिमालय पर्वत के ऊपर एक भूरुण्ड नाम का पक्षी होता है। वह किसी के शिक्षा प्रद वाक्य सुनता है, तो उन्हीं को बोलता रहता है, किन्तु उनसे स्वयं लाभ नहीं उठाता। जैसे वह चिल्लावेगा "साहस मत करो।" किन्तु स्वयं इतना साहस करता है कि सिंह की दाढ़ में से मांस निकालने का प्रयत्न करता है। इसी प्रकार जो श्रोता के मुख से सुने हुए उपदेशों को तो बार-बार सर्वत्र दुहराता रहता है किन्तु स्वयं उनका आचरण नहीं करता उसके विपरीत ही करता है उसी अधम श्रोता को भूरुण्ड श्रोता कहते हैं।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! "वृषभ" श्रोता के क्या लक्षण हैं ?"

सूतजी बोले—"जैसे बैल खाने की वस्तुओं में भेद भाव नहीं करता। उसके सम्मुख अंगूर सेव आदि मीठे फल डाल दो या सरसों आदि की कड़वी खली डाल दो दोनों को ही समान रूप से खायगा। सूखी रोटी दे दो या हलुआ पूड़ी एक ही रुचि से खायगा, इसी प्रकार जो श्रोता कथा के उपदेशों को समझ कर ग्रहण नहीं करता, सार असार का विवेक किये बिना ही केवल सुनता ही रहता है वह वृषभ श्रोता कहलाता है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! ऊँट श्रोता कौन होता है ?"

सूतजी बोले—"भगवन् ! जैसे ऊँट के सम्मुख आम आदि की मीठी पत्तियाँ रख दो और साथ ही काँटे युक्त बबूर तथा कड़वी नीम की पत्तियों को भी रख दो तो वह मीठी पत्तियों को

छोड़कर नीम की ही पत्तियों को खायगा। बिना काँटे की पत्तियों को छोड़कर बबूर बेर आदि काँटों वाली पत्तियों को ही प्रेमपूर्वक भक्षण करेगा। इसी प्रकार जो श्रोता अच्छी-अच्छी कथाओं को छोड़कर विषय वासना वाली सांसारिक कथाओं में मन को लगाता है वह उष्ट्र के सदृश अधम श्रोता कहलाता है।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! मैंने यह अत्यन्त संक्षेप में श्रोताओं के लक्षण बताये। विस्तार किया जाय तो अभी इनमें बहुत भेद हो सकते हैं। जैसे भ्रमर श्रोता। जैसे भ्रमर पुष्पों से रस लेकर मधु एकत्रित कर लेता है वैसे ही उत्तम श्रोता वक्ताओं के मुख से अनेक प्रकार की कथायें सुनकर उनका सार रस ही संग्रह करता है। जैसे 'मक्षिका' श्रोता। शरीर में जहाँ भी पीब फोड़ा होगा मक्खी वहाँ जाकर बैठेगी ही वह सुन्दर स्वच्छ अंग में न बैठेगी। इसी प्रकार अधम श्रोता कथा के घृणित दृष्टान्तों को याद कर लेगा, भक्ति के प्रसंग को छोड़ देगा। चकोर श्रोता। चकोर के सम्मुख मीठी वस्तु रख दो और अंगारे रख दो, तो वह आग के अंगारों को ही भक्षण करेगी। चन्द्रमा की ओर ही टकटकी लगाये रहेगी। इसी प्रकार उत्तम श्रोता वक्ता को ही देखते रहेंगे और कथा के त्याग, वैराग्य और धर्म के कठोर नियमों का ही पालन करेंगे। बगुला श्रोता। जैसे बगुला आँख मीचे बड़ा ध्यान लगाये रहेगा। किन्तु जहाँ कोई मछली दीखी तुरन्त उसे मुख में दबाकर भाग जाता है, इसी प्रकार अधम श्रोता ध्यान का ढोंग बनाकर दम्भ पूर्वक कथा सुनते रहते हैं, जहाँ कथा के बीच में उनका कोई स्वार्थ सिद्ध हुआ कि इष्ट वस्तु को लेकर चंपत हो जाते हैं। मयूर श्रोता। जो वस्त्राभूषणों से सुसज्जित देखने में तो बड़े भले लगेंगे, कथा में वाणी भी बड़ी मीठी बोलेंगे, किन्तु उनके आचरणों को देखो तो घर में जैसे मयूर सर्पों को खा जाते हैं वैसे ही वे

अखाद्य वस्तुओं का प्रयोग करेंगे। कपोत श्रोता। जैसे कबूतर दिखाने को तो कंकड़ खाते हैं किन्तु विषयी ऐसे होते हैं, कि कहीं भी कपोता को देखेंगे तो वहाँ बुरी दृष्टि ही करेंगे। इसी प्रकार अधम श्रोता साधारण श्रोता बनकर जायँगे, किन्तु वहाँ वक्ता की ओर ध्यान न देकर महिलाओं की ही ओर ध्यान पूर्वक कुदृष्टि करते रहेंगे। गर्दभ श्रोता। जैसे गदहे पर चंदन लाद दो या विष्ठा लाद दो। उसे तो बोझा ढोने से प्रयोजन। वह दोनों में कुछ भी विवेक न करेगा। इसी प्रकार अधम श्रोता कथा में जाकर बैठ जाता है। जो भी अच्छा बुरा सुना उसी का बिना विचार किये बोझ लाद लाता है। इस प्रकार श्रोताओं के असंख्यों भेद हो सकते हैं।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! श्रोता को किस प्रकार कथा श्रवण करनी चाहिये?"

सूतजी ने कहा—"भगवन्! श्रोता का मुख्य गुण तो नम्रता है। जिस श्रोता में नम्रता नहीं, उद्दडता तथा अहंकार है वह श्रोता बनने के योग्य ही नहीं। सर्व प्रथम कथा में जाय तो, पुस्तक को, कथा कहने वाले व्यास को, तथा सभी श्रेष्ठ जनों को प्रणाम करके वक्ता से नीचे आसन पर बैठे। कभी पैर के ऊपर पैर रखकर कथा में न बैठे। पैर के ऊपर पैर रखकर बैठना अहंकार का सूचक है। इधर-उधर की संसारी बातों को कथा में न छेड़े, केवल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की लीला कथाओं को ही श्रवण करने की अभिलाषा रखे। वक्ता के मुख से जो सुने उसे धारण करे, पीछे उस पर एकाग्र चित्त होकर मनन करे। अपने हाव भावों में बैठने और बोलने के ढँग में नम्रता रखे। अंजलि बाँधकर हाथ जोड़कर श्रवण करे। कथा सुनते समय यह भाव रखे कि मैं उपदेश ग्रहण करने वाला हूँ, कथा के वक्ता उपदेष्टा हैं। मैं शिष्य हूँ, कथावाचक गुरु हैं। ऊपर से बनावटी श्रद्धा

भक्ति ही प्रदर्शित न करे, किन्तु भीतर में यथार्थ श्रद्धा रखे। बिना मनन चिंतन ऊहापोह किये किसी बात को ग्रहण न करे। जो बात बुद्धि में न बैठे उसे नम्रता पूर्वक वक्ता से पूछ ले, अपनी शंका का सरलता के साथ समाधान करा ले। सदा शुद्ध पवित्र और स्वच्छता के साथ रहे। जो कथा प्रेमी भगवत् भक्त तथा सत्संगी हों उनसे स्नेह भाव रखे। समय का पालन करे। सत्य, सदाचार, सहनशीलता, संतोष, सेवा, श्रद्धा, सरलता तथा अन्य सभी सद्-गुणों को अपने में लाने की सतत चेष्टा करता रहे। इस प्रकार का श्रोता कथा के फल को पूर्ण रूप से प्राप्त कर सकता है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! आपने श्रोताओं के लक्षण और उनके कर्तव्य तो बताये अब कृपया वक्ता के लक्षण और बताइये। कथा का वक्ता कैसा होना चाहिये ?"

सूतजी बोले—"भगवन् ! वक्ता में वैसे तो सभी गुणों का समावेश होना चाहिये। किन्तु उसमें मुख्य चार गुण होने चाहिये। भक्ति, निरपेक्षता, दया और दक्षता।"

सबसे पहिले तो वक्ता को भगवान् का भक्त होना चाहिये। जो स्वयं भक्त न होगा वह भक्ति का उपदेश ही क्या करेगा। भक्ति के बिना यथार्थ रस नहीं आता, अतः वक्ता का स्वयं भक्त होना परमावश्यक है।

बिना निरपेक्ष बने दृढ़ता नहीं आती। जिसका मन कामिनी कांचन में फँसा रहेगा उसकी वाणी में ओज नहीं आवेगा जो प्रत्येक श्रोता की ओर इसी दृष्टि से देखता रहता है, कि कुछ लेकर आया है या नहीं तो उसकी कथा से श्रोता क्या सीख सकेंगे ? वह कथा क्या है व्यवसाय है, मनोरञ्जन का-चित्त को बहलाने का-साधन मात्र है। परमार्थ साधन न होकर लौकिक व्यवहार की भीड़ मात्र है। अतः वक्ता का निरपेक्ष होना अत्या-वश्यक है।

जिस वक्ता के हृदय में दया नहीं वह दूसरों का क्या उद्धार करेगा, उसे सभी श्रोताओं का सच्चा सुहृद होना चाहिये। धनी-निर्धन में कोई भेद-भाव नहीं करना चाहिये, दीनों पर दया दर्शानी चाहिये तथा जो भी प्रश्न करे उसका प्रेम और नम्रता के साथ उत्तर देना चाहिये।

वक्ता का बहुश्रुत तथा विद्वान् होना परमावश्यक है। जिसने सभी शास्त्रों का विधिवत श्रवण न किया हो, जो युक्ति हेतु तर्क तथा दूसरे उपायों से श्रोता के संशयों को न मेंट सके वह उत्तम वक्ता नहीं होता। अनेकों दृष्टान्त दे देकर नाना युक्तियों से जो श्रोताओं को सन्तुष्ट कर देता है वह बुद्धिमान विद्वान् बहुश्रुत विवेकी वक्ता है।

इसी प्रकार वक्ता के और भी बहुत से गुण हैं जिन्हें स्वयं ही समझ लेना चाहिये।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! आपने पीछे हमें श्रीमद्भागवत सप्ताह की विधि तो बतायी। अब कृपया सात्त्विक, राजस, तामस भेद से कथा श्रवण करने की विधि और बता दीजिये।"

सूतजी ने कहा—"अच्छी बात है भगवन्! अब मैं सात्त्विक, राजस, तामस और निर्गुण इन चारों भेदों से श्रवण विधि बताता हूँ, आप ध्यान पूर्वक श्रवण करें।"

छप्पय

*श्रोता उत्तम अधम द्विविध तिनि भेद बतायें।*
*चातक, मछली हंस और शुक श्रेष्ठ कहायें॥*
*वृक, वृष ऊँट भुरुण्ड, बुरे ये चार बताये।*
*निज स्वभाव अनुकूल सबनि के नाम गिनाये॥*
*वक्ता हरि रस महँ निरत, निरभिमान निरपेक्ष शुचि।*
*दीन बन्धु, बुध बोध युत, कृष्ण कथा महँ रखहि रुचि॥*

—०—

# भागवती कथा का चतुर्विध श्रवण माहात्म्य

[ ३७ ]

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥*

(श्री भा० २ स्क० ३ अ० १० श्लो०)

छप्पय

*श्रोता वक्ता कहे भागवत विधि सुनु मुनिवर।*
*रज, सत, तम, गुनरहित, चार विधि सेवें सादर॥*
*रज महँ श्रम अति ठाठ सात दिन सुनें सुनावें।*
*सत ऋतु अथवा मास सुनें सुख सब अति पावें॥*
*सुनें बरष भर तमोगुन, मास दिवस को नियम तजि।*
*निरगुन विधि शौनक कही, तरहिं भक्त भगवन्त भजि॥*

घी का लड्डू चाहें जैसे भी खाया जाय, वह चाहे जैसा बना हो, गुण ही करेगा, फिर भी विधि विधान से बनी वस्तु की महिमा अधिक है, इसीलिये विधि विधान का विवरण बारम्बार बताया जाता है। शास्त्रकारों का कथन है कि जो शास्त्र विधि का

---

* सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! जो उदार बुद्धि के पुरुष हैं वह चाहें निष्काम हो, समस्त कामनाओं को चाहने वाला हो अथवा मोक्ष की इच्छा वाला हो। उन्हें तो तीव्र भक्तियोग से केवल परम पुरुष भगवान् वासुदेव की ही सब भाँति से उपासना करनी चाहिये।"

परित्याग करके मन माना आचरण करता है उसे सिद्धि प्राप्त नहीं होती। जो जिस भाव से उपासना करता है; उसे उसी भावना के अनुसार अनुष्ठान करना पड़ता है। इसलिये जो भी कार्य करे, शास्त्रीय विधि से करे, तभी उसका फल पूर्णरीत्या प्राप्त होगा।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मैंने आपके पूछने पर श्रोता-वक्ताओं के लक्षण बता दिये अब मैं भागवत सेवन की विधि पुनः बताता हूँ। जैसे अन्न तो एक ही है, उसे मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार सात्विक, राजस और तामस बना लेते हैं। उसी में मिरचा, खटाई, लवण अधिक मिला दिया अधिक गरमागरम करके पालिया। राजस् भोजन हो गया। उसी को दूसरे दिन बासी बनाकर अशुद्ध करके अपवित्र और उच्छिष्ट करके खाया तो वह तामस हो गया। सुन्दर, मधुर, सुखकर, सरस बनाकर खाया वह सात्विक हो गया। वस्तु एक ही है, निर्माण तथा विधि भेद से उसके सात्विक, राजस, तामस भेद हो जाते हैं। यही बात भागवत् के सम्बन्ध में है। भागवत् शास्त्र तो एक ही है, सेवन की विधि के कारण उसके राजस्, सात्विक तामस और निर्गुण ये चार भेद हो जाते हैं।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! इन चारों भेदों को हमें स्पष्ट करके समझाइये।"

सूतजी बोले—"भगवन्! राजसी सेवन तो यह है, कि यथेष्ठ धन व्यय करके यज्ञ की भाँति तैयारियाँ की जायँ। अपने सभी सगे सम्बन्धियों को उत्साह के साथ बुलाया जाय। पूजा की सुन्दर व्ययसाध्य सामग्री मँगायी जाय, मंडप सभी सामग्रियों से ऐसा सजाया जाय कि अत्यन्त ही शोभा सम्पन्न दृष्टि-गोचर हो। चारों ओर सेवक सम्बन्धी ठाट-बाठ लगाने में सजाने तथा खिलाने पिलाने में व्यस्त दिखायी दें। कथावाचक

को आदेश हो जैसे भी बने तैसे सात ही दिन में पाठ और कथा को समाप्त किया जाय, वक्ता भी-श्रोता समझते हैं या नहीं इसकी चिन्ता छोड़कर केवल पाठ पूरा करने और सात दिन में समाप्त हो जाय, इसी की ओर ध्यान रखते हों, तो इस सप्ताह विधि से भागवत सेवन को राजस सेवन कहते हैं।"

शौनकजी ने पूछा–"सूतजी! सात्विक सेवन कैसे किया जाता है?"

सूतजी बोले—"भगवन्! जो अत्यन्त मिठास के साथ शान्तचित्त होकर, बहुत भीड़-भाड़ तथा धूम-धाम की ओर ध्यान न देकर केवल आन्तरिक सुख के निमित्त जो भागवत दो महीने में अथवा एक महीने में शनैः-शनैः सुख शान्ति के साथ श्रम के बिना सुनी जाती है। उसी का नाम सात्विक सेवन है। भगवान् लक्ष्मीनारायण इसी प्रकार भागवत् का सेवन करते हैं। दो महीने का सेवन तो और भी सरस तथा सुख प्रद कहा गया है। यदि कहने वाला वक्ता लक्ष्मीजी के समान कलितकण्ठ वाला हो तब तो आनन्द का ठिकाना ही क्या? वास्तव में सात्विक सेवन ही श्रीमद्भागवत का मुख्य सेवन है। भगवान् विष्णु, जगन्माता लक्ष्मी, अनन्त भगवान्, सनकादिक महर्षि, सांख्यायन-मुनि देवगुरु बृहस्पति तथा परम भागवत् उद्धवजी इसी ढंग से भागवत सेवन करते हैं। सुख की वृद्धि का यही सरल, सरस, सुगम सात्विक तथा शान्तिप्रद साधन है।"

शौनकजी ने पूछा–"सूतजी! तामस सेवन किसे कहते हैं?"

सूतजी बोले—"भगवन्! तामस सेवन यह कहाता है, कि समय काटने के निमित्त कथा आरम्भ कर दी जाय। कोई काम आ गया तो छोड़ दी, फिर स्मरण हो उठा तो पुनः आरम्भ कर दी। बीच में किसी ने आकर कह दिया—"अजी, अब बहुत हो

गयी, कथा बन्द करो, कुछ इधर-उधर की बात करो।" तो कथा बन्द कर दो। किसी ने पूछा—"यह क्या कथा वथा कर रखी है, तो कह दिया—"भाई, बैठे बेगार भली, एक वर्ष भर सुनने का हमने नियम ले रखा है, जब समय मिल जाता है, तो उसे कथा में ही काट लेते हैं। इस प्रकार आलस्य और अश्रद्धा से एक वर्ष में जो भागवत का सेवन किया जाय, वह तामस सेवन कहलाता है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! ऐसे सेवन से क्या लाभ? ऐसा तो नहीं करना चाहिये।"

सूतजी बोले—"उत्तम पक्ष तो भगवन्! ऋतु अर्थात् दो मास अथवा एक मास में श्रद्धापूर्वक सेवन का ही है। यदि इतना समय न निकाल सके तो श्रद्धापूर्वक शीघ्रता के साथ सात ही दिन में श्रवण कर ले। यदि यह भी न हो, तो यह न कहे कि तामस विधि से क्या सेवन करें? नहीं, "अकरणात् मन्दकरणं श्रेयः" न करने की अपेक्षा तो तामस सेवन भी अच्छा ही है। कभी-कभी तो इसमें आनन्द आ ही जाता है। जिस किसी भी प्रकार हो भागवत का सेवन करना ही चाहिये।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! निर्गुण सेवन किसे कहते हैं?"

सूतजी ने कहा—"भगवन्! समय का बन्धन ही गुणों का बन्धन है। सप्ताह, ऋतु, मास तथा वर्ष किसी का भी नियम करके निरन्तर नित्य नियम से परम श्रद्धा के साथ कर्तव्य बुद्धि से जो सेवन किया जाता है, उसी सेवन का नाम निर्गुण सेवन है, सदा सर्वदा भागवत रस के सागर में डूबा ही रहे। इस ओर ध्यान ही न दे कि हमें भागवत सेवन करते हुए कितने दिवस व्यतीत हो गये। भागवती कथाओं के श्रवण में, भागवत चरित्र के चिन्तन, मनन और गायन में, भागवत दर्शन के विचार और

विमर्श में जितना भी अधिक से अधिक समय दे सके वही निर्गुण सेवन है। संसार में जो बड़भागी सुकृति सज्जन हैं, जिनके अनेकों जन्मों के अनन्त पुण्य उदय हुए हैं, वे इसी निर्गुण भाव से भागवत का सेवन करते हैं।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! आपकी परिभाषा के अनुसार 'परीक्षित् शुक संवाद सप्ताह' जो गङ्गा तट पर हुआ वह भागवत का राजस् सेवन हुआ ?"

शीघ्रता के साथ सूतजी बोले—"नहीं, भगवन्! ऐसी बात नहीं है। मेरे गुरुदेव परमहंस चक्र चूड़ामणि महा विरक्त परम अवधूत श्रीशुक तो गुणातीत हैं, वे राजस् कथा क्यों कहने लगे। परीक्षित् शुक संवाद यद्यपि सात दिन में ही हुआ, फिर भी वह निर्गुण ही सेवन था।"

शौनकजी ने कहा—"पीछे तो सूतजी! आप सप्ताह को राजस् सेवन बता आये हैं। अब इसी निर्गुण बताने लगे।"

सूतजी ने कहा—"भगवन्! सप्ताह विधि को मैंने राजस विधि बताया है। किन्तु न तो महाराज परीक्षित् ने सप्ताह विधि से ही कथा सुनी, न सप्ताह बाँचने के संकल्प से भगवान् शुक ही आये। राजा परीक्षित् को सात दिन में तक्षक द्वारा डसे जाने का शाप था। उनके जीवन के सात ही दिन शेष रह गये थे, इधर शुकदेवजी भी संयोग से उसी समय उपस्थित हो गये। सात दिनों तक निरन्तर कथा चलती ही रही। उसमें न कोई सप्ताह सम्बन्धी ठाठ बाठ रचा गया न सप्ताह की विधि बरती गयी। न उस श्रवण में कोई सांसारिक कामना ही थी। गुणों का आरोप तो कामनाओं के अनुसार होता है, न तो राजा को कोई कामना थी और श्रीशुक तो सभी कामनाओं से हीन ही थे, अतः वह सेवन भले ही सात दिन में ही क्यों न हुआ हो, निर्गुण सेवन ही है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! भागवत का सेवन गंगा-यमुना के तट पर पुण्यतीर्थों में ही करना चाहिये या अन्य स्थानों में भी कर सकते हैं ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! यदि श्रवण मनन करने को गंगादि पावन नदियों का तट मिले, मथुरा, पुष्कर, द्वारावती ऐसे क्षेत्र मिलें, प्रयाग, काशी, नैमिषारण्य ऐसे पुण्य मिलें तब तो पूछना ही क्या ? ऐसी सुविधा न भी हो, तो भारत वर्ष में कहीं भी, भारत वर्ष के बाहर भी अपनी प्रकृति के अनुसार राजस, सात्विक, तामस अथवा निर्गुण जैसे भी बने तैसे इसका सेवन करना चाहिये। इसका सेवन कभी निष्फल नहीं जाता, चाहें सकाम भाव से हो, निष्काम भाव से अथवा विषयरत चित्त से भी क्यों न सुनी जाय, इससे सदा हित ही होगा। जैसे हरीतिका हरड़ का सेवन सभी दशाओं में सर्वत्र सुखदायी है। यदि रोगी उसका सेवन करेगा तो उसका रोग छूट जायगा, निरोगी सेवन करेगा, तो उसका स्वास्थ्य और बढ़ेगा। मोक्षकामी सेवन करेगा, तो उसे मुक्ति मिलेगी क्योंकि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का मूल साधन आरोग्यता ही है। हरीतिका (हरड़) का सेवन किसी भी दशा में अहितकर नहीं होता। इसीलिये तो इसकी इतनी प्रशंसा है। आयुर्वेद शास्त्र में इसके अभया, अमृता, अव्यथा; अमोघा, कायस्था, चेतकी, जीवन्ती, जीवनीया, जीवप्रिया, जया, दिव्या, देवी, पथ्या, पूतना, पाचनीया, प्रमथा, प्रपथ्या, प्राणदा, वल्या, भिषगवरा, रसायन फला, रुद्रप्रिया, रोहिणी, विजया, वयस्या, शिवा, सुधा, सुधोद्भवा, श्रेयसी तथा हरीतिकी ये नाम आये हैं। ये सब नाम अपने गुणों के कारण श्रीमद्भागवत के भी हो सकते हैं। हरड़ का अव्यथा नाम इसलिये है, कि इसके सेवन से शरीर में पीड़ा दुःख की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसी प्रकार भागवत के सेवन से मानसिक पीड़ा नहीं

होती। हरड़ का एक नाम अमोघा है, इसका अर्थ हुआ जैसे हरड़ का सेवन अमोघ होता है, वह कभी व्यर्थ जा ही नहीं सकता। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत का सेवन अव्यर्थ नहीं जाता। सभी को हितकर होता है। संसार में मुक्त मुमुक्षु और विषयी तीन प्रकार के लोग होते हैं। और तीनों ही भागवत का सेवन करते हैं, मुक्त आनन्द वृद्धि के लिये, मुमुक्षु भगवत् प्राप्ति संसार बन्धन से मुक्ति पाने के लिये और विषयी सरस कथा होने से मनोरञ्जन के लिये। इसीलिये भागवत सेवन अमोघ है।

हरड़ का एक नाम कायस्था भी है। काया में जो रहे, अर्थात् जिसका गुण टिकाऊ हो। सम्पूर्ण प्राणियों की काया में तो भगवान् ही रहते हैं, जैसे हरड़ शरीर में रहकर उसका स्थायित्व स्थापित करती है वैसे ही भागवत भी शरीर में रहकर उसका कल्याण करती है। चेतकी हरड़ का नाम इसलिये है, कि वह शरीर में चैतन्यता लाती है, इसी प्रकार श्रीमद्भागवत भी चैतन्यता प्रदान करने वाली होती है। भागवत की भाँति हरड़ जीवन प्रदान करती है, शरीर में नवजीवन का संचार करती है इसलिये इसे जीवन्ती कहते हैं। जिलाने वाली होने से जीवनीया, सम्पूर्ण जीवों का प्रिय करने से जीवप्रिया और जय देने वाली होने से जया, जैसे हरड़ के ये नाम हैं, ये ही सब श्रीमद्भागवत भी देने वाली है, इसी प्रकार सभी नामों का अर्थ समझ लीजिये। तेज देने वाली होने से 'दिव्या' कल्याण करने वाली होने से 'देवी' मार्ग शुद्ध स्वच्छ करने वाली होने से 'पथ्या' पवित्र करने वाली होने के कारण 'पूतना' सभी प्रकार के दोषों (पापों) को पाचन करने वाली होने से 'पाचनीया' रोग (संसार रोग) को जड़ मूल से काट देने वाली होने से 'प्रमथा' और बहुत हितकर अत्यन्त पथ्य होने से 'प्रपथ्या' कहलाती है। प्राणों को दान देने वाली होने से 'प्राणदा' बल देने वाली होने के कारण

'वत्या' रोगों (तापत्रय) को मिटाने के लिये श्रेष्ठ वैद्य होने के कारण 'भिषग्वरा' और रसों का घर होने से व्याधियों को दूर करने की कला में निपुण होने से 'रसायन कला' कहलाती है। महादेवजी की प्रिया होने के कारण 'रुद्रप्रिया' अपने गुणों से रिझाने वाली होने से 'रोहिणी' सभी प्रकार के रोगों पर विजय प्राप्त करने के कारण 'विजया' जीवन को स्थायी रखने के कारण 'वयस्था' कल्याण करने वाली होने से 'शिवा, अमृत के समान गुणकारी होने से 'सुधा' (भक्ति) अमृत से उत्पन्न होने के कारण 'सुधोद्भवा' कल्याण करने वाली होने से 'श्रेयसी' और सर्व रोग हरने वाली होने से जैसे हरड़ हरीतिकी कहाती है, ये ही सब गुण भागवत में होने से भागवत के भी ये नाम सार्थक हैं। अन्तर इतना ही है, हरीतिकी शरीर के रोगों को हरती है, वात, पित्त, कफ जनित दोषों को शान्त करती है। भागवत भव रोगों को नाश करके तीनों तापों का शमन करती है। जैसे हरड़ मस्तक पीड़ा, नेत्र पीड़ा, स्वरभंग, विषमज्वर, पांडुरोग, हृद्रोग, शोष, शोथ, मूत्रकृच्छ्र, संग्रहणी, अतिसार, पथरी, कै, प्रमेह, कृमिरोग, कास, स्वास, घर्म, उदररोग, मलस्तम्भ (कबजी), पेट फूलना, पसीना आना, कान के रोग, अर्श, प्लीहा, गुल्म, तथा त्रिदोष जनित जितने रोग हैं, उन सब में हितकर है, उसी प्रकार भागवत संसार के जितने दैहिक, दैविक तथा आत्मिक ताप हैं, सभी को जड़मूल से नाश करने वाली है।

जैसे हरड़ सभी समय में सभी ऋतुओं में हितकर है, उसी प्रकार भागवत भी सभी काल में सर्वत्र हितकर है, किन्तु हरड़ के सेवन में कुछ नियम है। जैसे ग्रीष्म ऋतु ज्येष्ठ आषाढ़ में बराबर मात्रा में गुड़ के साथ खाय, वर्षाऋतु श्रावण भादों में सेंधव नमक के साथ, शरद ऋतु क्वार कार्तिक में शक्कर के साथ, हेमन्त ऋतु अगहन पौष में सोंठ के साथ, शिशिर ऋतु माघ

फाल्गुन में पीपल के साथ और वसन्त ऋतु चैत्र वैशाख में शहद के साथ खाई तभी गुण करती है, किन्तु श्रीमद्भागवत के सेवन में ऐसा कोई नियम नहीं, उसे सदा एक रस से सेवन करते रह सकते हैं, हरड़ सभी के लिये, समान रूप से हितकर नहीं है। गर्भवती स्त्री के लिये अत्यन्त अशक्त के लिये वह निषेध है किन्तु श्रीमद्भागवत का सेवन चाहें स्त्री हो पुरुष सगर्भा अगर्भा हो, सशक्त हो, असक्त हो सभी के लिये हितकर है। हरड़ का सेवन कच्चे बिना पचेज्वर में निषेध है। इस विषय की एक बड़ी रोचक कहानी है।

एक बार लोगों ने यह मिथ्या समाचार उड़ा दिया कि धन्वन्तरिजी अपने शरीर को त्यागकर परलोक वासी बन गये। इस समाचार से लोगों में बड़ा दुःख हुआ। सभी रोने लगे कि अब रोगों को कौन दूर करेगा, कौन हमारी सम्पूर्ण व्याधियों को हरेगा। लोगों को अत्यन्त दुखी देखकर हरड़ ने कहा—"तुम लोग इतने दुखी क्यों होते हो, धन्वन्तरिजी चले गये तो क्या हुआ मैं तो पृथ्वी पर हूँ, जब तक मैं हूँ तब तक मेरे सेवन करने वाले के समीप रोग फटक भी नहीं सकते। कौन-सा ऐसा रोग है जिसमें मेरा उपयोग न हो, ऐसा कौन-सा रोग है जिसे मैं अच्छा न कर दूँ।"

हरड़ की यह गर्वोक्ति किसी ने जाकर धन्वन्तरिजी से कह दी। हरीतिका की गर्वोक्ति को सुनकर धन्वन्तरिजी प्रसन्न हुए और हँसते हुए बोले—"अच्छा हरड़ से जाकर पूछो, जो ज्वर पका न हो कच्चा हो, उसमें तुम्हारा क्या उपयोग है।"

लोगों ने जाकर पूछा—"देवि! तुम कच्चे ज्वर में भी लाभप्रद सिद्ध हो सकोगी?"

यह सुनते ही हरड़ ने गरजकर कहा—"कौन कहता है, धन्वन्तरि धराधाम को त्यागकर परलोक वासी हो गये। अवश्य

ही वे जीवित हैं और यहीं कहीं समीप में हैं। इसको तो वे ही जानते हैं कि कच्चे ज्वर में मेरा कोई उपयोग नहीं।"

इसका अर्थ यही हुआ कि हरड़ भी कुछ रोगों में निषिद्ध है, किन्तु श्रीमद्भागवत तो सभी भव रोगों की एकमात्र अचूक औषधि है।

हरीतिका में एक और त्रुटि है। रस ६ माने गये हैं-कषाय, अम्ल, कटु, तिक्त, मधुर और लवण। हरड़ में पाँच ही रस हैं। लवण उसमें नहीं है इसलिये नमक उसमें ऊपर से मिलाकर तब सेवन की जाती है, किन्तु श्रीमद्भागवत में तो माधुर्य भी है और लावण्य भी है, उसमें छे के छेऊ रस हैं, यही नहीं उसमें तो नव रस हैं। अतः उसमें ऊपर से कुछ भी मिलाना नहीं पड़ता। वह स्वतः रसायन 'रसमालयं' है।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! हरीतिका और भागवत की तुलना ही क्या हो सकती है, कहने का अभिप्राय इतना ही है कि जैसे शारीरिक रोगों के लिये हरड़ उत्तम औषधि है वैसे ही भव रोग के लिये, भागवती कथा सर्वोत्तम से उत्तम महौषधि-परम रसायन-है यह मुक्त मुमुक्षु तथा विषयी सभी लोगों के लिये सुख देने वाली आनन्द को बढ़ाने वाली है। विषयी लोग भी जब भागवत के रासलीला आदि सरस प्रसङ्गों को सुनते हैं, तो लोट-पोट हो जाते हैं, फिर जो केवल श्रीकृष्ण को ही अपना सर्वस्व समझते हैं, उन्हीं की ललित लीलाओं में अनुराग रखते हैं, उन्हीं के श्रवण कीर्तन तथा गान करने को लालायित रहते हैं, उनका तो श्रीमद्भागवत ही धन है। उन्हें तो सदा सर्वदा भागवत का ही सेवन करते रहना चाहिये।

जो लोग अत्यन्त प्रेमी तो नहीं हैं, किन्तु संसार के दुखों से त्रस्त होकर शान्ति चाहते हैं, इस दुखमय जगत् से घबड़ाकर मुक्ति चाहते हैं उनके लिये भी इस दुःख से छुड़ाने वाली

भागवत ही भवरोग की ओषधि है, इसी के सेवन से उन्हें मुक्ति मिल जायगी।

तीसरे वे लोग हैं, जो सकाम यज्ञ याग करके इस लोक में धन, धान्य, स्त्री, पुत्र, वाहन, भवन, आदि सुख की सामग्री चाहते हैं और अन्त में स्वर्गीय सुख भोगने के इच्छुक हैं। अन्य युगों में वैदिक यज्ञ याग करके ये वस्तुएँ प्राप्त होती थीं। राजसूय, अश्वमेधादि यज्ञों से लौकिक सुख और स्वर्गीय सुख मिलते थे। अब इस कलियुग में न इतने बड़े-बड़े यज्ञ करने की सबकी सामर्थ्य ही है, न उतना विपुल धन ही है और न उतनी विशुद्ध यज्ञ की सामग्रियाँ ही मिलती हैं इसी कारण यज्ञ आदि कर्म वैदिक कर्म मार्ग के द्वारा वैसी सिद्धियाँ मिलनी अब अत्यन्त दुर्लभ हो गयी हैं। ऐसी दशा में ऐसे लोगों को भी भागवती कथा का ही सेवन करना चाहिये। इस श्रीमद्भागवत यज्ञ से धन, धान्य, स्त्री, पुत्र, परिवार, भवन, गृह, कोप, वाहन, पशु तथा सभी सांसारिक सुख की सामग्रियाँ मिल सकती हैं, भागवत के सेवन से इस लोक में सुख भोगकर अन्त में वे भगवान् के ही धाम में प्राप्त हो सकेंगे।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! मैंने आपसे यह श्रीमद्भागवत का माहात्म्य कहा। श्रोता वक्ताओं के सम्बन्ध में कुछ कहकर इस विषय का उपसंहार करूँगा।"

छप्पय

*कैसे हू नर नारि भागवत सुनें सुनावें।*
*प्रभु पद पदुमन प्रेम मनो वाँछित फल पावें॥*
*मगन मुकुति नहिँ चहहिँ भागवत सुनि सुख लेवें।*
*पढ़े मुक्ति हित दुखित मुक्ति तिन को हरि देवें॥*
*संसारी सुख हेतु जो, चित्त कथा में लायँगे।*
*लहैं पुत्र धन सकल सुख, अन्त परम पद पायँगे॥*

# श्रीभागवत महिमा–उपसंहार

[ ३८ ]

य एवं श्रावयेन्नित्यं यामक्षणमनन्यधीः ।
श्रद्धावान् योऽनुशृणुयात् पुनात्यात्मानमेव सः ॥*
(श्रीमा० १२ स्क० १२ अ० ५८ श्लोक)

छप्पय

*नित सेवन जहँ करैं भागवत मिलि अनुरागी ।*
*तिनकी सेवा करैं जगतमहँ ते बड़भागी ॥*
*श्रोता वक्ता होहिँ उभय निरलोभी भावुक ।*
*तहाँ प्रेम रस बहै होय हिय महँ अतिशय सुख ॥*
*दुख नासिनि सब सुख सदन, भुक्ति मुक्ति देनी कथा ।*
*कैसे हु सेवन करैं, मिटै सकल भवभय व्यथा ॥*

एक मनुष्य ने बहुत दिन तक प्रयत्न करने के अनन्तर राजा को प्रसन्न किया। राजा के दर्शन होने पर जब राजा ने कुछ माँगने को कहा तो उसने यही माँगा—"आपके यहाँ आटे की जो भूसी निकलती है वह मुझे दे दी जाय।"

उस व्यक्ति को माँगने पर भूसी मिल तो जायगी ही,

---

* सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! जो इस श्रीमद्भागवत पुराण को एक प्रहर अथवा एक क्षण भी एकाग्रचित्त होकर श्रवण करता है या श्रद्धा पूर्वक दूसरों को सुनाता है, वे दोनों ही अपने चित्त को विशुद्ध बना लेते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।"

संभव है राजा उसकी मूर्खता से प्रसन्न होकर कुछ और भी दे दे, किन्तु इतने सामर्थ्यशाली राजा से भूसी माँगना राजा का भी अपमान करना है और याचना की भी विडंबना है, चक्रवर्ती के प्रसन्न होने पर उससे किसी द्वीप का राज्य माँगना चाहिये अथवा उसका पुत्र बनकर उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनना चाहिये। इसी प्रकार जो यज्ञ, याग, जप, अनुष्ठान करके भगवान् को प्रसन्न करते हैं और उनसे स्त्री, पुत्र, धन, रत्न आदि संसारी वस्तुयें माँगते हैं वे उन शुभ कर्मों की भी विडंबना करते हैं। मोक्ष पति प्रेमार्णव प्रभु को प्रसन्न करके तो उनसे मुक्ति अथवा अहैतुकी भक्ति ही माँगनी चाहिये, किन्तु सांसारिक कामनाओं में फँसा हुआ प्राण भगवान् से मुक्ति न माँगकर अपने संसार के बन्धन को और जकड़ना ही चाहता है, भगवान् तो कल्पतरु के सदृश हैं, उनके यहाँ किसी वस्तु की कमी नहीं है। उनको जो जिस भावना से भजेगा, उसकी वही भावना सिद्ध होगी, उनसे जो जिस वस्तु की याचना करेगा उसे ही पावेगा। यही नहीं वे उससे भी अधिक देंगे, किन्तु भगवान् से तुच्छ सांसारिक कामना चाहना अनुचित है, उनसे तो भक्ति मुक्ति तथा अलौकिक प्रेम की ही याचना करनी चाहिये।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! भागवती कथा का सेवन सदा सर्वदा सुख को ही देने वाला होता है। स्वयं अपने यहाँ कथा का प्रबन्ध न हो तो जहाँ कहीं कथा होती हो, वहाँ जाकर श्रद्धा पूर्वक सुननी चाहिये। जिनके यहाँ नित्य नियम से भागवती कथा होती हो, जो लोग परस्पर में मिलकर प्रेमपूर्वक कथा श्रवण में लगे रहते हों उनकी तन से, धन से सहायता करनी चाहिये। इससे भी भागवत सेवन का फल मिल जाता है। कथा के स्थान को झाड़ बुहार दे, लीप पोत दे, बिछौना बिछा दे। फूल, तुलसी, माला लाकर रख दे। श्रोताओं को पानी पिला दे, अपनी सामर्थ्य

हो तो द्रव्य लगाकर सहायता कर दे। वक्ता श्रोताओं की सेवा करना भी बड़े पुण्य का कार्य है। जिस प्रकार भी भागवती कथा का प्रचार-प्रसार हो जाना चाहिये, लोगों की पारमार्थिक भावनाओं को प्रोत्साहन देना चाहिये। उच्च कामना से भागवत का सेवन करना चाहिये।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! उच्च कामना का क्या अभिप्राय है?"

सूतजी बोले—"भगवन्! संसार में दो ही प्रकार की कामनायें हैं। भगवत् प्राप्ति की कामना और धन प्राप्ति की कामना। 'धन' शब्द से आप केवल रुपया पैसा, सुवर्ण-चाँदी ही न समझें श्रीकृष्ण के अतिरिक्त जो भी द्रव्य, स्त्री, पुत्र, भूमि, अन्न, वस्त्र, पद, प्रतिष्ठा, कीर्ति, मान, सम्मान तथा संसारी सुख भोग वैभव हैं सभी की 'धन' संज्ञा है। इसीलिये भागवत का सेवन दो ही कामना से किया जाता है। भगवत् प्राप्ति की कामना से और धन प्राप्ति की कामना से। इसी कारण से श्रोता वक्ता भी दो प्रकार के होते हैं। एक श्रोता तो ऐसे होते हैं, जो केवल भगवत् प्राप्ति की कामना से ही भागवत का सेवन करते हैं, दूसरे इस कामना से करते हैं, कि हमारे धन हो, पुत्र हो, वैभव बढ़े सम्मान मिले। इसी प्रकार एक वक्ता तो ऐसे होते हैं, जो केवल भगवत् भक्त श्रोताओं को खोजते रहते हैं, जहाँ कोई श्रीकृष्ण कामी भक्त मिल गया तो उसके साथ प्रेम में मग्न होकर कथा सुनाते रहते हैं, परस्पर में कृष्ण कथा कहते-कहते तन्मय हो जाते हैं। दूसरे वक्ता ऐसे होते हैं, जो बगल में पुस्तक दबाये घूमते रहते हैं, कोई हमसे कथा सुनले हमें पैसा दे दे। कुछ भी दे दे, भोजन भर को अन्न ही दे दे, सीधा ही दे दें, उनका कथा कहना व्यापार है, कथा के नाम से पेट भरते हैं। ऐसे ही उन्हें श्रोता भी सकामी मिल जाते हैं, उस कथा में रस नहीं आता। वह एक प्रकार से

क्योंकि जनार्दन भगवान् तो भावग्राही हैं। इस विषय को मैं एक दृष्टान्त से समझाता हूँ।"

एक बड़ा समृद्ध शाली नगर था। उसमें बड़े बड़े व्यापारी व्यापार करते थे। वहाँ का बाजार स्वच्छ सुन्दर और शोभा युक्त था। उस बाजार के बीच में एक भगवान् का मन्दिर था। उसमें एक पुजारीजी पूजा करते थे। पुजारीजी के परिवार का निर्वाह पूजा की आय से ही होता था। वे प्रातः ही बहुत तड़के स्नान करके रेशमी वस्त्र पहिनकर झोली में हाथ डाल कर माला घुमाते रहते। जहाँ किसी दर्शनार्थी नर नारी को देखा, तुरन्त माला रख दी; चरणामृत दिया और देखते रहे क्या चढ़ाता है। उनकी दृष्टि न तो भगवान् की मनमोहिनी मूर्ति में रहती; न मन मन्त्र जाप में उनकी सम्पूर्ण चित्त वृत्ति चढ़ावे की ही ओर लगी रहती।

उनके सामने ही एक वेश्या भी रहती। वह बड़ी सुन्दरी थी। बड़े-बड़े लोग ही उसके यहाँ आते थे। उसका बड़ा ठाट बाट था। पुजारीजी सदासर्वदा उसकी ओर देखते रहते। वह भी पुजारीजी की दिनचर्या को बड़े ध्यान से देखती। कभी-कभी वह भी दर्शनों को आ जाती। उसके सुन्दर बहुमूल्य वस्त्रों की सुवास से आस पास के लोगों की नाक भर जाती। पुजारी जी बड़ी ललचायी दृष्टि से उसकी ओर देखते रहते। उसके चले जाने पर लोगों से कहते—"कुलटा है, वैश्या है। पाप कमाती है, मंदिर में आती है।" कभी-कभी उनके मन में भी आता कोठे पर चलकर इससे दो बातें करें। किन्तु रुक जाते, कोई देख लेगा, तो क्या कहेगा। किसी को पता चल गया तो आजीविका भी मारी जायगी। इसी प्रकार बहुत दिन व्यतीत हो गये पुजारीजी का अन्तिम समय आ गया। उनकी मृत्यु हो गयी। संयोग की बात कि उसी दिन उस वेश्या की भी मृत्यु हुई। दोनों को लेने को

यमदूत आये। यमदूतों ने आकर कहा—"चलिये पुजारी जी महाराज !"

पुजारी जी ने पूछा—"कहाँ ले जाओगे भैया !"

यमदूतों ने कहा—"यमराज की आज्ञा है आप को नरक में चलना होगा।"

पुजारीजी ने पूछा—"और इस वेश्या को ?"

पास में ही खड़े देवदूतों ने कहा—"इसे हम स्वर्ग में ले जायँगे।"

पुजारीजी ने कहा—"क्यों भैया ! हम सुनते थे यहाँ के ही न्यायालयों में अन्याय होता है, धर्मराज के यहाँ भी अन्धेर चलता है क्या ? आप लोगों ने अवश्य ही समझने में भूल की है, नहीं तो जीवन भर मंदिर में पूजा करने वाले मुझे तो नरक मिले और पर पुरुषों का संगम करने वाली इस वेश्या को स्वर्ग की प्राप्ति हो। अवश्य ही इसमें कुछ गड़बड़ सड़बड़ है। आप लोग एक बार पुनः जाकर यमराज से पूछ आवें।"

यह बात सुनकर दूतों को भी सन्देह हुआ, वे दौड़े-दौड़े यम-राज के पास गये और जाकर सभी वृत्तान्त सुनाया। यमराज ने सब सुनकर कहा—"नहीं, गड़बड़ी कुछ नहीं हुई है, पुजारी को नरक में ही आना होगा। वेश्या को स्वर्ग में ही पहुँचाना पड़ेगा।"

दूत पुनःलौटकर आये और कहा—"पुजारीजी ! नरक ही चलना पड़ेगा।"

पुजारीजी ने फिर कहा—"यह तो बड़ा अन्धेर है।"

इस पर एक देवदूत ने कहा—"पुजारीजी ! अपने हृदय को टटोलो। चरणामृत देते समय आपने कितनी स्त्रियों को भगवान् के सामने खोटी दृष्टि से देखा है, सब के लिये जो भगवान् थे, तुम्हारे लिये केवल मात्र पैसा पाने के लिये पाषाण की एक मूर्ति

थी। पैसा के लिये आपने क्या-क्या किया। आप शरीर से तो इस वेश्या के घर नहीं गये, किन्तु आपकी भावना तो इसे देखते ही यह कहती थी, कि यह कैसा सुख भोग रही है, कितने आनंद में है, यदि मैं इस पूजा के चक्कर में न होता तो मैं भी इसकी भाँति सुख भोगता। ऊपर से आप इसे स्वैरिणी कुलटा कहते थे, किन्तु मन के भीतर तो आपको इसके सुख के प्रति ईर्ष्या थी। उसे प्राप्त करने की इच्छा थी।

इसके विपरीत यह समाज द्वारा तिरस्कृता थी। समाज इसे अपने में मिलाने को तैयार नहीं था। विवश होकर पेट के लिये इसे यह निन्द्य कार्य करना पड़ा। फिर भी इसने किसी के साथ छल नहीं किया। जिसके साथ जितने समय का वचन दिया उसे निभाया। आपके शुभ कार्यों के प्रति इसे श्रद्धा थी, इसकी सदा यही भावना बनी रहती थी, कब इस निन्द्य कर्म से छुटकारा हो और कब पंडितजी की भाँति सदा सेवा पूजा करते हुए पवित्र जीवन बिताऊँ। इसी पश्चात्ताप की अग्नि में जलते हुए इसने समय बिताया, भगवान् के इसी भाव से दर्शन किये, एकान्त में उनके लिये आँसू बहाये। ऊपर से देखने में इसका कार्य निन्द्य था, किन्तु इसकी भीतर की भावना पवित्र थी। इसके विपरीत ऊपर से देखने में तुम्हारा कार्य पवित्र था, किन्तु भीतर की भावना कलुषित थी फल तो भावना के ही अनुसार मिलता है।"

इस दृष्टान्त का अभिप्राय इतना ही है, कि ऊपर की क्रिया ही से फल समान नहीं हो सकता, कथा तो वही एक है, सुनते भी लोग एक ही समान हैं, किन्तु श्रोता वक्ताओं की जैसी भावना होती है, फल उसके अनुरूप होता है। फिर भी एक बात और है, हाँ। अनिच्छा से भी किसी अन्य भाव से भी गङ्गाजी के जल में गिर गयें, तो शरीर शीतल तो दूसरे जल के ही समान होगा, किन्तु गङ्गाजल के स्पर्श से आपके पाप भी कट जायँगे। इसी

प्रकार संसारी कामनाओं से भी भागवत का सेवन करोगे, तो उसका फल मंगलप्रद ही होगा।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! आप यह बतावें कि कोई निष्काम भक्त है उसे संसारी कामना तो कुछ नहीं है, किन्तु विधि विधान कुछ नहीं जानता। वह विधि विधान से रहित होकर भागवत का सेवन करता है, उसे फल मिलेगा या नहीं ?"

इस पर सूतजी ने गम्भीर होकर कहा—"विधि विधान का झंझट तो सकामता में ही है। यदि निष्काम भक्त विधि विधान पूर्वक सेवन करता है, तब तो सर्वोत्तम ही है, किन्तु यदि वह प्रभु प्राप्ति की भावना से विधिहीन भी सेवन करता है, तो यह हो सकता है, कि उसे कुछ बिलम्ब हो जाय किन्तु उसे सिद्धि अवश्य प्राप्त होगी। श्रीकृष्ण को चाहने वाला भले ही गुणहीन हो, उसका कार्य विधिहीन भी क्यों न हो, किन्तु उसके हृदय में जो विशुद्ध भावना है, प्रभु के पादपद्मों के प्रति प्रेम जो है, वही उसकी सर्वोत्तम विधि है। भगवान् तो भीतर के भाव को देखते हैं। आंतरिक प्रेम के प्रवाह में गुण, विधि विधान सभी बह जाते हैं। यदि केवल मात्र प्रभु प्राप्ति की, भगवत् भक्ति की-मुक्ति की कामना है तब तो जैसे बने वैसे ही सेवन करो, किन्तु यदि भागवत सेवन से संसारी कामनाओं को पूर्ण करना चाहते हो, तब तो विधि विधान का पालन करना ही होगा। धनार्थी को तभी सिद्धि मिलती है जब उसके अनुष्ठान का विधि विधान पूर्ण हो जाय। इसीलिये निष्काम भक्त के लिये उद्यापन का आग्रह नहीं है। सकाम श्रोता को तो कथा की समाप्ति के दिन विधि पूर्वक उद्यापन करना चाहिये।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! सकाम भागवत अनुष्ठान की विधि बताइये।"

सूतजी ने कहा—"भगवन्! विधि तो मैं पीछे बता ही चुका

हैं, जो सप्ताह की विधि है, वही मासिक, द्विमासिक, वार्षिक की विधि समझ ले।"

१—श्रोता वक्ता दोनों को सूर्योदय के पूर्व उठ जाना चाहिये।

२—नित्यकर्मों से निवृत्त होकर संक्षेप में सन्ध्या वन्दनादि करके भगवान् का चरणामृत ले लेना चाहिये।

३—फिर पुष्प, माला, धूप, दीप, नैवेद्य आदि पूजा की सामग्री लेकर कथा मंडप में आना चाहिये। आकर भागवत वक्ता गुरु का तथा पुस्तक का पूजन करे। समागत भक्तों की वन्दना करे। और स्थिर चित्त से जब तक कथा हो उसका श्रवण करे।

४—दूध पीकर रहे या चरु चावल की खीर खाकर रहे या जो भी भगवान् को हविष्यान्न का भोग लगे उसे एक बार मौन होकर खाय।

५—नियम पूर्वक दृढ़ता से ब्रह्मचर्य का पालन करे।

६—खाट पर शयन न करे, भूमि पर सोवे।

७—क्रोध न करे, यथाशक्ति लोभ को त्याग दे।

८—प्रतिदिन कथा समाप्त पर भक्तों के साथ भगवान् का कीर्तन करे।

९—दिन में कथा श्रवण करके रात्रि में जागरण करे।

१०—जिस दिन कथा की समाप्ति हो, यथाशक्ति हवन करावे, ब्राह्मण भोजन करावे उन्हें दक्षिणा दे। वक्ता को द्रव्य, वस्त्र, आभूषण तथा और भी सभी उपयोगी वस्तुओं को भेंट करे। गौदान करे।

इस प्रकार इन नियमों का पालन करते हुए जो भागवत सप्ताह, मासिक, द्विमासिक, वार्षिक पारायण करते कराते हैं, उन सकाम पुरुषों की सभी कामनायें पूर्ण होती हैं। वे धन चाहते हैं

को धन मिलता है, पुत्रार्थी को पुत्र, विद्यार्थी को विद्या, यश चाहने वाले को यश, गृहार्थी को गृह, राज्यार्थी को राज्य और विवाहार्थी को सुशील सुन्दरी स्त्री मिलती है। किन्तु मुनियो ! भगवान् को प्रसन्न करके ये संसारी वस्तुएँ माँगना बहुत बड़ी विडम्बना है। यह तो अत्यन्त तुच्छ कामना है। चुहिया निकालने को इतने बड़े पहाड़ को खोदने के समान है। इस परम पवित्र शुकशास्त्र का सेवन तो श्रीकृष्ण प्राप्ति के ही निमित्त करना चाहिये। इसके सेवन से अलौकिक अलभ्य प्रेमानन्द प्राप्त होता है इसका तुच्छ कामनाओं के लिये उपयोग तो मणि मुक्ताओं से भूसा तौलने के समान है। यह मैंने आप से अत्यन्त ही संक्षेप में भागवती कथा की जैसी-मुझसे बन सकी वैसी-महिमा कही अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ?"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! भागवती कथा सुनाते समय बीच-बीच में जो स्तुतियों के प्रकरण आये थे, उस समय आप सर्वत्र यही कहते गये, कि स्तुतियों के प्रकरण को मैं फिर समय मिलने पर सुनाऊँगा। सो सूतजी ! अब तो बहुत समय है कृपया भागवत की जो भिन्न भिन्न स्तुतियाँ हैं उन्हें हमें विस्तार के साथ स्पष्ट अर्थ करते हुए सुनाइये। भागवत का सम्पूर्ण सार तो इन स्तुतियों में ही भरा है। उस समय कथा भाग सुनाने के काल में हमने इसलिये आग्रह नहीं किया कि आपका कथा का प्रवाह रुक जायगा क्योंकि स्तुतियों में गूढ़ रहस्य भरा पड़ा है। अब तो कथा भी समाप्त हो गयी भागवती कथा की महिमा भी सुना दी। अब आप भागवती स्तुतियों को हमें सुनावें।"

सूतजी ने कहा—"अच्छी बात है, महाराज ! अब मैं आप को यथा मति भागवती स्तुतियों को ही सुनाता हूँ। आप सब समाहित चित्त से श्रवण करें।"

---

छप्पय

( १ )

होहि कामना कृष्ण मिलन हित विधि कछु नाहीं।
गुनी होहि गुनहीन अवसि फल सेवे पाहीं॥
संसारी सुख हेतु करें पारायन प्रानी।
विधि पूरी जब होहि वस्तु पावें मन मानी॥
भगति न लहि जग सुख चहहिं, लेहिं काँच दै मनि यथा।
कह्यो महातम महामुनि! कहूँ कौन सी अब कथा॥

( २ )

शौनक बोले—सूत! कृष्ण चिरजीव बनावें।
इस्तुति जे बचि रहीं तिनहिं अब सौम्य सुनावें॥
उत्सुकता अति बढ़ी शमन करि सुख सरसावें।
सूत कहें मुनि! गहन पार पंडित नहिं पावें॥
प्रभु पद पंकज पकर पुनि, अब इस्तुति बरनन करूँ।
है अगाध अमृत उदधि, कृपा करो तुम तो तरूँ॥

इसके आगे की कथा अगले खंड में पढ़िये।